श्रीमद् दयानन्द पुस्तकालय.
क्रमांक 242
आर्य समाज, बम्बई.

श्रीमद् दयानन्द पुस्तकालय
क्रमांक [illegible]
आर्य समाज,

1 - धर्म [illegible]
2 - [illegible]
3 - [illegible]
4 - [illegible]
5 - [illegible]
6 - [illegible]
7 - [illegible]
8 - [illegible]
9 - [illegible]
10 - [illegible]
11 - आर्य [illegible]
12 - [illegible]
13 - [illegible] मत दर्पण
14 - [illegible] भा० 1
15 - ,, ,, ,, 2
16 - पं० [illegible]
17 - [illegible]
18 - [illegible]

ओ३म्

धर्म प्रचार

हमारी हिन्दू जाति ऐसी घोर निद्रा में निमग्न हो
है कि उसे चैतन्य होने में भी लज्जा प्राप्त होती है क
वह ऋषि मुनियों का पवित्र समय और कहां उनकी वर्तम
सन्तान की यह अधोगति त्राहिमाम् ३ ॥ प्रिय बन्धु लगे
४९९६ वर्ष का समय व्यतीत हुआ जब के महाराजा यु
ष्टिर का चक्रवर्ती धर्म्मराज्य पृथ्वी पर वर्तमान था उस का
में कोई मुसलमान कोई ईसाई कोई बौद्ध कोई जैन इस भा
वर्ष में दृष्टि गत न होता था, किन्तु सारे संसार में भी कह
उनका पता नथा. समस्त प्रजा वैदिक धर्म्म और शास्त्रो
कर्म्म पर आरूढ थी, उसके सैंकडों वर्ष पीछे अविद्या
कारण मांस, मद्य, व्यभिचारादि का प्रचार इस देश में बढ
लगा, तब २४९६ वर्ष का समय व्यतीत होता है कि ने
पाल के दक्षिण में शाक्यसिंह नाम के नास्तिकने बौद्धमत
चलाया, राज्य शक्ति भी सहायक थी और उसी प्रलोभन

से बहुत से पेट पोषक ब्राह्मण उसके साथी होगये, जिससे बौद्धमत सारे भारत वर्ष में फैल गया. काशी, कश्मीर, कन्नौज के अतिरिक्त कोई नगर ऐसा न रहा जो बौद्ध न होगया हो. जब यह मत बहुत बढगया और लोग वैदिक धर्म से पतित हुये, यज्ञोपवीतादि संस्कार छोड बैठे तब अनुमान दो सहस्र वर्ष व्यतीत हुये होंगे कि एक महात्मा श्री शंकर स्वामी ने कटिबद्ध हो और शिष्यों को साथ ले बौद्धों से शास्त्रार्थ करना आरम्भ किया, भला नास्तिक लोगों के तर्क और युक्तियां वेद पारांगत महात्मा के समीप अपना क्या प्रभाव उत्पन्न कर सकतीहै. एक दो चुने २ स्थानों पर विजय प्राप्त करने के कारण श्री शंकरस्वामी का विजय पताका गढ गया. बहुत से राजाओं ने वेद धर्म्म स्वीकार किया दस बारह वर्ष के भीतर ही श्री शंकर स्वामी के शास्त्रार्थ के कारण सारे देश में बौद्धों के यहां हलचल पडगई. श्री शंकराचार्य्य के शास्त्रार्थ में यह नियम होते थे ॥

(१)– जो शास्त्रार्थ में हारे अर्थात पराजय को प्राप्त हो वह दूसरे का धर्म्म स्वीकार करे.

श्रीमद् दयानन्द पुस्तकालय.
क्रमांक 242
आर्य समाज, बम्बई.

१ - धर्म प्रचार [illegible]
२ - [illegible]
३ - [illegible]
४ - [illegible]
५ - [illegible]
६ - [illegible]
७ - [illegible]
८ - [illegible]
९ - [illegible]
१० - [illegible] ([illegible])
११ - आर्य [illegible]
१२ - आदि [illegible]
१३ - [illegible] मत दर्पण
१४ - [illegible] भा० १
१५ - " " " २
१६ - पं० [illegible]
१७ - [illegible]
१८ - [illegible]

श्रीमद् दयानन्द पुस्तकालय.
क्रमांक [illegible]
आर्य समाज, बम्बई.

ओ३म्

धर्म प्रचार

हमारी हिन्दू जाति ऐसी घोर निद्रा में निमग्न हो
है कि उसे चैतन्य होने में भी लज्जा प्राप्त होती है क
वह ऋषि मुनियों का पवित्र समय और कहां उनकी वर्तम
सन्तान की यह अधोगति त्राहिमाम् ३ ॥ प्रिय बन्धु लगे
४९९६ वर्ष का समय व्यतीत हुआ जब के महाराजा यु
ष्टिर का चक्रवर्ती धर्म्मराज्य पृथ्वी पर वर्तमान था उस का
में कोई मुसलमान कोई ईसाई कोई बौद्ध कोई जैन इस भा
वर्ष में दृष्टि गत न होता था, किन्तु सारे संसार में भी कह
उनका पता नथा. समस्त प्रजा वैदिक धर्म्म और शास्त्रो
कर्म्म पर आरूढ थी, उसके सैंकडों वर्ष पीछे अविद्या
कारण मांस, मद्य, व्यभिचारादि का प्रचार इस देश में बढ
लगा, तब २४९६ वर्ष का समय व्यतीत होता है कि ने
पाल के दक्षिण में शाक्यसिंह नाम के नास्तिकने बौद्धमत
चलाया, राज्य शक्ति भी सहायक थी और उसी प्रलोभन

से बहुत से पेट पोषक ब्राह्मण उसके साथी होगये, जिससे बौद्धमत सारे भारत वर्ष में फैल गया. काशी, कश्मीर, कन्नौज के अतिरिक्त कोई नगर ऐसा न रहा जो बौद्ध न होगया हो. जब यह मत बहुत बढगया और लोग वैदिक धर्म से पतित हुये, यज्ञोपवीतादि संस्कार छोड बैठे तब अनुमान दो सहस्र वर्ष व्यतीत हुये होंगे कि एक महात्मा श्री शंकर स्वामी ने कटिबद्ध हो और शिष्यों को साथ ले बौद्धों से शास्त्रार्थ करना आरम्भ किया, भला नास्तिक लोगों के तर्क और युक्तियां वेद पारांगत महात्मा के समीप अपना क्या प्रभाव उत्पन्न कर सकतीहै. एक दो चुने २ स्थानों पर विजय प्राप्त करने के कारण श्री शंकरस्वामी का विजय पताका गढ गया. बहुत से राजाओं ने वेद धर्म्म स्वीकार किया दस बारह वर्ष के भीतर ही श्री शंकर स्वामी के शास्त्रार्थ के कारण सारे देश में बौद्धों के यहां हलचल पडगई. श्री शंकराचार्य्य के शास्त्रार्थ में यह नियम होते थे ॥

(१)– जो शास्त्रार्थ में हारे अर्थात पराजय को प्राप्त हो वह दूसरे का धर्म्म स्वीकार करे.

ओ३म

धर्म्म प्रचार

हमारी हिन्दू जाति ऐसी घोर निद्रा में निमग्न हो
है कि उसे चैतन्य होने में भी लज्जा प्राप्त होती है क
वह ऋषि मुनियों का पवित्र समय और कहां उनकी वर्तम
सन्तान की यह अधोगति [illegible] ॥ प्रिय बन्धु वृगो
४९९६ वर्ष का समय व्यतीत हुआ जब के महाराजा यु
ष्टिर का चक्रवर्ती धर्म्मराज्य [illegible] पर वर्तमान था उस का
में कोई मुसलमान कोई ईसाई कोई बौद्ध कोई जैन इस भार
वर्ष में दृष्टि गत न होता था, किन्तु सारे संसार में भी कह
उनका पता न था. समस्त मनुष्य वैदिक धर्म्म और शास्त्रोक्त
कर्म्म पर आरूढ थे, किन्तु सैकडों वर्ष पीछे अविद्या
कारण मांस, मद्य, व्यभिचारादि का प्रचार इस देश में बढ
लगा, तब २४९६ वर्ष का समय व्यतीत होता है कि ने
पाल के दक्षिण में शाक्यसिंह नाम के नास्तिकने बौद्धम
चलाया, राज्य शक्ति भी सहायक थी और उसी प्रलोभन

से बहुत से पेट पोषक ब्राह्मण उसके साथी होगये, जिससे
बौद्धमत सारे भारत वर्ष में फैल गया. काशी, कश्मीर, कन्नौ-
ज के अतिरिक्त कोई नगर ऐसा न रहा जो बौद्ध न होगया
हो. जब यह मत बहुत बढगया और लोग वैदिक धर्म से प-
तित हुये, यज्ञोपवीतादि संस्कार छोड बैठे तब अनुमान दो
सहस्त्र वर्ष व्यतीत हुये होंगे कि एक महात्मा श्री शंकर
स्वामी ने कटिबद्ध हो और शिष्यों को साथ ले बौद्धों से शा-
स्त्रार्थ करना आरम्भ किया, भला नास्तिक लोगों के तर्क और
युक्तियां वेद पारांगत महात्मा के समीप अपना क्या प्रभाव
उत्पन्न कर सकतीहै. एक दो चुने २ स्थानों पर विजय प्राप्त
करने के कारण श्री शंकरस्वामी का विजय पताका गढ
गया. बहुत से राजाओं ने वेद धर्म्म स्वीकार किया दस बारह
वर्ष के भीतर ही श्री शंकर स्वामी के शास्त्रार्थ के कारण
सारे देश में बौद्धों के यहां हलचल पडगई. श्री शंकराचार्य्य
के शास्त्रार्थ में यह नियम होते थे ॥

(१)- जो शास्त्रार्थ में हार अर्थात पराजय को प्राप्त हो
वह दूसरे का धर्म्म स्वीकार करे.

(२)— यदि साधु होतो चेला [सन्यासी] होजाय.

(३) यदि यह दोनों बातें अस्वीकार हों तो आर्य्यावर्त देश को छोड जावे.

इन तीनों नियमों के कारण करोडों बौद्ध और जैन फिर वैदिक धर्म्म में आये और प्रायश्चित करवाये, उनको श्री शंकराचार्य्यजी ने गायत्री बतलाई और यज्ञोपवीत पहिनाये. जो लोग बहुत हठ धर्म्मी थे और पक्षपात की अग्निमें जल रहे थे इस प्रकार लाखों मनुष्य आर्य्यावर्त से बहिस्कृत किये गये. आर्य्यावर्त के राजों की ओर से काश्मीर, नैपाल, कन्याकुमारी, सूरत, बंगालादि भारत के सीमा वाले स्थानों पर सन्यासियों के मठ बनवाये गुये और वहां फौज भी रही कि जो बौद्ध लोग बाहर निकाले जावें वह फिर पलट कर न आसकें. इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि इसी आर्य्यावर्त में बौद्धमत का जन्म हुआ और एक समय सारा देश का देश बौद्धमतावलंबी था पर अब इस देश में एक आदमी भी उस मत का दृष्टि नहीं पडता. भारतवर्ष के चारों ओर लंका, ब्रह्मा, चीन, जापान, तिब्बत, रूस, अफगानिस्तान, काफ-

रिस्तान, बलोचिस्तानादि में करोडों बौद्ध वर्त्तमान हैं. और जैनी लोग अब भी भारतवर्ष में अति न्यून अर्थात् छ या सात लाख है. यह वही है जो छिप छिपा कर अज्ञात रह गये हैं. वह महात्मा शंकर स्वामी ३२ वर्ष की आयु में केदारनाथ में मरगये, नहीं तो वही ऋषि मुनियों का समय फिर आंखों के सन्मुख उपस्थित हो जाता ॥

श्री शंकराचार्य्य का जन्मके जैनियों और बौद्धोंके लिये केवल यही प्रायश्चित था कि एक दो दिन वृत रखकर यज्ञोपवीत पहेना दिया जावे और गायत्री मंत्र बतलाया जावे जिस कारण २९ करोड मनुष्यों का प्रायश्चित कराकर यज्ञोपवीत धारण कर वर्णाआश्रम धर्म्म में आगये. यद्यपि चार पांचसौ वर्ष वह बौद्ध और जैन रहे थे. बौद्ध लोग वर्णाश्रम को नहीं मानते खान पान भी उनके यहां वेद विरुद्ध है, वह सर्व प्रकार के मांस खालेते हैं. चीन के इतिहास और ब्रह्मा के समाचार से यह बातें सर्व साधारण जान सकते हैं ॥

बारह सौ वर्ष व्यतीत हुये कि इस देश में म्लेच्छों ने सूरत और अफगानिस्तान की ओर से चढाई की. आर्य्या

वर्त के भीतर वेद मत छूट जाने और पुराणों के प्रचार और इन्ही वेद विरुद्ध मतों के कारण घर में फूट की बेल बढरही थी. धर्म्म के अभाव और वाममार्ग के फैलने से व्यभिचार भी बहुत फैला हुवा था. अति व्यभिचार तथा बाल्यावस्था में विवाह के कारण ब्रह्मचर्य्य का बलवीर्य्य नष्ट हो रहा था ऐसी दशा में एक असभ्य जाति का हमारे देश पर जय प्राप्त करना कौन कठिन कार्य्य था. हमारी निर्बलता अथवा ब्रह्मचर्य्य न होने का एक स्थूल प्रमाण यह है कि सोमनाथ की लडाई में महमूद के साथ दश पन्द्रह हजार फौज थी और हिन्दू राजाओं के पास दश पन्द्रह लाख सैन्य था परन्तु अन्त में हिन्दू ही हारे और महमूद जीता. आप जानते हैं कि सौ हजार का एक लाख होता है, सिद्ध हुवा कि एक अफगान के सन्मुख रण क्षेत्र में १०० हिन्दू थे. ऐसे स्थान पर हारने का ब्रह्मचर्य्य और धर्म्म के न होने के अतिरिक्त और क्या कारण हो सक्ता है आप ध्यान दे कर सोचें ॥

इस देश सबसे पहिले बापा नाम चितौरका राजा एक

मुसलमानी पर आशक्त हो कर मुसलमान हो गया किन्तु लज्जावानथा लज्जाके मारे खुरासान चलागया और वहां ही मरगया पीछे उस के हिन्दू बेटा राजगद्दी पर बैठा (देखो तारीख हिन्द) ॥

दूसरा मुसलमान इस देश में सुखपाल लाहोरका राजा राज्य और धन के लोभ में महमूद के समय में हुआ और महमूद उसको राजा बनाकर चलागया महमूदके चलेजाने के पीछे फिर वह हिन्दू होगया और ब्रह्मणों ने मिलालिया (देखो तारीख फिरिशतः मुकाले (पर्व) १ सुलतान महमुद सफा २९–२६– नवलकिशोर)

काश्मीर देश एक मुसलमान बादशाह के अन्यायसे (जबरन) मुसलमान किया गया अब तक उनकी भट कौल आदि जातियां पाई जाती है, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, इन सबमें से जो२ मुसलमान हुये बहुत तो अत्याचार से (जबरन) मुसलमान हुये कोई हर्ष वा आनन्द से अथवा मुसलमानी धर्म को श्रेष्ठ मानकर मुसलमान नहीं हुआ, बहुत जागीर आदि के लालच से भी मुसलमान हुये जिन की वंसावली स्पष्ट सा-

क्षी देतीहै कि बाप दादा अथवा दो तीन पीढ़ीसे उपर हिन्दूथे बहुतसे जवान हिन्दू मुसलमानी वेश्याओंके नागिनी श्याम लटाओं पर मोहित हो कर डसे गये और बेधर्म हुये जो अपने मित्रों को बहुधा इसी धर्म की शिक्षा दिया करते हैं जिन के पहिले और नये सहस्रों उदाहरण प्रत्येक सूबा और अहातामें प्रस्तुत है बड़े २ विद्वान पंडित भी रंडियों [वेश्याओं] के रूपसिंधु [चाहेज़कन] में डूब गये उदाहरण को पुस्तक गंगालेहरी के प्रेणीता पं० जगन्नाथ शास्त्री उपस्थित हैं जिनका नाम पीछे से अबदुल रहमान रक्खाथा ॥

लाखों बहादुर शूरवीर और दृढ चित्त वाले महात्मा धर्म पर बलीदान हो गये शीश देदिये परन्तु धर्मन छोड़ा उदाहरण के निमित्त देखो पुस्तक "शहीद गंज" ॥

आप जानते हैं कि जब मुसलमान नहीं आये थे तो उन की जियारतें, कबरें, मकबिरें, खानगाहे, गोरिस्तान भी इस देश में नथी जब आठ नव सौ वर्ष से मुसलमान आये थे -तबसेही इस आर्य्यावर्त में कबर की पूजा आरम्भ हुई जो अन्यायी मुसलमान हिन्दू बहादुरों के हाथ से मारे गये मुसलमानों ने

उनको शहीद बनादिया और हिन्दुओं को बापी शोक २ महा शोक !

हमारे बाप दादाओं की क्षीण कृपाणने जिन अन्याईओं को मृत्यु शय्या पर सुलाया, हमारे महानुभावों के हाथों से जो नर्क कुंड में डाले गये, हम निर्लज्ज और अयोग्य सन्तान उन्हे शहीद समझ उन के आगे दीपक जलाते हैं शोक २ महा शोक ! निर्लज्जता तेरी भी सीमा न रही ! हे परमेश्वर यह बुरी दशा कबतक रहेगी ॥

हे हिन्दू भाताओं ! समस्त भारत वर्ष में महा पक्के और ऊँचे२ कबरस्थान देखते हो वह तुम्हारे ही पुरुषाओं के हाथों से बधकिये हुये हैं, उन के पूजने से तुम्हारी भलाई कभी नहीं हो सक्ती और किसी भांति सम्भव भी नहीं है. उत्तम प्रकार सोचलो "अगर पीरमुर्दा बकार आमदे, ने, शाहीने मुर्दा शिकार आमदे" ॥ अर्थात यदि मरा हुआ पीर कार्य के योग्य ठहरे, तो मुर्दा बाज भी आखेट करै ॥

मुसलमानों ने मंदिर तोडे, मूर्तियां फोडी लाखों को वध किया, इस प्रकार विवश होने पर जबरदस्ती से लोग मुस-

लमान हुये, परन्तु आर्य्यावर्त्त ऐसा कई समय न था कि ईरान, रूम, मिश्र, अरब की तरह कभी न जागता, बीच २ में उसको जगाने वाले भी होते रहे, मुसलमानों के ही अत्याचार से सती होने की रीत चली, कि ऐसा न हो कि पकड के खराब करें राणी पद्मिनीका सती होना और अलाउद्दीन का अत्याचार, इतिहास को विचार पूर्वक पढने से ज्ञात हो जायगा ॥

सब से प्रथम आर्य्यावर्त्त में शंकराचार्य्यजीने २८ करोड मनुष्योंका प्रायश्चित कराया और उनको वेद धर्मपर चलाया

दूसरा प्रायश्चित राजा चन्द्रगुप्त ने किया अर्थात सलोकस शाह बाबुल युनानी की बेटी से विवाह किया जिसको आज दो हजार एक सौ वर्ष हुये ॥

तीसरा प्रायश्चित उदेपुर के राणा ने किया जिस ने नौशीरवां जो कि पारसी जातिका ईरानी राजाथा जिस की लडकी सारसशाह कस्तुन्तुनिया की दोहिती थी विवाह किया जिस को आज १३०० वर्ष होते हैं ॥

चौथा प्रायश्चित लाहोर के पंडितोंने राजा सुखपाल का कराया जिसको आज ८०० वर्ष होते हैं ॥

पांचवां प्रायश्चित बर्दाना मुसलमान का बाबा नानकजी ने करवाया, जिसको चार पांच सौ वर्ष हुये और उस के शब को स्थान खुर्जा में अग्नि में जलाया ॥

छटा प्रायश्चित पं० बीरबल और राजा टोडरमलने अकबर बादशाह का कराया और महाबली उसका नाम रक्खा, गायत्री सिखाई और संध्या पढाई यज्ञो पवीत पहनाया, हिन्दू बनाया, गोवध की मनाही हो गई, मांस से हारणा हो गई, दाढी के साथ इसलाम को सलाम कर दिया, और आज्ञा देदी कि जो हिन्दू ना समझ से, प्रेमसे. लोभसे मुसलमान हो गयाहो और यदि वह अपने हिन्दू धर्म पर लौटना चाहे तो उसे अधिकार है मत मना करो, और कोई हिन्दू स्त्री यदि किसी मुसलमान के प्रेम में मुसलमानी होना चाहे कदापि न होने पाये उस के सम्बन्धियो को सौंप दीजाय अधिक हाल देखना होतो " दबिस्ताने मजाहेब पृष्ट ३२९ सब ३२८दर्सी तालीम " छपी नवलकिशोर प्रेस को देखो ॥

सातवां प्रायश्चित गुरु गोविन्द सिंहजीने कराया औरंगजेब महा आत्याचारीके समयमें जो मुसलमान हो गये थे उन

को सिंह बनाया, वेद धर्म में सम्मिलित कराया इसके अतिरिक्त दो सिख उन के एक समय मुसलमानों ने पकड कर जोरावरी से मुसलमान कर दिये थे जब समय पाकर वह उन के पास आये तो उनको फिर हिन्दू सिंह बनाया, और धर्म में मिलाया ॥

आठवां प्रायश्चित प्रतापमल ज्ञानी ने किया. औरंगजेब के समय में जब कि एक हिन्दू लडका मुसलमान होगया था उसको शुद्ध करके वेद धर्म में मिलाया. देखो (दबिस्ताने मजाहिब तालीम दसवीं पृष्ट २३९ सन् १२९८ हिजरी नवलकिशोर)

नवमां प्रायश्चित महाराजा रणजीत सिंह ने किया. स्वयं अपने लिये और कई सरदारों के लिये मुसलमानों की बेटी पाली और उनको हिन्दू बनाया ॥

दसवां प्रायश्चित महाराजा रणवीरसिंह स्वर्गवासी ने जो कि जम्बू और कश्मीर के राजा थे किया जब कि लद्दाख में तीन राजपूत सिपाह मुसलमान होगये थे बडी प्रसन्नता के साथ तीनों को फिर हिन्दू बनाया धर्म में मिलाया और जम्बू के विद्वान पंडितों ने एक रणवीर प्रकाश

ग्रन्थ बनाया जिसके अनुसार ४०—५० वर्ष का मुसलमान हुआ हिन्दू शुद्ध हो सकता है. काशी के पंडितों ने भी उसके अनुकूल व्यवस्था दी और वह एक बडी पुस्तक प्रत्येक सभा को बिना मूल्य जम्बू से मिल सकती है ॥

ग्यारहवां प्रायश्चित श्री मान स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने कराया अर्थात् कानी महम्मद उमरजी जोकि सहारनपुर के रहने वाले हैं और अब देहरादून में ठेकेदार हैं और जिनका नाम अलखधारी है और जो देहरादून समाज के सभासद हैं ॥

बारहवां प्रायश्चित स्वामीजी के मृत्यु के पश्चात श्री मती परोपकारणी सभा ने कराया अर्थात् मौलवी अबदुल अजीज जी को जोकि पञ्जाब यूनीवरसीटी से काजी फाजिल की डिगरी पाये हैं और जो अब गुरदासपुर जिला पंजाब में एक्सट्रा एसिस्टन्ट कमिश्नर हैं शुद्ध किया और आर्य बनाया जिनका नाम अब रायबहादुर हरदास रामजी हैं ॥

तेरहवां प्रायश्चित संत ज्वालासिंहजी ने कराया जिन्हों ने कम से कम ४०० मुसलमानों को वेद धर्म पर लाकर शुद्ध किया ॥

चौदहवां प्रायश्चित आर्य्य समाज के सभासदों ने किया अर्थात् राजपूताना, पंजाब और पश्चिमोत्तर देश में कम से कम दो सहस्त्र मुसलमान, ईसाई, जैनी हुये हिन्दू भाइयों को शुद्ध करके वेद धर्म्म पर लाकर आर्य्य बनाया सन्ध्या गायत्री सिखलाकर प्रायश्चित कराया और अन्धकार से निकलवाया, और यह संख्या अब दिनो दिन बढती जाती है अतीएव ठीक संख्या का पता असंभव है ॥

प्यारे बन्धुवर्गो इस निवेदन को पढकर ५ मिनट तक दिल में विचार करो कि अगर आप इसी भांति घोर निद्रा में निमग्न रहे तो आप की क्या दशा होगी. आठसौ वर्ष के भीतर आप २४ करोड से न्यून होते २ बीस करोड रहगये चार करोड़ तुम्हारे में से मुसलमान होगये. आप गणित विद्या जानते हैं टुक त्रैराशिक की रीति पर ध्यान दीजिये ॥

प्रश्न— ४ करोड हिन्दू ८०० वर्ष में मुसलमान होगये तो २० करोड कितने वष में होंगे ॥

४ करोड २० करोड ८०० वर्ष=(८००×२०)÷४= उत्तर ४००० वर्ष ॥

बन्धुवर्गो अवश्य समझलो, नेत्र खोल कर देखलो कुम्भकरण की निद्रा में न सोओ धर्म्म नाश हो रहा है. लोग वेद धर्म्म को नष्ट कर रहे हैं. प्रलोभन और धोखे से फसा तुम्हारे बच्चों को बेधर्म्म कर रहे हैं यदि आप इसी भांति सोते रहे करवट न बदली तो ४००० वर्ष के पीछे एक भी वेद धर्म्मानुयायी न रहेगा सब धर्म्म से विमुख हो जावेंगे, केवल यह एक नाला आपकी धार्म्मिक बुनियाद को ढहाने वाला नहीं है किन्तु एक और भी नया नाला प्रावाहित हुआ है वह कौन है ? ईसाई धर्म्म. जो दो सौ वर्ष का समय व्यतीत हुआ कि ईसाई पादरियों ने इस देश में आकर इनजील सुनानी प्रारम्भ की उस समय इस देश में एक भी ईसाई नथा, तुम्हारे अकाल से पीडित भाइयों को मद्रास और अन्य २ प्रान्तों में इन पादरियों ने लोभ देकर ईसाई बना लिया जो अब तक २५ लाख है. क्या कभी आपने विचार किया कि अब तक कितने ईसाई हो चुके हैं ? प्रिय बन्धुवर्गो परमेश्वर के लिये आंखें खोलो नींद से जागो मुह धोकर स्नान करो और अपनी दशा को संभालो तुम्हारे धर्म्म रूपी वृक्ष में दोनों ओर से दीमक लगरही है, अपने आप को बं-

चालो नहां तुम्हारा ठिकाना न मिलेगा चिन्ह भी मिट जायगा ॥

मद्रास का इन दिनों सौभाग्य है जहां सैकड़ों घरों ने अकाल वश होकर ईसाई होगये थे अब ईसाई धर्म छोड दियाहै ब्राह्मणों ने उन सहस्त्रों मनुष्यों को धर्म्म में लाकर मिला लिया. ईसाई रो रहे हैं कुछ वश नहीं चलता तुम्हे भी उचित है दया करो क्षमा करो अपने अनजान मूर्ख भोले भाले बच्चों की जान नाश न करो उनको बचालो, जो शरण आवे उसे ठीक करलो, प्रायश्चित कराकर शास्त्रोक्त रीति से श्री शंकराचार्य्यजी की भांति, बाबा नानक की भांति, चाणक्य ऋषि के भांति, महाराजा रणबीरसिंह की नाईं मिलालो, नहीं तो स्मर्ण रक्खो कि मुसलमान और ईसाई रहकर वह जितनी हत्या करेगा वह सब पाप तुम्हारे गरदन पर होगा. परोपकारी बनो जगत का भला करो, बिछुड़े भाईयों को प्रायश्चित कराकर शुद्ध करके मिलालो ॥ ओ३म शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

आपका शुभचिन्तक एक भारत वर्ष का यात्री.

ओ३म् परमात्मने नमः ॥

श्रीरामजीका दर्शन ॥

श्रीयुत लाला मोलकराजभल्लाकृत

तथा

कलियुगलीला और काशीमहात्म्य

बाकटाचार्य्य और हरिश्चन्द्रकुल

पुस्तक सङ्ख्या ३ । ४

श्रीस्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती प्रबन्धकर्त्ता
"वैदिकपुस्तकप्रचारकफंड" की ओरसे प्रकाशित किया
आर्य्यसंवत्सर १९७२९४९९८ चैत्र सं०५४
द्वितीयवार २०००] [मूल्य १ पैसा
पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक "वेदप्रकाश" नें स्वामीप्रेस मेरठमें मुद्रित कियां ॥ १७

ओ३म् परमात्मने नमः

श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन ॥

जो इसकांसे बाहरको मुमकिन बनावें । अगर राम फिर यां पर तशरीफ़ लावें ॥ हिमालासे लङ्का तक आंखें उठावें । हमें फिर शकल अपनी आकर दिखावें ॥ तो पुर अश्कसे पावोगे अयन उनके । भरे जिग्रके ख़ूंनसे नयन उनके ॥१॥ फिर उनसे जो बोलो के अय शाहे आली । ज़मी के शहनशाह समुन्दरके वाली ॥ किया जिसने असुरोंसे लङ्काको ख़ाली । गिराया था एक बाणसे जिसने बाली ॥ बनाया था पुल जिसने रामेश्वरं का । जमाया सिंघालामें झण्डा धरमका ॥२॥ यह माना कि अब हुक्मरानी नहीं है । अयोध्याकी वह राजधानी नहीं है ॥ रघुवंशकी गो निशानी नहीं है । यह क्या चीज़ है, जो कि फ़ानी नहीं है ॥ मुक़ाबिल है हर चादनीके अन्धेरा । रिफ़ाक़तके शामिल है हरदम बखेड़ा ॥३॥ न शायां पे यह आपके शान के हैं । न लायक़ यह असहाब फ़रमानके हैं ॥ मुताबिक़

न अकबाले ईमान के हैं । पसन्दीदः हरगिज़ न इनसान के हैं ॥ के आंखोंसे ख़ाली करें अश्क जारी । न ताक़त को बरतें न तदबीर कारी ॥४॥ अगर हमको मालूम होवे यह सामां । हुवे आप हैं जिनसे नालां वो गिरियां ॥ हमारी गो बाक़ी रंही जिस्ममें जां । न छोड़ें मगर ढूंढ़कर उसका दरमां ॥ जवाब इसका ग़ालिब है ऐसा कहेंगे । कहावतमें अश्कोंसे दरिया बहेंगे ॥५॥ जो हो हुक्मरानी का इमकान मुझको । तो मुश्किल नहीं इससे आसान मुझको ॥ न नस्ले रघूका है कुछ ध्यान मुझको । जो करती है इस दम परेशान मुझको ॥ वह सूरत मकानों की बिगड़ी नहीं हैं । वह उजड़ी अयोध्याकी नगरी नहीं है ॥६॥ जलाती है दिल मेरा ज़िल्लत तुम्हारी । दुखाती है पज़मुरदः सूरत तुम्हारी ॥ रुलाती है उफ़तादः हालत तुम्हारी । और उस पर भी यह ख़्वाब ग़फ़लत तुम्हारी ॥ तुम्हें देख कर मेरा जी घुटरहा है । इस उफ़तादगी पर जिगर फट रहा है ॥७॥ न मुझको ही ग़फ़लत यह ईज़ा रसां है । न आंखोंके बहनेका कोई समां है ॥ बसे जिस जगह आर्य्या आत्मा है । यह हरदम तहे दिलसे गिरिये कुनां है ॥ अकेला नहीं ख़ूं बहाता मैं यां पर । पड़े रोते

हैं दिवला आस्मां पर ॥८॥ तुम्हारा ही ग़म दिल पै अपने है तारी। तुम्हारे लिये अश्क हरदम है जारी ॥ तुम्हारे लिये है सभी आह व ज़ारी। स्वर्गोंमें चर्चा है हमको तुम्हारी ॥ अगर जागते हैं तो तुम पै नज़र है। जो सोते हैं तो भी तुम्हारा फ़िकर है ॥९॥ बुज़ुर्गोंको देखा था मैंने तुम्हारे। इबादत के पक्के रियाज़तके प्यारे ॥ ज़माना सभी जिनके गुण है पुकारे। किधर छिप गये वह सारे के सारे ॥ भरा देश था सब यह जिन मूरतोंका। निशां अब न बाक़ी है उन मूरतोंका ॥ १०॥ उठाता हूं जब मैं यह चश्मे परेशां। नज़र मुझको आता नहीं एक इनसां ॥ जिसे कह सकूं है यह फ़ख़रे बुज़ुर्गां। इसीका है ग़म और इसी का है हरमां ॥ के मरदुमसे गो यह भरी सर ज़मी है। पर देखने तकको इनसां नहीं है ॥११॥ ब्राह्मणकी यां पर इबादत नहीं है। छत्रीको देखो रियाज़त नहीं है ॥ जो वैश्योंको आंखो तिजारत नहीं है। रहे शूद्र इन में भी मेहनत नहीं है ॥ बुज़ुर्गोंका ख़ूं आज बदला गया क्या। बड़ी क़ौम की क़ौम है नींदमें क्या ॥१२॥ ज़मीं आर्योंकी चमनसे दबाली। मुल्क यां के ग़ैरोंने आके सँभाली ॥ मदार आश है मस्लराग्यान आली। अजब राज-

पूतोंकी है तङ्ग हाली ॥ बड़े जिनके फ़ातिह जहांके कहाये। पड़े हैं वह सहराओंमें मुहँ छिपाये ॥१३॥ ज़मानेकी चालें हैं कैसी निराली। पड़ी वाल्मीकोंकी कुटियां हैं ख़ाली ॥ वशिष्ठोंकी औलाद दर दर सवाली। इस हालतमें उसका ईश्वर ही वाली ॥ जहां पर थीं ऋषियोंकी आरामगाहें। भिखारी वहां बन्द करते हैं राहें ॥ १४ ॥ जहां होते थे भजन सङ्गीत घर घर। निराकार पुजता था हरजा पर ईश्वर ॥ ख़ुदाका बनाते न थे कोई हमसर। घरमें थे गोबिद दिलोंमें थे मन्दिर ॥ धर्म वहां पर ऐसा तबाह होगया है। कि ईश्वरका नाम एक गुनाह होगया है ॥१५॥ जहां भाई लछमन से होते थे अकसर। जहांकी स्त्री आन देती पती पर ॥ पिताके हुकुम पर थे फ़रज़न्द हाज़िर। पड़ोसी २ का होता था मिसर ॥ न अशख़ास दोमें है बाहम रसाई। ख़ोदा या यह पलटी है कैसी ख़ोदाई ॥१६॥ न बेटे कभी बापके यार हैं यां। न खाविन्द ही कुछ वफ़ादार हैं यां ॥ जो भाई है वह मिस्ल अग़यार हैं याँ। ख़ुदीमें सभी मस्त सरशार हैं याँ ॥ न बीवीको परवाह ख़ाविन्दकी कुछ। न है बापको मेहर फ़रज़न्दकी कुछ ॥ १७ ॥ घरोंमें जहां शान्ति ही गुमां

थी। कुलोंमें मोहब्बत दिली हुक्मरां थी ॥ जहां ज़ात हर एक औरोंकी जां थी। कहो या कि सब देशकी एक ज़ुबां थी ॥ वहां पर समां आज यह बीतता है। कि बेटे का ख़ूं बाप ख़ुद बीटता है ॥१८॥ गिरे इस क़दर लेके तुम बेख़बर हो। मरे बोझ से फिर भी तुम बा ख़बर हो ॥ न ग़ैरत रही ताकि ज़िल्लतका डर हो। न हिम्मत कि कुछ बेहतरीकी क़द्र हो ॥ जगाने तुम्हें आत्मायें तो आईं। वह मायूस करके कभी फिर न आईं ॥१९॥ तुम्हींको जगाता था नानक बिचारा। तुम्हींको तो गोविन्द होरो पुकारा ॥ हुवा रायमोहन भी क़ुरबाँ तुम्हारा। दयानन्द ने तुम पर सर्वस्व वारा ॥ तुम्हारी मगर ख़्वाब ग़फ़लत वही है। हुई सुबह पर इस्तराहत वही है ॥२०॥ अगर सँभल सके हो तो अब भी सँभलो। क़दीमी बुज़ुर्गोंकी नक़्शे क़दम लो ॥ उठो नींदसे इस गिरावटको थँभलो। न खानेकी सोचो न पानीका दम लो ॥ न जब तक बुलंदी पर हिन्दोस्ताँ हो। वही आर्य्यावर्त्त फ़ख़रे जहाँ हो ॥२१॥

—*—

श्रीरामचन्द्रजी के दर्शन के कठिन शब्दों का अर्थ ॥

[१]—इमकां=सम्भव। पुर=भरें। अश्क=आंसू। अयन=आंख। जिग्र=दिल। [२] शाहेआली=चक्रवर्त्ती राजा। वाली=मालिक। सिंघाला=लङ्का। [३]—हुक्मरानी=आज्ञा का चलाना। फ़ानी=नाशवान्। रिफ़ाक़त=स्नेह। [४]—शायां=योग्य। असहाब=भद्रपुरुषों। फ़रमान=आज्ञा। अक़बाल=भाग्य। तदबीरकारी=युक्ति के योग्य। [५]—सामां=बस्तुयें। नालावोगिरियां=रोना। दरमां=इलाज। ग़ालिब=निश्चय से। [६] नस्ल=वंश। परेशान=दुःखी [७] ज़िल्लत=दुर्दशा। पज़मुरदः=मुरझाई हुई। उफ़तादः=गिरी हुई। [८] ईज़ारसां=दुःख देने वाली। तहे=मध्य। गिरियेकुनां=रोनेवाला। ख़ूं=रक्त। [९] तारी=बहती हुई। आह वो ज़ारी=फूट फूट के रोना [१०]—इबादत=भक्ति। रियाज़त=तपस्या। निशां=पता [११]—चश्म=आंख। फ़ख़रे=बड़ाई। ग़म=चिन्ता। इरमां=दुःख। वले=परन्तु। [१२]—तिजारत=व्यापार। [१३] रायान=चलानेवाली। तंग-

हाली=दुःख का समय । फ़ातेह=विजयी । मुहताजों=कं-गलों । [१४]-आरामगाह=सुख का स्थान । राहें=मार्गों की । [१५]-हमसर=तुल्य ! गोबिद=भक्ति करनेवाले । तबाह=नष्ट । गुनाह=पाप । [१६] अकसर=बहुत करके । अशख़ास=मनुष्यें । बाहम=परस्पर । रब्ताई=मित्रता । [१७] अग़यार=दुष्टोंके सदृश । ख़ुदी आपस्वार्थिता । सर-शार=उन्मत्त । मेहर=प्यार । [१८] बेगुमां=अतिशय । [१९] ग़ैरत=ग्लानि । मायूस=निराश । कुरबां=बलिहा-री । इस्तराहत=सुख़की चाहना । [२१] बुलन्दी=ऊंचाई । फ़ख़रे=प्रतिष्ठित ॥

——*——

॥ कलियुगलीला ॥

धन्य २ कलियुग महाराजा लीला अजब दिखाई है । उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मत बौराई है ॥ टेक ॥ नीत पंथ उठ गया भारत से पापने आन लगाई है । धर्म गया पाताल विधर्मी सब क़ानून चलाई है ॥ गुप्त भये सच्चे वकील झूठोंकी बात सवाई है । सच्चोंकी परतीत नहीं झूठोंकी सनद गवाही है ॥ न्याय छोड़ अन्याय करै हाकिमने नज़र फिराई है । हक़दारोंका मेटके हक

बेहक़ पर क़लम उठाई है । जो हैं जाली फ़रेबिये बस उनकी अब बनआई है ॥१॥ गूजर जाट बने संन्यासी पोथी बग़ल दबाई है । मूड़ मुंड़ाकर एक थेलेमें कफनी लाल रं-गाई है ॥ पंथ चले लाखों पाखण्डी अद्भुत कथा बनाई है। मुहँ कालाकर किसीने सिरपर जटा बड़ी रखवाई है ॥ हुये नीच कुरसीनशीन ऊंचों को नहीं तिपाई है । जुगनू पहुंचे आसमान पै जाकर दुम चमकाई है॥ फाक़े करते संत मिले भड़वोंको दूध मलाई है ॥२॥ सास बहू से लड़े बहू भी आंख फेर झुंझलाई है। लेकर मूसल हाथ मींजकर दांत पीस उठ धाई है॥ ख़समको बैठी छोड़ के स्त्री कुलकी लाज गवांई है । निज पतिकी सेवा तजिके परपति से प्रीति लगाई है॥ पुरुष भये ऐसे व्यभिचारी विषय भावना छाई है । पड़ि वेश्याके फंदोंमें अब घरकी तजी लुगाई है ॥ मात पिता को लातन मारे पुत्र हुआ दुःखदाई है ॥३॥ व्याह बुढ़ापेमें जो करते उन पर ग़ज़ब ख़ुदाई है । साठ वरसके आप करी कन्याके साथ सगाई है॥ चंदरोज़में मरगये लाला करके रांड बिठाई है। लगी करन व्यभिचार स्त्री घर घर होत हंसाई है ॥ पुरोहित पाध्या करें दलाली मन्त्री जिन्हका नाई है । शरम नहीं है बेशरमोंको बेंच के बेटी खाई है ॥ बहन भा-नजी त्यागन करके साली न्योत जिमाई है ॥४॥ गङ्गाजल गोरस को छोड़ के गाढ़ी भंग छनाई है । भक्ष अभक्ष लगे

खाने मदिरा की होत छकाई है ॥ ससुर बहू को कुदृष्टि देखे अपनी नियत डुलाई है । ठट्ठा और मसखरी करे सासू से जान जमाई है ॥ कहे भतीजा चचा से अपने तू अहमक सौदाई है । हमें मौज करने से मतलब किसकी चाची ताई है ॥ बहन बहनसे झगड़े लड़ता भाई से वो भाई है ॥५॥ जामा अंगा दिया त्याग औ पगड़ी फाड़ बहाई है । पहने कोट पतलून मीस पर टोपी गोल जमाई है ॥ तोड़ तख़्त औ सिंहासनको लाके बिंच बिछाई है । खीर खांड़को त्यागन करके रोटी डबल पकाई है ॥ छोड़के संध्या गायत्री को सबकी करी सफाई है । गिरजाघरमें जाकर के ईसाकी करी बड़ाई है ॥ बात करें सब अंगरेज़ी में निज भाषा बिसराई है ॥ ६ ॥ मित्र शत्रु सम हुये प्रीति की डोरी तोड़ जलाई है । लगे पंच परपंची करने सच्ची बात लुकाई है ॥ विद्याहीन जो हुये विप्र गायत्री वेद भुलाई है । क्षत्री बैठे पहन के लहंगा ले तलवार छिपाई है । बन आई ना कुछ बनियों से माया योंही लुटाई है ॥ शूद्र भये धनवान् करें ऊंचे कुल के सेवकाई है । चार वेद बिन पढ़े नाम की पौंवों की चौबाई है ॥७॥ अपूज पुजने लगे कहें सब शिर पर देवी आई है । घर २ में गुलगुले शेख़ सद्दो की चढ़ी कढ़ाई है ॥ परब्रह्म को छोड़ भूत प्रेतों की दई दुहाई है । सूड़ हिलाती

कहीं मलिनियां कहे कुसुम्भी माई है ॥ बच्चे बाले भूखे मरते मय्यद को हार चिढ़ाई है । संत को कम्बल नहीं पतुरिया को कुरती सिलवाई है ॥ गुरु हरें चेले का धन चेला करता चतुराई है ॥८॥ विधवा लग गई पान चबाने दे सुरमा सुनयनाई है । नित करती श्रृङ्गार देखकर अहिवाती शरमाई है ॥ बैठे ज्वारी चोर अगामी हुआ जगत् अन्याई है । सब लक्षण विपरीत सुनो घर घरमें होत लड़ाई है ॥ गऊ जायँ लाखों मारी नित काटत सीस कसाई है । इसीसे पड़ता काल सृष्टिमें सम्पत् सकल सिराई है ॥ कहे बिलाकट सुन हितसे यह कलियुग लीला गाई है । उलटा चलन चला दुनियांमें सबकी मत बौराई है ॥९॥

—※—

॥ काशीमाहात्म्य ॥

देखी तुमरी काशी । लोगो देखी तुमरी काशी ॥ जहां विराजैं विश्वनाथ । विश्वेश्वरजी अविनाशी ॥१॥ आधी काशी भाट भंडेरिया । ब्राह्मण और संन्यासी ॥ आधी काशी रण्डी मुण्डी । रांड़ खानगी खासी ॥२॥ लोग निकम्मे भङ्गी गञ्जड़ । लुच्चे बेविश्वासी ॥ महा आलसी झूठे शुहदे । बेफ़िकरे बदमासी । आप काम कुछ कभी करें नहिं । कोरे रहैं उपासी ॥ और करें तो हंसैं बनावैं । उनको सत्यानासी ॥४॥ अमीर सब झूठे और निन्दक । करैं घातें वि-

खांसी। सिंकारशी डरपुकने सिट्टू बोलै बात अकासी॥५॥ मैली गली भरी कतवारन। भड़ीं चमारिन पासी॥ नीचे नलसे बदबू उबले॥ मानो नरक चौरासी॥६॥ कुत्ते भूंकत काटन दौड़ैं। सड़क सांड़ सों वासी॥ दौड़ैं बन्दर बने मुछन्दर। कूदैं चढ़े अगासी॥७॥ घाट जाओ तो गङ्गापुत्तर। तोचैं दे गल फांसी॥ करे घाटिया वस्तर मोचन। दे दे के सब झांसी॥८॥ राह चलत भिखमङ्गे नोचैं। बात करैं दातासी॥ मन्दिर बीच भडेरिया नोचैं। करैं धरमकी गांसी॥९॥ सौदा लेत दलालों नौचैं। देकर लासा लासी॥ माल लिये पर दुकनदार नोचैं। कपड़ा दे दे रासी॥१०॥ चोरी भये पर पूलिस नोचै। हाथ गले बिच फ़ासी॥ गये कचहरी अमला नोचैं। सोचि बनावैं घासी॥११॥ फिरैं उचक्का दे दे धक्का। लुटैं माल मवासी। कैद भयेकी लाज तनिक नहिं। बेशरमी नङ्गासी॥१२॥ घरकी जोरू लड़के भूखे। बने दास औ दासी। दाल कि मगडी रगडी पूजैं। मानो इनकी मासी॥१३॥ करि व्यवहार साख बाधैं सब। पूरी दौलत दासी। घालि रुपैया काढ़ि दिवाला। राल डकारैं ठांसी॥१४॥ काम कथा अमृत सी पीवैं। समुझैं ताहि बिलासी॥ राम जाम मुंहसे नहिं निकले। सुनतहि आवै खांसी॥१५॥ देखी तुमरी काशी भैया देखी तुमरी काशी॥ हरिश्चन्द्रचन्द्रिका, बनारस अगस्त सन् १८९१ ई०

ओ३म् तत्सत् परमात्मने नमः
" दयानन्दने तुम पै सर्वस्व वारा "

क्यास्वामीदयान्दमंक्कारथा

श्रीयुत लाला मलकराज भल्ला कृत
पं० रामविलास शर्म्मा मन्त्री आर्य्यसमाज शाहजहांपुर
ज़िला हरदोई द्वारा अनुवादित।

पुस्तक सं० २०
श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वती स्थापित
"वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड" द्वारा
प्रकाशित

दोहा॥

"दयानन्द" से पुरुषको, जौन कहै मक्कार।
"शर्म्मा" ऐसे अधमको सहस वार धिक्कार॥

पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक वेदप्रकाश
के प्रबन्धसे उनके स्वामियन्त्रालय
मेरठमें मुद्रित
आर्य्य संवत् १९७२९४८९९९ । मई ९७ ई०
प्रथम वार २०००] [मूल्य)॥। तीन पैसा

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित वैदिक-पुस्तकप्रचारकफण्डकार्य्यालयके विक्रेय पुस्तकोंका सूचीपत्र ॥

पुरुषसूक्त अर्थ सहित)॥ ईसाईमत संसारमें कैसे फैला (पं० लेखराम जी कृत))॥ महाशङ्कावली)। रामायण-का आल्हा)। नीतिशिक्षावली)। सुशीलादेवी)। ईसा-ईमतलीला)। ईसाईमतखण्डन १ भाग)। दूसरा)। शि-वलिङ्गपूजाविधान)। श्रीरामजीकादर्शन, कलियुगलीला, काशीमाहात्म्य)। नित्यकर्मविधिः)। पुराणकिसनेबनाये, श्रीस्वामीशङ्करानन्दके अनमोल उपदेश, अमेरिकानिवासी मि० डेविसके आर्य्यसमाज और स्वामी जी पर विचार, ईसाईलीला, ये पुस्तकें आधे २ पैसेकी हैं।

श्रीछत्रपति शिवाजीमहाराजका जीवनचरित्र।

ऐसा कौन द्विज है जो शिवाजीका जीवनचरित्र प-ढ़कर प्रसन्न न हो। इनका साहस उद्योग और वीरत-का स्वाद औरङ्गज़ेबसे बढ़कर और किसीको नहीं मिला, उस समयमें मुसल्मानोंको पराजित कर आर्य्यधर्म्मव-गौरव रखना इन्हीं का काम था।

ओ३म्

भूमिका ॥

प्रिय पाठक वृन्द! यह कतिपय पङ्क्तियां जो आप की सेवामें अर्पण की जाती हैं—इस प्रयोजनसे लिखी गई हैं कि आप बीसवीं शताब्दीके सबसे बड़े हिन्दूके विषय में ऐसा विचार किसी स्वार्थीके सत्यासत्य कहने पर स्थिर न करलें, जो अशुद्ध और एक ही पक्षका पोषक हो। य-द्यपि अनुकूल व प्रतिकूल विचार उसको लाभदायक अ-थवा हानिकारक नहीं हो सके, जब कि वह मनुष्यत्व उसके प्रभावसे बढ़ गया है तौ भी आपके लिये उसके विषयमें यथार्थ विचार रखना कठिन कार्य्य है क्योंकि इस विषयमें अशुद्ध विचार रखके आप एक सच्चे देशहि-तैषी और महात्माकी कृतघ्नताके दोषी होंगे क्योंकि अ-शुद्ध अशुद्ध ही है।

स्वामीदयानन्द सरस्वतीके विषयमें जो कुछ मैंने लिखा है उसमें केवल सत्यता पर दृष्टि दी गई है न मुझे सच्चा-ईसे विरोध करने का कोई कारण है, मैं आर्य्यसमाजका सभासद् नहीं कि अपने मत प्रचारकको और सब महात्मा-ओंसे बढ़ानेका ध्यान हो, न उसके विरोधियोंकी किसी सभासे मैं सम्बन्ध रखता हूं, कि उसके महत्त्व छिपानेका

उद्योग करूं, मेरा प्रयोजन केवल सर्वसाधारणको धोखे से बचाना है और यदि इस लेखको पढ़ कर आपमें से कोई महाशय भी स्वामीके विषयमें शुद्ध सम्मति स्थिर करलें तथा अशुद्ध विचार यदि कुछ उपस्थित हो दूर करदें तो मैं कृतार्थ होऊंगा॥ मोलकराजभल्ला

वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्डसे छपी हुई पुस्तकों का सूचीपत्र ॥

पुरुषसूक्त अर्थसहित)॥ ईसाईमत संसारमें कैसे फैला)।। महाशङ्कावली)। नीतिशिक्षावली)। रामायणका आल्हा)। सुशीलादेवी)। ईसाईमतलीला)। ईसाईमतखण्डन १ ला भाग)। दूसराभाग)। नित्यकर्मविधिः)। श्रीरामजीकादर्शन, कलियुगलीला और काशीमाहात्म्य)। स्वामीशङ्करानन्दके अनमोल उपदेश, पुराण किसने बनाये, अमेरिकानिवासी मि० डेवीसकी आर्य्यसमाज और स्वामी दयानन्दजी महाराज पर विचार, ये पुस्तकें आधे २ पैसेकी हैं।

बिना गुरुके संस्कृत सिखाने वाले पुस्तक—संस्कृतकी प्रथम पुस्तक)।।। द्वितीय -)। तृतीय =)।। चतुर्थ छपरहा है।

पता—ब्रह्मानन्दसरस्वती—आर्य्यसमाज मेरठ सिटी

ओ३म्

बहुत समय नहीं व्यतीत हुआ और वर्त्तमान महाशयोंको कलकी बात जान पड़ती होगी जब कि अंग्रेज़ी शिक्षा "हिन्दसंसार" में एक बड़ा परिवर्त्तन उत्पन्न कर रही थी और पश्चिमीय विचार आर्यावर्त्तकी काया पलट रहे थे और भ्रान्तियुक्त पुराने विचार नये अनुभवोंके आगे पददलित हो रहे थे और ईसाइयोंका तीन (पिता पुत्र पवित्रात्मा) वाला मन्तव्य तेतीस करोड़ देवताओंको भगा रहा था, यह समय हिन्दुओंके लिये बड़ा सुकुमार था, परिवर्त्तनकी एक बड़ी तरङ्ग निकट ही दिखाई देती थी और वह सदाका पुराना गृह जो शताब्दियोंके प्रलयोंसे बच रहा था इस नूतन तरङ्गके आगे गिरता दिखाई पड़ता था उसके बचानेको उद्योग भी हो रहा था, परन्तु वह उद्योग निर्बल था, एक बहुत ही बड़े उद्योगकी आवश्यकता थी जिसका सामान उसके रक्षकोंके हाथमें न था।

अद्भुत खींच तान थी, एक सनातन व प्रभावशाली मत को जो भ्रमयुक्त बातोंसे दबा हुआ और मूर्खता में फंसा हुआ था. अपने निर्बल हाथों से एक गरांडील युवामत का जिसके सङ्ग विद्या व सभ्यताकी समस्त शक्तियां थीं सामना करना था, प्रगटमें जोड़ बराबरका न था, आ-

क्रमण करने हारा सब ओरसे बली था, अधिकांश मनुष्योंकी सम्मतिमें यह सामना सिड़िपन था।

बहुत से मनुष्य ऐसे थे जिनको अपने पुरुषाओंके धर्मका प्यार आज्ञा नहीं देता था कि उसकी भविष्य भयानकदशाका चित्र हृदयके सन्मुख लावें।

कुछ ऐसे थे कि जिनकी आशायें उनके हृदयोंको थमें थीं वह सोचते थे कि जो धर्म बौद्धमतके प्रचार और इस्लामी खड्गसे रक्षित रहा, वह इस नवीन आक्रमण को रोकनेका कोई न कोई यत्न अवश्यही निकाल लेगा ऐसे विचारवालोंकी संख्या थोड़ी थी, यह और ऐसेही ऐसे अन्यान्य विचार बहुतसे हृदयोंमें आते जाते थे, पर कोई नहीं कह सक्ता था कि इस खींच तानका फल क्या होगा।

इधर नई तरङ्ग पुष्ट होती गई और उसकी थपेड़ की चोट बढ़ती गई उधर हिन्दुओंके मित्रोंकी आशायें निराशामें बदलने लगीं, क्योंकि उस आपत्तिकालमें कोई रक्षक न था, कोई शंकराचार्य्य कोई गोविन्दसिंह दृष्टि न आता था।

परन्तु एक शङ्कर आनेवाला था और उनकी आ-

शाकी अपेक्षा शीघ्र आने हारा था वह उस समय उन के मध्यमें कार्य्य कर रहा था यद्यपि अभी अप्रसिद्ध संन्यासी था, इस मनुष्यने दो चार वर्षमें क्षेत्रकी दशा बदल दी, नीचे ऊपर और ऊपर नीचे, ऐसा पलटा दिया कि भगोड़े हिन्दू झगड़ालू व लड़ाके होगये, कृश्चियनमत को आगे बढ़ना तो एक ओर रहा, पीछे हटना पड़ा— हिन्दू धर्मको ही न समझनेहारे उसपर लोट पोट होने लगे और शिक्षितजन जो निज मतसे भाग रहे थे, उस पर ऐसे जमें कि अब हिलाना कठिन है, वेद भी वे वेद न रहे, जिनमें जड़ प्रकृतिकी पूजा अश्लील व निष्प्रयोजन बातोंसे भरी हैं- ईश्वरको एक जतानेवाले और फिलासफी के वेद होगये।

यह पुरुष पितागृहसे युवावस्थामें निकलके नाना भांतिके वेषोंमें घूमता रहा, जो इस देशमें प्रचलित हैं, वर्षों नङ्गा रहा वर्षों वनोंके फल फूलसे पेट भरता रहा मुद्दतों तीर्थों व मठोंमें भटकता फिरा।

एक साधारण मनुष्य को जिसको सत्यकी अति क्षुधा न होती, सम्भव था कि सहस्रों सुन्दर स्थानों व नाना भांतिके सबल वेषोंमें से किसी एकमें मोहित होजाता,

जहां आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करता, परन्तु यह निराला पुरुष था, हृदयमें नूतन प्रकारकी बलवती क्षुधा थी— जिसको प्राकृतिक सुन्दरता (नेचुरलब्यूटी) और सांसारिक बल दूर न कर सके थे, वह रोटी मांगता था और पत्थर पाता था।

क्षुधा निवृत्त न हुई, जबलौं कि मथुरा न पहुंचा जहां उसके हृदयने एक महात्माकी सेवामें शांति पाई, वहां उसने वह विद्या पाई जिसने उसको स्वामी दयानन्द बना दिया और जिसके द्वारा उसने आर्य्यावर्त्तके पण्डितोंको जीता और शिक्षितोंको अपनी प्रजा बना लिया, विद्याध्ययन समाप्त होने पर गुरुसे विदा होनेके सम्बन्धमें एक उसकी कहानी है जिसको हृदयग्राहिणी होनेसे हम विवश हैं- कि यहां पर लिख देवें—

इस देशकी रीति है कि पठन समाप्त होने पर विदा के समय गुरुको दक्षिणा दी जाती है- जब स्वामीदयानन्द विदा होने लगा तो गुरुने दक्षिणा मांगी, उत्तर दिया महाराज मेरे पास धनादि कुछ नहीं जो आज्ञा हो सो सकार लाऊं, गुरुने कहा कि धन मेरे कामका नहीं- न मुझे उसकी चाह है, मेरी दक्षिणा यह है कि जो वेद वि-

द्या तुमने यहां सीखी है, उसका प्रचार भूले आर्य्यावर्त्तमें करो, इससे जाना जासक्ता है कि जिस महात्माने उसके हृदयमें धर्मकी अग्नि फूंकी, वह किस प्रकारका पुरुषथा-

इस स्थान पर हमारा प्रयोजन स्वामी दयानन्दसरस्वतीजीका जीवन चरित्र लिखना नहीं है, कि उनके जीवनका व्योरावार वृत्तान्त सर्वसाधारणके सन्मुख प्रस्तुत करें, न इस बड़े कार्य्यके निमित्त हमारे पास किसी भांतिका सामान है, इस स्थान पर हम उस महात्माके सम्बन्धमें एक प्रश्न पर कुछ उल्लेख किया चाहते हैं, जो अधिक बार उठाया जाचुका है, वह प्रश्न इस पुस्तकका "टाइटेल" है, "क्या स्वामी दयानन्द मक्कार था"।

यद्यपि स्वामीके अनुयायियोंमें ऐसे पुरुष हैं, जो उसकी सत्यता पर प्रश्न उठानेको अधर्म समझते हैं और उसके विरोधी मनुष्योंमेंसे भी कई उसके विषयमें बहुत ही बुरी सम्मति रखना अपने धर्मका एक बहुत बड़ा भाग जानते हैं, तौ भी सौभाग्यवशात् प्रथम प्रकारके पुरुष बहुत नहीं हैं, और द्वितीय प्रकारके तो उनसे भी न्यून हैं, अतएव हमको निश्चय करनेका कारण है कि सर्वसाधारणको यह लेख रोचक होगा, जिन लोगोंका यह कथन

है कि स्वामी दयानन्दने अपने जीवनको कपटकी लड़ी बना रक्खा था, जो कुछ वह प्रचार करता था उसको मानता न था, वेद केवल धोकेकी टट्टी थे, जिसकी आड़में कपटका शिकार खेलता था, वह जन कोई मौखिक वा लिखित साक्षी अपने निश्चयके विषयमें नहीं दिखला सके, उनकी साक्षीका निचोड़ केवल इतनाही है कि थोड़े से मनुष्य कहते हैं, कि उसने उन्हें आर्य्यसमाजमें सम्मिलित होनेको कहा, और जब उन्होंने बतलाया कि वह वेदोंको ईश्वर रचित नहीं मानते, तो उसने उत्तर दिया कि इसकी कुछ बात नहीं।

यहां पर हम यह बात नहीं लिखते कि इन थोड़ेसे मनुष्योंके विरुद्ध सहस्रों उत्तम, विद्वान् पुरुषोंकी साक्षी लाई जासक्ती है जिन्हें स्वामीसे मिलने, सुनने और जानने के अधिक अवसर मिले हैं और जो उसकी सचाई को शुद्ध हृदयसे निश्चय करते हैं, न उन थोड़ेसे मनुष्योंके विश्वास पर इस कारण कुछ दोष लगाते हैं, कि वह किसी न किसी भांति के स्वार्थी हैं।

यद्यपि यह दोनों बातें हमारे लेखमें लाभदायक हैं तथापि हम इन दोनोंसे लाभ नहीं उठाया चाहते हैं,

और फिर इस साक्षीकी जांच करते हैं।

इस बात पर अधिक बल देना व्यर्थ है कि यह साक्षी स्वामीके अपने विश्वास पर दूरसे दूरका प्रभाव भी नहीं डालती, क्योंकि बड़ी खींचतान करने पर भी उसका यह फल नहीं निकाला जा सक्ता है, कि वह वेदोंको ईश्वरीय पुस्तक नहीं मानता था, न इस बातको समझनेके लिये बड़ी समझ की आवश्यकता है, हां यह कहा जासकता है, कि वह आर्य्यसमाजमें सम्मिलित होनेकी योग्यता इसको नहीं समझता था, कि सम्मिलित होनेकी इच्छा रखनेहारा पुरुष वेदोंको ईश्वररचित मानता हो, इससे वह इन्कार नहीं होसकता, क्योंकि उसका अपना निश्चय शुद्ध था, और उसमें वेदोंके निमित्त बड़ेसे बड़ा स्थानथा, जो उसके लेखों व्याख्यानों पुस्तकों और पत्रोंसे प्रकट है। यदि यह कहा जाय कि जो वस्तु उसके विश्वासका इतना अधिक भाग लेती थी, उसे अपनी सोसाइटीमें आवश्यक न ठहराना अनुचित जान पड़ता है, तो उत्तर यह है कि यह उसके निश्चयमें सम्मति थी, और आर्य्य बननेके लिये अवश्य थी, इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुतसी वस्तुओं की आवश्यकता थी, परन्तु आर्य्यसमाजमें सम्मिलित

होना आर्य्य बन्ना न था, केवल आर्य्य होनेकी चाह व उद्योग था। एक आक्षेप साधारण दृष्टिसे पुष्ट देख पड़ता है वह यह कि ऐसे लोगोंसे जो वेद को ईश्वरीय नहीं मानते, आर्य्यसमाजके नियमों पर हस्ताक्षर कराना कपटमें सहायक होना था॥

साधारण दृष्टि में यह आक्षेप कैसा ही पुष्ट क्यों न देख पड़े, निर्मूल सिद्ध होता है, कि जब हम स्वामी जी कार्य्यवाहीका और सुसाइटियोंकी कार्य्यवाहियोंके सङ्ग मिलान करते हैं॥

उदाहरण—प्रायः सुसाइटियोंमें प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि ईश्वर एक है, और सर्वव्यापक व सर्वद्रष्टा है।

अब जो पुरुष यह प्रतिज्ञा कराते हैं, या प्रतिज्ञापत्रों पर हस्ताक्षर लेते हैं, वह भली भांति जानते हैं कि प्रतिज्ञा व हस्ताक्षर करने वाले न तो ईश्वरको एक या सर्व व्यापक व सर्वद्रष्टा मानते हैं, न मानने योग्य हैं, क्योंकि ईश्वरको उक्त गुणयुक्त मानना खेल नहीं कि प्रत्येक अठारह वर्षका युवा या अपना नाम लिख सकने वाला लड़का मान या समझ सके, प्रत्येक नया मुसलमान इस बातकी प्रतिज्ञा करता है कि महम्मद रसूल है, और कौन नहीं

मान सकता कि लग भग प्रत्येक मुहम्मदके नाम मात्रके अतिरिक्त उसके विषयमें कुछ नहीं जानता।

ईसाइयोंको लेलो, प्रत्येक मनुष्य उनके दीनमें सम्मिलित होनेसे प्रथम एकमें तीन व तीनको एक माननेकी प्रतिज्ञा करता है, क्या हर एक नया मसीही इस गूढ़वार्त्ता को समझता है, और क्या उपदेशक व बपतिस्मा देनेवाले इस प्रतिज्ञाकी वास्तविक दशाको नहीं जानते, फिर क्या यह सब लोग कपटी हैं नहीं कदापि नहीं, न हस्ताक्षर व प्रतिज्ञाका इससे बढ़के प्रयोजन हैं, कि वह हस्ताक्षर व प्रतिज्ञा करनेहारेकी इच्छाको प्रकट करते हैं, उससे वह उन नियमोंका पूर्णप्रकार ज्ञाता नहीं होजाता है, जिनके लिये प्रतिज्ञा व हस्ताक्षर किये, किन्तु आरम्भ करनेहारा विद्यार्थी बनता है, वह उनको मान नहीं लेता (क्यों कि मान्ना जानेके विना एक व्यर्थ शब्द है) केवल मानने का उद्योग करता है, और यदि अन्यमतोंके उपदेशक ऐसे ह० क्ष० लेकर मक्कार नहीं, तो स्वामी दयानन्द मक्कार कैसे हो सकता है॥

स्वामीने अनोखापन ही क्या किया, कौन मत प्रचारक व महात्मा संसारमें कहीं हुआ है, जिसने निश्चय

न करनेवालोंको प्रेरणा न की हो, और यदि वह उनको निज मतमें न लाता तो किसको लाता यदि उससे प्रथम सबका निश्चय होता तो उसकी शिक्षाका कारण ही क्या था, वह मार्गदर्शक किसका होता, फिर नूतन विचारोंके स्वीकार करनेका मार्ग कौन है, क्या निश्चय घंटों या मिनटोंका कोई भानमतीका कार्य्य है, या समस्त आयुकी खींच तानका उत्तम निबटारा है ॥

क्या निश्चय नये विचारवालोंमें सम्मिलित होनेके बाद न केवल बाद किन्तु बहुत विलम्बके बाद होता है, वा सम्मिलित होनेसे प्रथमही उसका होना आवश्यक है, जहां तक देखा जाता है, एक पुरुषका आश्चर्य्यमय चाल चलन और मोहित करनेहारी वाणी मनुष्यके हृदय पर प्रभाव डालते हैं उसको जान पड़ता है कि उसके जीवन के नियम अथवा उसकी वक्तृताका मूल सत्य पर हो, इस विचारसे लोग नयेर विचारोंको ग्रहण करते हैं, और बहुतसे अभ्यास व सत्संग आदिके द्वारा निश्चयकी दशा तक पहुंच जाते हैं बहुतसे अन्य कारणोंसे कुछ समय तक रेंग कर ही रह जाते हैं, आर्य्यसमाजको छोड़कर अन्य सुसाइटियोंको देख लो, ब्राह्मसमाज ही सही, उसमें कितने

पुरुष होंगे, जिन्होंने उन नियमोंमें निश्चय किया है जिन पर हस्ताक्षर कियेहैं, मेरा प्रयोजन निश्चयसे मौखिक प्रतिज्ञा नहीं किन्तु सच्चे निश्चयसे है, इसका उत्तर हम पाठकों पर छोड़ते हैं ॥

नये उत्पन्न होने वालोंको देखो तो यह बात साफ़ होजायगी, प्रत्येक मनुष्य अपने बाल बच्चोंको उनके निश्चय करने वा इस योग्य होनेके प्रथमही अपने मतमें सम्मिलित करता है, हिन्दू यज्ञोपवीत पहराता है, मुस्लमान ख़तना कराता है, ईसाई बपत्तिस्मा दिलाता है, इसी भांति बौद्ध, ज़र्दुश्ती (अग्निपूजक) ब्रह्मो इत्यादि भी बालकोंसे सम्बनध रखनेवाली रीतियां पूरी करते हैं, जिससे उनका अपने माता पिताके मतमें सम्मिलित होना समझा जाता है, अब यदि एक मनुष्य को पूर्ण निश्चय (पूरा निश्चय ही निश्चय है अधूरा नहीं) कराये बिना मतमें लेना मक्कारी है तो उसको मतमें लाना जबकि वह निश्चय योग्य ही नहीं, मक्कारी नहीं ? ॥

तो क्या प्रत्येक सन्ततिमान् पुरुष मक्कार ठहरा, नहीं कदापि नहीं, क्योंकि पूरा विश्वास उसके और मक्कारीके मध्यमें आके खड़ा होजाता है, पूर्ण निश्चय है कि उसक

बाल बच्चे अपने माता पिताका मत स्वीकार करैं, यही ध्यान उसको मक्कारीके दोषसे बचाता है।

इसके अतिरिक्त जिस मतप्रचारीने ईश्वरके भेजे हुये होनेका दावा किया, और संसारको निज मतमें लानेका उद्योग किया, उसने ईश्वरकी ओरसे होनेका प्रमाण क्या दिया।

यदि धर्मसम्बन्धी पुस्तकोंको सत्य माना जाय तो प्रत्येकने आश्चर्य्यमें डालने वाले कौतुक दिखाये, जैसे ईसा ने मुर्दे जिलाये, या रोगियोंको चंगा किया, इनसे और उसके ईश्वरके ओर होनेसे क्या सम्बन्ध हैं, केवल यह कि इन अद्भुत कौतुकोंने जिनको वह दिखाये गये, उन लोगोंको यह समुझाया कि जो पुरुष ऐसे कर्तब कर सकता है जो सर्वसाधारण नहीं कर सकते सम्भव है कि वह ईश्वरके विशेषोंमें से हो, और उसकी ओरसे विशेष शक्ति रखता हो, इस सम्भवसे आरम्भ करके वह जहां पहुंचे उसके बतानेकी आवश्यकता नहीं॥

ऊपरके लेखसे विदित होता है कि किसी मनुष्यके लिये किसी मतमें सम्मिलित होनेकी योग्यता यह नहीं है कि वह उसे पूर्णतया समझता हो, या उसके मन्तव्य पर

निश्चय करता हो किन्तु उसको सत्य माननेकी ओर इच्छुक हो, और उसमें निश्चय करने पर कटिबद्ध हो, और जब यह बात उन मतोंके लिये जिनका भरोसा अद्भुत कौतुकों पर है ठीक है, तो उस पुरुषके मतसे जिसका व जिसके मतका सहारा विद्या है, कितनी घनिष्ठ-सम्बन्ध रखनेहारी होसकती है, वह जानता था कि उसके मंदिर को विद्या व बुद्धिसे भय नहीं है, और दृढ़ निश्चय था, कि वह भ्रमयुक्त अन्धी बातों पर अवश्य विजय पा जावेगा, जैसे हमको निश्चय है कि कल सूर्य्यके निकलने पर अन्धकार जाता रहैगा॥

साथ ही उसको यह भी निश्चय था कि वह चक्षुहीन नास्तिकपनको भी जीत लेगा, क्योंकि (उसकी सम्मति में) वह बुद्धि व अनुभवके सन्मुख न ठहर सकेगा, हम उसकी सम्मतिके शुद्ध वा अशुद्ध होनेकी बात नहीं कहते परन्तु प्रकट है कि वह ऐसा निश्चय रखके नास्तिकतासे उतना ही निडर था, जितना कि भ्रमाच्छादित बातोंसे अतः वह नास्तिकतासे किञ्चित् न डरा, केवल अभय ही नहीं रहा कुछ आगे बढ़ गया।

उसने नास्तिकता व नास्तिकोंको ढूंढा और निज स-

च्छास्त्रोंसे उसका सामना किया। उसकी कृतकार्य्यताको सिद्ध करने वाले बहुतसे पुरुष हैं, जिनके हृदयसे विश्वास ने अविश्वासको निकाल दिया है, और जो उसके उपदेश से पक्के नास्तिकसे दृढ़ आर्य्य होगये हैं॥

स्वामीदयानन्दका नास्तिकोंको खोजना निष्प्रयोजन न था, देशकी दशाको देखके वह जान गया कि इन लोगोंमें विशेष गुण हैं, जो सर्वसाधारणमें नहीं हैं, वह भ्रमानेहारी बातोंसे छुटकारा पाचुके थे, और बुद्धिको अपना मार्गदर्शक मान चुके थे, जबकि सर्वसाधारण बुद्धि की ठहराई हुई बातको माननेके लिये कटिबद्ध न थे, जिसकी ओर स्वामीका ध्यान था॥

इस कारण कि वह लोग धर्मको बुद्धिकी पहुंचसे अधिक समझते थे, विरुद्ध उनके नास्तिक बुद्धिके अतिरिक्त और किसीको सत्यासत्यके निर्णयका द्वार न मानते थे, और समस्त संसारके मतोंको बालकों व मूर्खोंके बहलानेकी कथायें समझते थे। दोनों भूल पर थे, क्योंकि बुद्धि और विश्वास ही मतके दो अंश हैं, इनमेंसे एक सच्चा धर्म नहीं उत्पन्न कर सकता, निरे विश्वासका मत अन्धा भ्रमाच्छादित विचार है, और केवल बुद्धिका मत रूखी तर्क

वितर्क है परन्तु इन दोनों प्रकारके मनुष्योंमें बहुत बड़ा भेद केवल यह था, कि नास्तिकोंके नेत्र खुले हुये और सर्वसाधारणके बन्द थे, अतएव द्वितीयका परिवर्त्तन कर देना प्रथमकी अपेक्षा सहज था।

आर्य्यसमाजमें एक विशेषता है, एक वस्तु अन्य मतों से विलक्षण है, जिसको ध्यानमें रखनेसे स्वामीजीकी और हमारी कठिनाइयां घट जाती हैं, वह यह है कि उसमें मस्तिष्कसे अधिक काम लिया जाता है, संसारमें कोई मत ऐसा नहीं, जो फ़िलासफ़ी व तर्कसे थोड़ा बहुत भयभीत न होता हो, परन्तु आर्य्यसमाज उनको अपना सहायक समझता है, अन्य मतस्थ बुद्धिको मतके आधीन करते हैं, परन्तु आर्य्य लोग बुद्धिको धर्म जानते हैं, यहां तक कि ईश्वरीय वचनके परखनेमें एक कसौटी यह भी बतलाते हैं, कि वह सृष्टिक्रमके विरुद्ध न होवे, प्रकट है कि ऐसे धर्ममें वेदोंके न जानने और न मानने वालोंमें बड़ा भेद नहीं हो सक्ता, स्वामीके विचारमें भी इन दोनों दशाओंमें अधिक अन्तर न था।

उसके अनुसार वे मानते न थे, क्योंकि जानते न थे और जाननेके निमित्त उस समाजमें सम्मिलित होना

आवश्यक था, जिसमें वेदोंका पढ़ना पढ़ाना परमधर्म है, और जिस प्रकार निरे विश्वासके मतोंमें निश्चय व विश्वास का ध्यान उनमें सम्मिलित होनेकी योग्यता थी, उसके मतमें इस लिये कि वह बुद्धिका मत था, अनुभव व अन्वेषणका ध्यान ही सम्मिलित होनेकी पूर्ण योग्यता ठहरी, और यह गुण उन लोगोंमें अधिक था, जिनसे उसको कुछ सम्बन्ध रहा।

यह प्रश्न भी हो सकता है कि देशके शिक्षित पुरुषों के अतिरिक्त इस देशकी मनुष्य संख्याका कोई भाग स्वामी दयानन्दके समाजमें नहीं आया, ये लोग अविश्वासी थे, उनका एक दम बदल जाना सम्भव है, यदि वह सच्चा होता तो उसका प्रभाव देशवासियोंके अधिक भाग पर क्यों न पड़ता, इसके उत्तरमें प्रश्नोंकी लड़ी बंध जायगी, बुधका प्रभाव प्रथम अपने माता पिता व उसके दर्बार पर क्यों न पड़ा, नानकके शिष्य उच्चपदाधिकारी खत्री और बड़े ग्रहोंके ब्राह्मण क्यों न हुये, गोविन्दसिंहके प्राण पर खेलने वाले साधी राजपूतोंमें से क्यों न निकले? इन्में से प्रत्येकका उत्तर यही है, कि ऐसा होना प्राकृतिक प्रकरणके विरुद्ध था, प्रचारकका प्रभाव आरम्भके

समय केवल उन सज्जनों पर ही सीमाबद्ध रहेगा, जो किसी विशेषताके कारण उसका स्वागत करनेको कटिबद्ध हों।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीका मिशनविद्याका मिशन था, उसका उद्देश्य शिक्षितोंको धर्म और अविश्वासियों को निश्चय देना था, अपढ़ मनुष्योंके लिये उसको स्वीकार करना सम्भव ही न था।

सत्य यह है कि इस नये स्वामीका विचार यदि ठीक मानी जाय तो पुराने धर्ममें शामिल होने के लिये शिक्षित होना सबसे बड़ी योग्यता थी, वह समझता था कि यही लोग उसके धर्मको स्वीकृत कर सके हैं, इस कारणसे उसने हर प्रकारकी अयोग्यताओं पर जो इन लोगोंमें थीं दृष्टि नदी, उसे दृढ आशा थी कि शिक्षा व सभ्यताके साथ उनके अवगुण अच्छाइयोंमें बदल जावंगे हां! इस कार्य्यको पूर्ण करनेके लिये एक पाठशालाकी न्यूनता थी, यह कमी उसने आर्य्यसमाज बनाके पूरी करदी, जो उसकी दृष्टिमें एक ओर सीखे हुओंका समूह था, दूसरी ओर सीखनेवालोंकी शाला, न केवल विश्वासियोंके लिये बनी थी, किन्तु विश्वासके नये विद्यार्थियोंके लिये भी खुली थी। इस प्रकार प्रत्येक महात्माने

प्रत्येक समयमें किया है। और यदि वह निश्चय किये हुओंको ही ढूंढ़ते, तो किसी मतका नामभी संसारमें न होता।

भला! इन विचारोंको छोड़के यदि यह पूंछा जाय कि इस पुरुषका जिसने कृतकार्य्यताके साथ सदाका जाल फैलाया प्रयोजन क्या था? तो उसके उत्तरोंमें एक यह होगा कि देशभलाईके लिये उसने यह सब किया, परन्तु यह अन्वेषणीय प्रश्नोंके सन्मुख ठहर नहीं सक्ता है, क्या वह ऐसा बुद्धिमान् था कि खोटको वर्षों खड़ा कर दिखाया, और ऐसा बुद्धिहीन था कि यह न समझा कि असत्य पर किसी भलाईका मूल नहीं स्थिर हो सक्ता, उसमें बाहरी बात किञ्चित् न थी, वह जो कुछ था देशी था, और देशभलाईका विचार ही हिन्दुधर्मके लिये विदेशी विचार है, वह पुरुष जिसकी शिक्षा, पालना बुद्धि विद्या रहन सहन सब कुछ देशी था, वह यह परदेशी विचार जो हिन्दूधर्मकेलिये बाह्य है, कहांसे लाया, यदि अंग्रेज़ी शिक्षा पाये हुये पुरुषोंसे तो इन लोगोंमें काम करनेके लिये उसको किस वस्तुने उत्तेजित किया, नहीं २ यह विचार ही अशुद्ध है मक्कारीका प्रयोजन अपने लिये

होता है जातीय नहीं, कपट व परोपकार, धोखा व जातिभलाई, मक्कारी व देशभलाई, जोड़े नहीं, वह कभी एकत्र नहीं हुये न अब हो सक्ते हैं।

यह नहीं तो क्या मान बड़ाई उसका प्रयोजन था? उसका मान शिक्षित पुरुषोंकी अपेक्षा सर्वसाधारण हिन्दुओंमें अधिक हो सक्ता था, जहां तक हम जानते हैं, आर्य्यसमाजमें उसका इतना मान न हुआ, जितना एक साधारण योग्य साधुका सर्वसाधारण हिन्दुओंमें होता है।

एक बार लाहौर आर्य्यसमाजके उत्सवमें स्वामी उपस्थित थे, उससे कहा गया कि वह सभाका प्रधान बने, उत्तर मिला कि जब तुम्हारा प्रधान उपस्थित है, तो मुझे प्रधान बनाना निरी मूर्खता है, हां! मैं सभासदों की दशामें सम्मिलित हो जाता हूं, ऐसा ही हुआ, अग्रगण्यकी उपस्थितिमें सभापति कोई और हो, वह न हो और सभासद्की भांति सभामें सम्मिलित हो, यह मान प्रतिष्ठाकी भूख है? वा कोई सारगर्भित वस्तु है, यदि यही मक्कारी है; तो उस मक्कारसे अधिक और कोई अग्रगण्य होनेके योग्य न था, फिर क्या धनसे उसका प्रयोजन था, धनकी उसको क्या आवश्यकता थी, यदि होती

भी तो हिन्दुओंमें उसको अधिक प्राप्त हो सक्ता था,* यदि वह अपने हृदयको थोड़ा दबाता, मूर्त्तिपूजाके अनुकूल चाहे न होता, परन्तु विरोध न करता, शिक्षितों से उसको क्या मिला? पुस्तकें बिकीं वह भी सर्वसाधारण हिन्दुओंमें अधिक बिक सक्ती थीं।

यदि यह भी नहीं तो क्या प्रसिद्ध होनेसे उसका प्रयोजन था, इस पर भी वही बातें आती हैं जो धन पर उसको अपने जीवनमें यश ही क्या मिला, यदि कुछ मिला तो अपयश, जब कि उसके से विद्वान् व उससे कम सच्चे पुरुष हिन्दुओंके देवता बने बैठे थे, उससे शैतानसे भी अधिक लोग घृणा करते थे, कहीं रूसका गुप्त चर, कहीं ईसाइयोंका नौकर, कहीं म्लेच्छोंका वैतनिक, यहशब्दथे, जो हिन्दुओंके समूहमें उसके नामके साथ लगाये जाते थे, हिन्दुओंकी इच्छानुसार वेदान्तका एक ग्रन्थ या षट् शास्त्रोंमेंसे एककी टीका सर्वसाधारणमें उसको ऐसा प्रसिद्ध करता, जो वर्त्तमानदशामें यदि वैसी प्रकार रही

*जहां उसकी सी बुद्धिके पुरुषको एक राज्यकी आय हो सक्ती थी।

तो आने वाली शताब्दी में कठिनतासे प्राप्त होगी।

अब यदि इन वस्तुओंमें से किसीसे भी उसका प्रयोजन न था, तो फिर कपट उसने क्यों फैलाया? केवल कपटका प्रचार ही कभी मनुष्यका प्रयोजन नहीं हो सक्ता, न कपटमें यह शक्ति है कि आपत्तिकालमें आश्रय देवे, और मार्गदर्शक बने, अतः सत्यका प्रकाश उसका मार्गदर्शक था, क्यों कि असत्यके अन्धकारने कहीं मार्ग दर्शानेका कार्य्य न किया।

जो लोग स्वामी दयानन्दको सक्कार बताते हैं वह न केवल मनुष्यकी उत्पत्तिकी ही मानहानि करते हैं किन्तु शिक्षित समूहकी भी।

कपट देखनेमें सुवर्णके समान हो, परन्तु भीतरी खोट बहुत दिन छिपे नहीं रहते हैं, और आज नहीं तो कल अवश्य प्रकट हो जाते हैं, यह बात मनुष्यकी प्रकृतिमें है।

और कपटीका कपट व सावधानी उसका भेद छिपानेमें एक विशेष समय तक ही सहायता देकर रह जाती है, वह समय अधिक लम्बा चौड़ा नहीं होता है, तत्पश्चात् उसका समस्त भेद खुल जाता है, जैसे स्वस्थदशामें आमाशय निकल जाने वाली वस्तुओंको स्वीकार नहीं

करता, और फेंक देता है, उसी प्रकार सुसाइटी सक्कारी को कभी किसी समय तक स्वीकार नहीं कर सक्ती, अतएव जब साधारण सुसाइटीमें भी कपट अधिक समय तक नहीं चलाया जा सक्ता है, तो ऐसे मनुष्योंमें जो पृथ्वीमें ख्यात् सबसे अधिक अविश्वासी हैं (मेरा अभिप्राय भारतवर्षके शिक्षित पुरुषोंसे है, जिनमें शीघ्र विश्वास की बुराई नहीं, अविश्वासकी है) उसको उत्तम भांति कृतकार्य्यता पूर्वक चलाना महान् असम्भव है, संसारके इतिहासमें ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसकी जनसंख्याका एक २ बहुत बड़ा बुद्धिमान् भाग एकत्र होकें एक कपटी पुरुषका अनुयायी होगया हो, और उसके अनुयायी होने से स्वार्थी बन जानेके स्थानमें निस्वार्थी बन गया हो कार्य्य से हटे नहीं कार्य्यमें लग जावे ।

यह बात भी विचारणीय है कि सक्कार वहावके साथ चला करते हैं, जातिकी इच्छाओंके सन्मुख होना उनके लिये निरर्थक और जातिकी बुराइयोंके साथ मुठभेड़ निष्फल होती है ।

परन्तु स्वामी दयानन्दने एक ओर मूर्त्तिपूजाके उस बहावका सामना किया जिसमें हिन्दू इज़्म सैकड़ो वर्ष

से बह रहा था, दूसरी ओर नास्तिकपनकी धाराको रोका जिसके निकलनेका स्थान नूतन एकओरी शिक्षा थी । इतने पर सन्तोष न किया उसने उस चबूतरेकोभी ठीक नहीं माना, जिसपर वर्त्तमान सामाजिक नियमोंका मन्दिर बना हुआ था । उसका विचार ठीक हो वा न हो, परन्तु यह बात छिपी नहीं है कि उसने विधवाविवाह का विरोध और विधवा नियोगका प्रचार किया है ।

यह उसकी सचाईका बड़ा भारी प्रमाण है कि उसने नियोग विषयको जिसको वह जानता था कि सब लोग बुरा समझें गे, अपने उपदेशके प्लेटफार्मसे पीछे नहीं हटाया, जो लोग आज उसको सक्कार बताते हैं और कल नियोग विषय पर वाद विवाद करते हैं, वह अपना खण्डन आप करते हैं ।

वह अभय था, अपने बलको जानता था। न सोसाइटीके बड़े २ जोड़ मेल न उसकी लम्बी लम्बी आज्ञायें जो धर्मके नामसे थीं, उसको भयभीत कर सकीं। ईंटें जो बहुतेरे स्थानोंमें उसपर बर्षाई गईं, उसको अपने कार्य्य से न रोक सकीं; कोलाहल उसके सिंहनादको न दबा सका, विष भी उसकी जिह्वाको बन्द न कर सका । गुरु गोविन्द

सिंहके पीछे किसी मनुष्यने धर्म्मके निमित्त इतने कष्ट न सहे जितने स्वा० दयानन्दने। मक्कारी इतने कष्ट उठानेकी शक्ति कभी नहीं दे सक्ती है।

फिर उसके अनुयायी मूर्ख और अनजान मनुष्य नहीं, ऐसे मनुष्य नहीं जो केवल अपने ही मनमें योग्य बने बैठे हों, ऐसे पुरुष नहीं जो खोटे खरेको न परख सक्ते हों, नहीं वह और ही भांतिके मनुष्य हैं। उनमें बहुत से यूनीवर्सिटियोंके डिग्री पाये हुये हैं, बहुत से न्यायालयोंकी कुर्सियों और वकालतके कमरोंको मान देने वाले हैं, ऐसे मनुष्य हैं जो महाविद्वान् व बुद्धिमान् कहे जा सक्ते हैं।

इन पुरुषोंकी शिक्षा, योग्यता, प्रतिष्ठा, इस बातके उत्तरदाई हैं कि वह खोटा खरा परखने के योग्य हैं। मक्कार उनकी दूरदर्शक दृष्टिके सन्मुख ठहर नहीं सक्ता। उसकी सचाईका सबसे बड़ा प्रमाण उसकी वास्तविक दशा थी, वह बना हुआ न था, अतएव झूठा भी न था, वास्तविकदशा कभी झूठी नहीं हो सक्ती। जैसे बुद्ध नानक, गोविन्दसिंह झूठे न थे क्योंकि उनका कथन व कर्म उनके मन्तव्यके अनुसार था, इसी कारण व उसी प्रकार स्वा० दयानन्द भी झूठा न था, उसकी वास्तविकदशा उसके

मुखसे टपकती थी, उसके प्रत्येक शब्दसे प्रकट होती थी, और उसके रचे हुये ग्रन्थोंमें कूट २ के भरी हुई है। सुना है कि एक बार एक मनुष्यने एक गुलाबका पुष्प स्वामीकी भेट करना चाहा, न लिया और उत्तर दिया कि "तुम बड़े मूर्ख हो जहां यह थां वहां दो दिवस और सुगन्धि देता, अब दो घण्टा बाद दुर्गन्ध देगा"। यह उत्तर सभ्यताका न हो, उचित भी न हो, गूढ़तत्त्वसे अवश्य भरा हुआ था। यह एक कहावत है। यह एक ही बात नहीं, जो पुरुष कुछ समय तक उसके साथ रहे हैं, वह इस प्रकार की और बातें बतलाते हैं जिनका लिखना यहां आवश्यक नहीं।

"स्वा०दयानन्द मक्कार था" ऐसा विचार वास्तवमें बड़ी नासमझीका है, यह मनुष्य जो गृह २ सत्यकी खोज करता रहा और उसके लिये नाना भांतिके कष्ट सहता रहा, जिसने उसके प्राप्त करने में बहुत से दुःख उठाये और उसके प्रचारमें इतनी विपत्ति झेली यह सब कपटके लिये किया? और सहा? अपने कुलके शिवालयों, वैष्णवोंके मन्दिरों, योगियों व संन्यासियों के मठोंने इस कपटीको शान्ति न दी, गङ्गातटके साधुओं, तपोवनके तपस्वियों,

हिमालयके सन्तों और भारतभरके ऋषियोंने इस कपटीको कपटका मार्ग न बताया, मक्कारीकी खोजमें उसने कोई बात उठा न रक्खी, मक्कारी ही के पूरा करनेको युवावस्थामें विद्यार्थी बना, और वर्षों पढ़ता रहा, यह अद्भुत मक्कारी है, यह मक्कारी प्रशंसनीय और धन्य है, जिसमें यह उत्साह और सन्तोष है।

इतने पर भी सन्तोष नहीं किया, मक्कारीको प्रचलित करने के अभिप्रायसे उसने हरिद्वार व कनखलमें पाठशालायें स्थापित कीं परन्तु निःस्वार्थी ब्राह्मणोंके लड़के मक्कारी न सीखे, वह पीढ़ियोंसे सत्याचारी और स्वच्छ थे। यदि गङ्गा यमुना आदि तीर्थोंके ब्राह्मण आपने देखे होंगे कि उनसे अधिक सच्चे और शुद्ध मनुष्य संसार भरमें कहीं नहीं हैं, वह और उनके पुत्र दयानन्दकी मक्कारी कब सीख सक्ते थे। परन्तु जिस मक्कारीके वशमें यह योग्य अनपढ़ न आये, उसके चङ्गुलमें नासमझ शिक्षित मनुष्य फंस गये। इन पाठशालाओंसे हताश होके उसने भोले भाले अंग्रेज़ी पढ़े लिखे पुरुष ढूंढ़े और सीधे सादे एम० ए० और बी० ए० उसके दांवमें आगये, या यह सबके सब शिक्षित पुरुष मक्कार होगये और

सहस्रों मनुष्योंने मिलके स्वामीदयानन्दको अध्यक्ष बनाके एक मक्कारीकी पङ्क्ति बांध दी, जिस की उपमा संसार भरमें न मिलेगी। ऐसे विचार केवल व्यर्थ ही नहीं किन्तु एक श्रेणी बढ़ कर हैं, और अपने गंदले उत्पत्ति स्थानोंके लिये लज्जास्पद हैं।

स्वामीदयानन्द मक्कार न था, परन्तु उसके प्रचारसे प्रथम, शिक्षित मनुष्योंके एक विशेष भागमें ईश्वरीय पुस्तक होनेके विरुद्ध विचार उपस्थित थे। यह विचार वेदोंके विशेष कर विरुद्ध थे, इस लिये कि यूरोपके संस्कृत ज्ञाताओंने (और विचारे भारतवासियोंकी उनके ग्रन्थोंके परे पहुंच न थी) उनके आशयों पर बहुत बुरी मसलि दी थी। यद्यपि हम उन विद्वानोंके उत्साह व परिश्रमकी प्रशंसा करते हैं, जिससे उन्होंने संस्कृतमें विना सहायता अभ्यास किया। तौ भी हिन्दूस्वभाव और रीति आदिके न जाननेसे और सबसे अधिक संस्कृतभाषाकी दोहरी बनावटके न जाननेसे उन्होंने वेदों के लेखके सम्बन्धमें अशुद्धियां कीं जिनका प्रभाव यह हुआ कि सबसे पुरानी, प्राचीनआर्य्यलोगोंकी सबसे प्रिय पुस्तकें आर्य्यावर्त्त ही में और उस समूहमें जो अ-

जैसा उनका सन्मान कर सक्ता है, अपनी प्रतिष्ठा खो बैठी, सर्वसाधारण हिन्दू लोग प्रथम ही उनको पृथ्वी में गाड़ चुके थे, मान व प्रतिष्ठा अब भी करते थे, पर वह प्रतिष्ठा नाममात्र थी और जैसी पूर्वजोंकी हुआ करती है ठीक उसी भांति की थी। कहनेको अब भी प्रमाण थे पर उनसे शिक्षा व उपदेश लेनेहारा कोई न था। शब्दों में अब भी उनको उच्चस्थान दिया जाता था परन्तु जातीय जीवनमें उनका स्थान अन्य पुस्तकोंने और निस्सन्देह तुच्छ पुस्तकोंने छीन लिया*था। शिक्षित पुरुषोंके बड़े भागको उनकी ओरसे ऐसा वैमनस्य होगया था कि उनकी दृष्टिमें पन्चसूदमन्द (एक पुस्तकका नाम है) अर्थात् लाभदायक उपदेश उनसे कहीं अधिक लाभकारी पुस्तक थी। इन्ही पुरुषोंका एक भाग ऐसा भी था जिसके विचारमें वह रद्दीसे भी तुच्छ थे, और न केवल लाभदायक ही नहीं थे, किन्तु हानिकारक थे। इन सुजनोंकी सम्मति

*इस स्थान पर हम महाराष्ट्रों (मरहटों) के इतिहासमें से शिवाजीकी सन्तति और पेशवाओंके सम्बन्धों की सुधि पाठकोंको दिलानेसे रुक नहीं सक्ते॥

में प्रथम तो ईश्वरीय पुस्तक मानना ही बेसमझी थी, फिर वेदोंके ईश्वरीय मानने के लिये कोई कारण नहीं हो सक्ता। उनको मानने वाला मूर्ख और मक्कारके अतिरिक्त कुछ नहीं हो सक्ता या उसमें समझ नहीं या सचाई नहीं, तीसरा उसके लिये स्थान नहीं।

अब वह इस प्रकार फल निकालते थे कि यह पुरुष बेसमझ नहीं जान पड़ता, विद्वान् है, योग्य है, चतुर है, फिर क्यों वेदोंको मानता है? मक्कार अवश्य *होगा, अब तक भी इस प्रकारकी बातें होती हैं।

इन पुरुषोंकी दो बातें आश्चर्यमें डालने वाली हैं एक यह कि उनकी आज्ञायें अन्य मतोंके अनुयायियोंके विषयमें कम दी जाती हैं, अन्य मतोंकी रीति और पुस्तकोंमें भी व्यर्थ बातें बहुत सी हैं परन्तु उनके अनुसार

*हमारे सन्मुख ऐसी सम्मतियां दी गईं, एक वार एक जनने एक ग्रेजुएटके विषयमें जो हमारा अनुभव पात्र कहाता है, हमसे कहा "क्या वह ऐसा योग्य व बुद्धिमान् पुरुष होकर वेदोंको ईश्वरीय मान सक्ता है, यह विचार कठिन व पागलोंका सा है" पाठकोंमें से भी बहुतोंको ऐसे निर्णय सुननेका अवसर मिला होगा॥

कार्य्य व उन पर निश्चय करना मूर्ख वा कपटी नहीं बनाता, किन्तु नये अर्थ देकर उनको छिपाना भी अनुचित नहीं समझा जाता है, परन्तु वेदोंके साथ उन्हें किञ्चित् भी क्षमा स्वीकार नहीं। दूसरे यह कि वह इस बात का भूल जाते हैं कि ये पुस्तकें आर्य्यावर्त्तका न्यूनसे न्यून कई सहस्र वर्ष पर्य्यन्त पारलौकिक सहारा रही हैं, उस समयमें जब कि तर्क व फिलासफीकी न्यूनता न थी, ईश्वरीय पुस्तकका कुछ मूल हो या न हो, वेद ईश्वरीय हो वा पौरुषेय, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि दर्शनोंके गूढ़ तत्त्व को पहचानने वाले ग्रन्थकारों और उपनिषदोंके उत्साही अन्वेषण करने वालोंने उनको न केवल ईश्वरीय माना है किन्तु समस्त लौकिक व पारलौकिक विद्याओंका सोता निश्चय किया है। अतएव यह मान लेना कि वेदोंको ईश्वरीय मानना तर्क व फिलासफीके विरुद्ध नहीं, कठिन नहीं। और न्यूनसे न्यून ऐसा ही उचित है, जैसा इञ्जील व कुरानको ईश्वरीय मानना, और जैसे इञ्जील व कुरान को देवी मानकर लूथर और उस्मानका मूर्ख व मक्कार होना आवश्यक नहीं, वैसे ही वेदोंको ईश्वरीय मानके दयानन्दका भी मक्कार होना निश्चित नहीं। इस प्रकार

सोचना समझना उचित है और ऐसा सरल है कि साधारण बुद्धिका मनुष्य भी सोच समझ सक्ता है और भारतके एक बड़े महात्मा पर झूठा दोष लगाने से बच सक्ता है। परन्तु इन मनुष्योंने जिनकी बात ऊपर कही गई है सम्मति ही स्थिर नहीं करली थी कि जिसको बदलने पर सन्नद्ध न थे, किन्तु उसके चारों ओर पक्ष पुष्ट करनेकी चारदीवारी भी बना ली थी वा यों कहो कि उनमें के प्रायः दुर्वासना ग्रस्त न थे। वह धोका देनेके दोषी नहीं हुये।

हां! प्रथम बुद्धिके अशुद्ध कार्य्यसे अशुद्ध फल निकाला तत्पश्चात् पक्षपातका पर्दा उनके नेत्रों पर पड़ गया वह प्रकाशको देख न सके और उसको अन्धकार समझते रहे। इन्होंने स्वामी दयानन्द पर मक्कारीका दोष लगाया बेधर्मीसे नहीं, भूलसे। निश्चित सम्मतिने उन्हें इस भूलमें डाला और पक्षपातने उसमें पड़ा रहने दिया।

वास्तवमें स्वामी दयानन्द उन प्रकाशोंमें से एक था, जो समय २ पर ईश्वरकी ओरसे मनुष्योंकी आवश्यकतानुसार मिले हैं, और उसके जीवनका प्रत्येक भाग इस बातका साक्षी है। उसके आनेकी आवश्यकता थी, वैसी

ही बड़ी आवश्यकता थी जैसी बुद्ध, नानक, गोविन्दसिंह
के आने की। जैसे दबे हुये मनुष्योंको उच्चकोटिके मनु-
ष्योंके अन्याययुक्त अत्याचार और दबावसे निकालनेके
लिये न्यायी महात्माकी, झूठे पाखण्डों व कुरीतियोंसे
नष्ट हुये हृदयोंको भक्त महात्माकी, राज्यकी हठधर्मीसे
निरपराध सताये मनुष्योंको बली महात्माकी, वैसे ही
मूर्खता और अविद्याके ग्रसे हुये मनुष्योंके लिये एक
विद्वान् महात्माकी आवश्यकता थी जो उसके अवतारने
पूर्णकी। उसका कार्य्य विद्यासे प्रारम्भ हुआ और विद्या
पर स्थिर रहा। उसकी जिह्वा जबलौं उसमें शक्ति रही
विद्याकी पुकार करती रही। उसकी राख अरावलीकी उं-
चाईसे अबभी विद्याकी दुहाई दे रही है, उसका स्मारक
चिह्न भी विद्या ही हो सक्ती है और है। ठीक उसी
भांति जैसे बुद्धका न्याय, नानककी भक्ति और गोविन्दसिं
हकी शक्ति। जिस प्रकार उन महात्माओंमें से प्रत्येकने
अपने २ व्रतको अन्तपर्य्यन्त पाला, उसी भांति उसने भी
कहीं पैर न्यूनता न की। बुद्धने धर्म पर प्राण देने वाले
प्रचारकोंका एक समूह, नानकने उत्साही भक्तोंकी एक
मण्डली, गोविन्द सिंहने सच्चे वीरोंकी एक सेना, जाति

के लिये छोड़ी। उनमें से प्रत्येक उत्तम औषध थी। और
अपने २ समयमें प्रत्येकने रोगार्त्त जातिके लिये सञ्जीवनीका
कार्य्य किया परन्तु इनमें से कोई भी उसके मिशनके स्व-
भावके अनुसार न थी, और कोई भी उसके हाथसे मानव
जातिके लिये लाभदायक व प्रिय न होती। वह यहां
भी न चूका, आप देख सक्ते हैं कि उसका उपदेश मनुष्यके
लिये वेदभाष्य और वैदिकयन्त्रालय है।

उसके आनेकी आवश्यकता थी क्योंकि इस समय हिन्दू-
समाज लगभग मृतककी दशामें था, और अंग्रेज़ी शिक्षा
उसके मुर्दासे शरीरके साथ खेल रही थी। यद्यपि कहीं २
उस शरीरमें प्राण मालूम होता था तथापि वह ऐसा
नहीं था जो उसको संभलनेकी शक्ति दे। राममोहनराय
ने लगभग अर्द्ध शतक पहले उसको उठानेका उद्योग किया
यदि उसको समय मिलता, वा उसका कार्य्य चला जाता
तो सम्भव था कि कुछ न कुछ कृतकार्य्यता होती परन्तु
उसकी मृत्युके पश्चात् बनावटकी प्रणाली ऐसी आरम्भ
होगई, जो मरते हुये ब्राह्मसमाजमें अब तक प्रचलित है।
गिर्जे, नमाज़, पैगम्बर, हवारी, पोप, मुक्तिफौज आदि
में से कोई वस्तु नहीं, जो यूरोपके मस्तिष्कसे निकली हो

और ब्राह्मसमाजमें उसकी नक़ल न की गई हो। बड़े २ आडम्बरों और कुरीतियोंसे शिक्षित समूह प्रथम ही अशान्त था। अंग्रेज़ी शिक्षाके नास्तिकपनसे भी शान्ति न मिली थी। वह ब्राह्मसमाजकी ओर आकर्षित हुआ। उसके खोखले नामों और मुर्दा नक़लोंने भी शान्ति न दी। ऐसे समयमें एक तत्वसे भरे हुये मस्तिष्क और सचाईसे भरे हुये हृदयकी आवश्यकता थी, जिसकी ओर जाति का ध्यान आकर्षित हो सके। ऐसा मस्तिष्क व हृदय स्वामी दयानन्दका था। वह छली न था, सच्चा था। और छल कपटसे नहीं, सचाईसे उसने उस समूह पर जिसको हम संसारमें सबसे अधिक अविश्वासी कह चुके हैं अधिकार पाया। भविष्यको देखना मिटने वाले नेत्रोंके भाग्य में नहीं। कोई नहीं कह सक्ता कि इस महात्माका काम जारी रहके भारतके मृत जीवोंको जीवन देगा। वा नक़ल के बहावमें पड़कर आप ही नष्ट होजायगा। हमारी लेखनी अपनी सीमासे जो भूत पर है, बाहर निकलनेका साहस नहीं करती।

अब हमको स्वामी दयानन्दके अनुयायियोंकी सेवा में सविनय इतना निवेदन करना शेष है कि इस समय

उनके धर्मका मुख बुद्धिके अपरिमित चढ़ावकी ओर है, जिसको किञ्चित् फेरनेकी आवश्यकता है। एक ही ओर आकर्षित होजाना व एक ओरी उन्नति भयावनी वस्तुयें हैं, रोग हैं, जिनसे बचना उचित है। जैसा हमने प्रथम कहा है कि बुद्धि और विश्वास धर्मके दो भाग हैं, और स्वास्थ्यके लिये अवश्य है कि दोनों समान दशामें हों। किसी सोसाइटीका धार्मिक स्वास्थ्य स्थिर नहीं रह सक्ता, जब तक उसमें यह दोनों साथ २ न रहैं। बुद्धि और विश्वासकी चाल बराबर न हो, इसमें सन्देह नहीं कि बुद्धि ही विश्वासको संभालके भ्रमयुक्त विचारोंमें गिरनेसे रोकती है रोक सक्ती है परन्तु वह विश्वासका स्थान लेकर धर्मका मूल नहीं हो सक्ती क्योंकि धर्मका उत्पत्तिस्थान वा सोता मस्तिष्क नहीं, हृदय है। यह भी ज्ञात रहे कि स्वामी दयानन्दने जातीय हृदयको एक शक्तिमान् सञ्चालन दे दिया, तो भी उसको जारी रखना वा न रखना आपके आधीन है। और यह आपका सच्चा या झूठा वर्त्ताव वा स्वार्थी या निःस्वार्थी चालचलन होगा जो इस प्रस्तावकी आने वाली दशाका निर्णय करेगा।

इति ॥

संस्कृतकी प्रथम पुस्तक)॥। द्वितीय -)। तृतीय =)॥। नालिकाविष्कार)॥। शास्त्रार्थकिराणा =) चाणक्यनीति सङ्ग्रह अर्थ सहित -)। प्रश्नोत्तररत्नमाला -) आर्य्यचर्पट-पञ्जरिका)। प्रेमोदयभजनावली ≡) भजनामृतसरोवर =) सङ्गीतरत्नाकर =) सभाप्रसन्न (टाइपका छपा) ।)॥ वेश्या-नाटक ।)॥ पाकरत्नाकर ।=) हारमोनियमगाईड ।=) खेती विद्याके मुख्यसिद्धान्त ॥=) जया ॥) सात उपनिषद् भा-षाटीका सहित ३) सद्धर्म्मप्रकाश १) बुद्धिमती ।-) कुल-देवी -)॥ लेखदीपिका ।) सीताचरित्र प्रथम भाग हिन्दी ॥।) श्री स्वामी दयानन्दजीका चित्र ॥।) छोटा -) रङ्गीन -)॥ पं० गुरुदत्त एम० ए० का चित्र -) रङ्गीन -)॥ गाय-त्रीमन्त्र)॥ धर्म्मप्रचार)॥ नमस्ते)॥ हकीकतरायका जीवनचरित्र)। धर्म्माधर्म विचार ।) भर्तृहरिशतक ।=)॥ नीतिशतक ≡) अष्टाध्यायी मूल ≡) अबलाविनय ≡)॥ नारीसुदशाप्रवर्त्तक प्रथम भाग =) दूसरा ≡)॥ तीसरा ।-) चौथा ।=) स्त्रीधर्म्मनीति १।) कामिनीकल्पद्रुम ।॥)

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराजकृत सत्यार्थ-प्रकाश, ऋग्वेदभाष्यभूमिका, संस्कारविधि आदि सब पुस्तक और पं लेखरामजीकृत पुस्तक भी मिलें गे ॥

पता—स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामिप्रेस—मेरठ

अथ

मृतकश्राद्ध खण्डन

जिसको

स्वामी स्वात्मानन्द ने प्रणीत किया

—○:※:○—

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित
वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड द्वारा प्रकाशित
पुस्तक सङ्ख्या २८

पं. तुलसीरामस्वामी सम्पादक सामवेदभाष्य
के प्रबन्ध से उनके स्वामियन्त्रालय
मेरठ में मुद्रित हुआ

आर्य्यसंवत् १९७२९४९००० अप्रैल सन् १८९६ ई०
द्वितीयवार १०००] [मूल्य)॥

विज्ञापन

वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड से छपी पुस्तकों का सूचीपत्र

(१) समीक्षकर मूल्य ≡) यह पुस्तक टाइप में वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड से छपा है इस में नवीन सांख्य वेदान्तादि के परस्पर विरुद्ध वादों का निराकरण और विरुद्ध भाष्यों का समाधान संस्कृत तथा भाषा में पण्डित श्रीप्रभुदयालु साफ़ीदार व इलाक़ेदार मौज़ा तेरही ज़िला बान्दा ने रचा है। पुस्तक रायल १० ॥ फ़ार्म का है मूल्य केवल प्रचारार्थ ≡) रक्खे हैं ऐसा स्वरूप मूल्य का पुस्तक आज तक नहीं छपा देखने योग्य है।

(२) नित्यकर्मविधि मूल्य)। जिस में पञ्चमहायज्ञ सन्त्र अर्थ सहित दिये हैं जो पांच बार छपी है और उस की १८००० प्रति बिक गई हैं अब के रंगीन टैटल की सस्वर छपी है। सन्ध्या के प्रेमियों को उत्सव तथा मेलों में बांटने योग्य हैं।

हिन्दू आर्य और नमस्ते का अन्वेषण)॥ क्या स्वामी दयानन्द सङ्कार था)॥ पुरुषसूक्त अर्थ सहित)॥ मनुष्यसभाज)॥ मनुष्य जन्म की सफलता)॥ क्रिश्चियनमतदर्पण)॥ श्रीस्वामी दयानन्द का जीवनचरित्र दोहे चौपाई में)॥ (अन्तिम पृष्ठ देखो)

ओ३म्

श्राद्ध

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥

हे परमात्मन्! मैं इस अनृत झूंठ से छूट कर सत्य व्रत को प्राप्त होऊं, उस को आप कृपा करके सिद्ध करावें ॥

पौराणिक—क्यों जी श्राद्ध करना अच्छा है वा नहीं ॥

आर्य्य—श्राद्ध करना तो अच्छा है परन्तु जीते हुवे माता पिता आचार्यादि का ॥

पौ०—जीते हुए का श्राद्ध कैसा? श्राद्ध तो मृतक का होता है ॥

आ०—भाई श्राद्ध पद में तो मरे हुवों का कहीं अर्थ भी नहीं है जैसे "अत् सत्यम्" निघण्टु, अ०३। खं० १० ॥ श्रद्दधाति यया सा श्रद्धा, श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम् सत्य का ग्रहण हो जिस्में उसका नाम श्रद्धा और श्रद्धा से जो किया जाए उसको श्राद्ध कहते हैं। अब श्रद्धा से सेवा करना केवल जीते हुओं में ही घट सक्ता है मरे हुओं में

नहीं, क्योंकि जब तक वह विद्यमान अर्थात् सामने न हों तब तक सेवा नहीं हो सक्ती ॥

पौ० क्यों जी हम अपने मरे पितरों को क्या आवाहन से नहीं बुला सक्ते किन्तु हम वेद मन्त्रों के द्वारा बुलाते ही हैं ॥

आ०–तुम्हारे मरे पितरों के आने में क्या प्रमाण है?

पौ०–धर्म के विषय में प्रत्यक्षादि प्रमाणों का कुछ भी काम नहीं ।

आ०–सुनो भाई यह भ्रम तुम को अनार्ष ग्रन्थों के पढ़ने से हुआ है, यदि तुम आर्ष ग्रन्थों को श्रवणमात्र ही करते तो ऐसा न कहते । देखो मनु जी कहते हैं।

प्रत्यक्षं चानुमानं च शास्त्रं च विविधागमम् ।
त्रयं सुविदितं कार्यं धर्मशुद्धिमभीप्सता ॥

अ० १२ श्लो० १५ ॥

अर्थ–धर्मशुद्धि की इच्छा करने वाले मनुष्य को योग्य है कि प्रत्यक्ष अनुमान और वेदप्रमाण से अच्छे प्रकार अपने कर्त्तव्य को जाने । अब इन प्रत्यक्षादि प्रमाणों से तुम्हारे मृतक पितरों के आने का निर्णय हो सक्ता है । भला कहिये तो आप के पितर कोई शरीर विशेष धारण करके आते हैं वा जीवरूप से ?

पौ०–हां जी लिङ्ग शरीर से जिस को सूक्ष्म शरीर भी कहते हैं उस से आते हैं, और वह दीखता नहीं ।

आ०–लिङ्ग शरीर से आते हैं इस में आप के कथन से भिन्न और कोई प्रमाण नहीं। देखो, इस तुम्हारे कथन में कितनी शङ्का होती हैं (१) वह कहां से आते हैं (२) जहां से वह आते हैं वह लोक इस भूगोल से कितनी दूर है? (३) वहां वह सूक्ष्म शरीर से रहते हैं वा स्थूल शरीर से ? इन के उत्तर दो ।

पौ०–वह पितृलोक से आते हैं, और वह भी एक ऐसा ही लोक और इस से बहुत दूर है, क्योंकि समीप होता तो दीखता भी और वहां वह स्थूल शरीर से रहते हैं, क्योंकि यदि स्थूल शरीर न हो तो लोक का होना ही निष्फल है, क्योंकि सूक्ष्म शरीर तो विना किसी भूगोल के आश्रय के भी रह सक्ता है अत्यन्त सूक्ष्म होने से ।

आ०–उन को उस पितृलोक में स्थूल शरीर कैसे मिला जैसे हम को जन्म लेने से मिलता है इसी प्रकार से वा किसी और प्रकार से, और प्रकार से तो असम्भव है ऐसे ही जन्म लेते होंगे जैसे हम लेते हैं, यदि वह जन्म लेते हैं तो यहां उन की तृप्ति के अर्थ श्राद्ध करना अत्यन्त

निष्फल है क्योंकि जिस के घर में वह उत्पन्न होते हैं उन के माता पिता उन की रक्षा करते होंगे और पश्चात् वह अपनी रक्षा आप भी कर सकेंगे।

पौ०—वाह जी निष्फल क्यों है, वह लिङ्ग शरीर से यहां आते हैं और खा के चले जाते हैं।

आ०—अच्छा भाई स्थूल वह शरीर को छोड़ के, वैसेही आता होगा जैसे यहां से चला गया था, अब विचारो कि जैसे यहां शरीर को जीव के निकलने से जला दिया करते हैं वहां भी जला देते होंगे और यदि न जलाते होंगे तो रक्त के परिणाम होने से शरीर सड़ जाता होगा, अब विचारो कि तुमने श्राद्ध करके बड़ी हत्या की, वह विचारा पितृलोक से निकला और यहां भी न रहा, पता नहीं वह अब कहां जावेगा।

पौ०-नहीं जो हम ऐसा मानेंगे कि वह सूक्ष्म शरीर से रहता है, लोक की स्थूल शरीर के न होने से कोई आवश्यकता नहीं, इस लिये अपनी इच्छा अनुकूल विचरता है।

आ०-यह भी आप का कहना असम्भव है क्योंकि न अपनी इच्छा से उस ने यहां शरीर छोड़ा था और न वह इच्छामात्र से छोड़ सकता था' तो अब इच्छा अनुकूल विचरना कैसा। और तुम पुनर्जन्म भी मानते हो यदि सब यहां शरीर छोड़ कर विचरते रहेंगे तो पुनर्जन्म किस का होगा।

पौ०—नहीं जी नहीं हम भूल गये, भोजनादि हि वहां पहुंचा करता है पितर नहीं आते हैं।

आ०—अच्छा भाई यदि वही पहुंचता है, तो ब्राह्मण ने जो खाया उस के पेट में जाने के पीछे वही भाग पहुंचता है।

पौ०—ब्राह्मण के खाने के पीछे पहुंचता है।

आ०—इस में भी बहुत शङ्का हैं क्योंकि जब ब्राह्मण ने अन्नादि खाया तो उस अन्न का रस बनने लगता है यदि रस पहुंचेगा, तो खाने वाले के शरीर से रस निकल जाने के कारण उस का रक्त नहीं बनेगा, तो उस के न होने से ब्राह्मण मर जायगा और यदि रक्त बन के पहुंचता है तो एक तो तुम्हारे पितरों ने ब्राह्मण का रक्त पिया, हत्या की, और अन्न खाने वाला ब्राह्मण दुर्बल होना चाहिये, किन्तु हम देखते हैं कि श्राद्ध खाने वाले ब्राह्मण १५ दिवस कर्णागत में अति हृष्ट पुष्ट हो जाते हैं, इस लिये तुम्हारा कहना असङ्गत है, और यदि कहो कि ब्राह्मण के शरीर

से मुख द्वारा जो वाष्प अर्थात् भाफादि निकलते हैं वह पहुंचते हैं तो उस को खाके तुम्हारा पितर भी नहीं बचेगा क्योंकि जो वायु हमारे मुख से निकला करता है वह अपान वायु अर्थात् कारबानिक होती है, इस लिये उस को ग्रहण कर के बच नहीं सक्ते अब तुम आप ही विचारो कि कौन सी वस्तु पहुंचेगी।

पौ०—अच्छा जो हम यह मानें कि ब्राह्मण के खाने से पृथक् रहा हुआ अन्न पहुंचता है, तो इस का क्या उत्तर दोगे ?।

आ०—भाई इस का उत्तर तो बहुत सुगम है, क्योंकि यदि पृथक् रहा हुआ अन्न पहुंचता है तो पितरों के निमित्त इन स्वार्थियों को उत्तम २ भोजन खिलाना निष्फल है। दूसरा हम अन्न जल तोल लें और पितृ अर्पण कर के फिर भी तोल लें यदि उतना ही घटे जितना इधर उधर गिर गया हो तो मान नहीं सकते और यदि अधिक घटेगा तो मान लेंगे ?।

पौ०—हां जी देखो घट तो जाता है क्योंकि बहुत सा धरते हैं और थोड़ा रह जाता है सूर्य्य भगवान् अपनी किरणों के द्वारा पहुंचा देता है।

आ०—यदि सूर्य्य की किरणों के द्वारा पहुंचेगा, तो पृथ्वी पर के अन्न जलादि हलवाई के लड्डू कचौरी आदि पदार्थों में से भी वाष्प खिञ्चता रहता है, वह आप पहुंच जावेगा, फिर तो तुम्हारा श्राद्ध करना और ऐसे मनुष्यों का पेट भरना जो तुम को लेश मात्र भी लाभ नहीं पहुंचाते किन्तु हानि ही किया करते हैं, निष्फल होजावेगा।

पौ०—नहीं जी सङ्कल्प करने से ही पहुंचता है ऐसे नहीं

आ०—वाह जी यह तो युक्ति अद्भुत चलाई, हम पाप करेंगे और अपने तथा अपने पितरों के शत्रुओं के निमित्त सङ्कल्प कर दिया करेंगे, तो हमारे पाप न रहने से हमारी मोक्ष भी हो जावेगी और वह सदा नरक अर्थात् दुःख में ही रहेंगे।

पौ०—पाप कोई नहीं लेते, किन्तु अपनी इच्छा के अनुकूल सुखदायक वस्तुओं का ग्रहण किया करते हैं दुःखदायक पदार्थों का नहीं।

आ०—कल्पना करो, कि एक मनुष्य हम से दश हाथ की दूरी पर बैठा है और वह इच्छा भी करता है कि मुझे सुखदायक पदार्थ मिलें और हम सङ्कल्प भी मिलने

के लिये कर दें, परन्तु इस सङ्कल्प मात्र से कभी प्राप्त नहीं हो सकता। देखो इस विषय में एक कवि भी कहता है।

स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥ १ ॥
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गतानामिह जन्तूनां वृथा पाथेयकल्पनम् ॥ २ ॥

अर्थ—स्वर्ग में बैठे हुए तुम्हारे पितृ यहां दान देने से यदि तृप्त हो जावें, तो मकान के ऊपर बैठे हुए मनुष्य की क्यों नहीं तृप्ति कर देते हो ॥ १ ॥

यदि मरे हुए जन्तुओं की तृप्ति का कारण श्राद्ध हो, तो ग्रामान्तर में जाने वाले मनुष्य के साथ खाने पीने की वस्तु बांधना व्यर्थ है, क्योंकि यहां हम उस को पराङ्-भोजी की पेटरूपी डाक से पहुंचा सक्ते हैं ॥

देखो, इस विषय पर ग्रन्थ साहब (सिखों का) में भी लिखा है। जीवित पितर न माने कोऊ मूए श्राद्ध कराहीं। पितर बपरे को क्या पावे कौआ कूकर खाहीं ॥

(राग आसा दी वार)

और देखो, एक दिन नानक जी हरिद्वार गए, वहां गङ्गा पर लोग अपने मरे पितरों का तर्पण कर रहे थे,

नानक जी ने पूंछा। भाई! क्या करते हो? तो उत्तर दिया कि अपने पितरों को जल देते हैं। पूंछा कि तुम्हारे पितर कहां हैं? उत्तर दिया, कि पितृलोक में। तब नानक जी गङ्गा में प्रवेश करके उस ओर जल उछालने लगे जिस ओर लोगों के कपड़े पड़े थे, उन्हों ने कहा, महाराज! आप क्या कर रहे हैं, हमारे कपड़े भीगे जाते हैं। तब उन्हों ने कहा कि मेरा कर्त्तारपुर में खेत है उस को जल देता हूं। लोगों ने कहा इतनी दूर खेत में पानी कैसे पहुंचेगा तो उत्तर दिया, कि जिस स्थान का हम को पता भी विदित है यदि वहां नहीं पहुंचेगा तो तुम्हारे पितरों को, जिन का कुछ पता भी नहीं, कैसे पहुंचे गा। इस बात को सुनकर लोग चुप हो गए ॥

इस विषय में एक जाट का भी इतिहास है। एक जाट का बाप मर गया, उस के पीछे उस ने क्रिया कर्म भी किया और शय्यादानादि भी किया, परन्तु उस के घर में एक उत्तम घोड़ी पांच सौ रुपये की रह गई, सो पोप जी की दृष्टि पड़ी, चाहा कि इस को भी लें, प्रातःकाल उठ कर जाट के घर पहुंचे, नेत्रों में जल भर कर धीरे २ कहने लगे, कि आज मैं सवेरे कुछ सोता था और कुछ

जागता था, क्या देखता हूं कि तुम्हारा पिता सामने खड़ा है जो तुमने वस्त्र दिये थे पहिरे हुवे, और तुम्हारा दिया हुक्का भी पी रहा है, बोला, कि मेरे पुत्र को कहना कि घोड़ी के विना मैं बड़ा दुःख पाता हूं, सो दान कर देवे। बेचारा जाट बोला, कि महाराज इस को बेच कर एक टट्टू आप को ले दूंगा, क्योंकि तहसील का भी ऋण देना है। तब पोथ जी बोले कि भाई जिस को जिस में प्रीति हुआ करती है वही वस्तु देनी चाहिये। इतने में दो चोर जाति के लोग भी आगए, वह भी सुन के बोले कि अपने जीते जी ही दान करना अच्छा है, क्योंकि आज कल कलियुग में पुत्रों का भी विश्वास नहीं रहा। इस को सुन कर जाट को ग्लानि आई, झट घोड़ी खोल कर पुरोहित को दे दी। उसी दिन तहसील के सिपाही रुपये मांगने आए, जाट बोला भाई कल वहीं पहुंचा दूंगा, और सोचने लगा, सोचते २ उस को यह सूझी कि कल हम भी पेच खेलेंगे और घोड़ी ले आवेंगे, सो दूसरे दिन प्रातःकाल पुरोहित के घर पहुंचा, और बड़े ऊंचे स्वर से चिल्ला कर रोया और बोला तुमने तो मेरा नाश ही कर दिया, पुरोहित बोला भाई क्या हुवा ? कहो तो

सही ? जाट बोला, मैंने आज बड़े सवेरे स्वप्न देखा, कि मेरा पिता लंगड़ाता हुआ बड़ा दुःखी मेरे पास आया और कहा कि घोड़ी मुझे मिल गई और काठी करके मैं उस पर चढ़ा। बहुत दिन की घोड़ी बन्धी हुई थी एक संग भागी, मुझ से न थंबी और गिर पड़ा, मेरी टांग में चोट लग गई, स्वर्ग में वैद्यने देखा तो कहा, कि जब तक इस पर गरम लोहे का दाग़ नहीं आवेगा, तब तक अच्छी न होगी, सो पिता की आज्ञा है, कि पुरोहित जी को बुला कर उन की टांग पर दाग़ दे देना, इस से मेरी टांग अच्छी हो जावेगी, सो महाराज लोहा गरम धरा है, आप चलिये, कि आप की टांग पर दाग़ देवें। पोप जी बोले, अरे दुष्ट! मेरी टांग जलाने से तेरे पिता की टांग कैसे अच्छी होगी ? जाट बोला, फिर तुम को घोड़ी देने से मेरे पिता को कैसे घोड़ी पहुंच सकती है। इस पर पोप जी क्रोध कर बोले—सुनते थे कि कलियुग में ऐसे दुष्ट होंगे, सो आज प्रत्यक्ष दीखता है। जाट बोला, जो तुम्हारा पेट भरे वह तो धर्मात्मा और शेष सब दुष्ट! इतना कह कर अपनी घोड़ी खोल लाया॥

पौ० सुनते हैं कि कर्ण राजा ने आद चलाया, इसी

लिये पन्द्रह दिन का नाम कणागत अर्थात् कर्णागत है। क्या इस में भी आप को सन्देह है ?

आ० हां, कहिये राजा कर्ण ने किस प्रकार श्राद्ध किया ?

पौ० सुनते हैं कि एक समय राजा कर्ण बड़ा दानी था और सुवर्ण का ही दान करता था, जब वह मरा और स्वर्ग में गया, तो उस को खाने को अन्न न मिला किन्तु सोना ही सोना मिला अत्यन्त दुःखी होकर धर्मराज से पूंछा कि महाराज ! मैं भूखा मरता हूं क्या उपाय करूं, तो धर्मराज ने उत्तर दिया, कि तू ने अन्न दान नहीं किया, इसलिये सोना ही मिलेगा अन्न नहीं। कर्ण राजा बोला मुझे पन्द्रह दिवस की छुट्टी दीजिये, मैं अन्न दान करके फिर आऊंगा, धर्मराज ने कहा अच्छा। तब राजा कर्ण स्वर्ग से फिर आया और ब्राह्मणों को प्रसन्नता पूर्वक उत्तम २ भोजन कराये, जब फिर स्वर्ग में गया तो जो भोजन यहां खिलाये वही वहां मिले।

आ० भाई, इस में भी बहुत कुछ सन्देह है। प्रथम तो ऐसा होना ही असम्भव है और यदि इस असम्भव को सम्भव भी मानें, तो भी इस में बहुत दोष आते हैं। प्रथम तो श्राद्ध करना सनातन नहीं हो सका क्योंकि तुम आप

ही कहते हो कि कर्ण राजा ने चलाया, यदि पहिले भी श्राद्ध करने की रीति होती तो सुवर्ण दान के स्थान में वह श्राद्ध क्यों न करता, द्वितीय तुम्हारा स्वर्ग भी अद्भुत है कि जहां तुम इतना सुख बतलाते हो और वहां पर सोने से अन्न भी नहीं मोल ले सके ! यह अच्छा स्वर्ग हुआ, इस से तो ग्राम भी अच्छा जहां रुपयों से अन्न तो मिल जाता है। चतुर्थ, जिस मार्ग से वह स्वर्ग से आया और कर्णागत करके चला गया क्या उस मार्ग से उष्ट्र और अश्वादि से अन्नादि नहीं लेजा सका था ? (क्या अन्नादि केवल पोष्ट जी की लैटर बोक्स से पहुंच सका है और किसी प्रकार से नहीं ?)

पौ० अच्छा यह तो बतलाओ गया श्राद्ध करना भी ऐसा ही है ?।

आ० हां, गया जो फल्गु नदी के तीर पर एक नगर है और उस में विष्णुपद अर्थात् विष्णु के पैर का चिह्न बना रक्खा है, वहां मरे हुओं का श्राद्ध तर्पणादि करना तो सर्वथा मिथ्या है परन्तु गय नाम आत्मा, धन, सन्तानादि का है उस में श्राद्ध करना तो ठीक है।

पौ० वह कैसे ?

आ०—प्राणा वै गयाः। शतपथ० का० १४ अ० ८० आ० १०। गय इत्यपत्यनामसु पठितं निघ० अ० २ खं० २। गय इति धननामसु नि० अ० २ खं० २१०। गय इति गृहनामसु नि० अं० ३ खं० ४

प्राणों को योगाभ्यास द्वारा रोक कर अत्यन्त श्रद्धा से परमात्मा का ध्यान करना गयाश्राद्ध है, और घर में अपनी सन्तान को श्रद्धा से विद्याऽध्ययनादि में लगाना भी गयाश्राद्ध है, तथा श्रद्धापूर्वक धन को उत्तम कार्यों में लगाना भी गयाश्राद्ध है, तथा घर में आये हुए अतिथि तथा माता पिता आदि की श्रद्धा से सेवा करने का नाम भी गयाश्राद्ध है। इन उत्तम अर्थों को छोड़कर स्वार्थी लोग एक स्थान विशेष को गया मान भोले भाले मनुष्यों का धन हरण करते हैं।

पौ० क्यों जी, यह तो ब्राह्मण लोग कहते हैं कि हम वेदमन्त्र द्वारा आवाहन से पितरों को बुला लेते हैं, क्या यह भी झूंठ है?

आ० जैसा कि मैं पहिले भी कह चूका हूं, यदि आवाहन करने से मरे पित्र आजाते हैं, तो कल्पना करो,

कि एक मनुष्य मरते समय जिह्वा बन्द होजाने के कारण अपने पुत्रों को धन न बतला सका, और वह धन उस के घर गड़ा रह गया, तो अब आवाहन करके क्यों नहीं पूंछ लेते हो, और आने में प्रथम भी दोष दे चुके हैं।

पौ० अच्छा फिर उन वेदमन्त्रों का, जिन से वह मरे पितरों का आवाहन करते हैं, क्या अर्थ है?

आ० सुनिये।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् य० अ० १९ मं० ५२

अर्थ, जो (सोम्यासः) चन्द्रमा के तुल्य शान्त शमदमादि गुण युक्त (अग्निष्वात्ताः) अग्न्यादि पदार्थ विद्या में निपुण (नः) हमारे (पितरः) अन्न और विद्या के दान से रक्षक, जनक, अध्यापक और उपदेशक लोग हैं (ते) वे (देवयानैः) आप्त लोगों के आने जाने योग्य (पथिभिः) धर्मयुक्त मार्गों से (आयन्तु) आवें (अस्मिन्) इस (यज्ञे पढ़ाने, उपदेश करने रूप व्यवहार में वर्तमान हो के (स्वधया) अन्नादि से [मदन्तः] आनन्द को प्राप्त हुए

(अस्मान्) हम को (अधि, ब्रुवन्तु) अधिष्ठाता हो कर उपदेश करें और पढ़ावें और हमारी (अवन्तु) सदा रक्षा करें ॥ १ ॥

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु।
तऽआगमन्तु तऽइह श्रुवन्त्वधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ २ ॥

अर्थ, जो (सौम्यासः) ऐश्वर्य को प्राप्त होने के योग्य (पितरः) पितर लोग (बर्हिष्येषु) अत्युत्तम (प्रियेषु) प्रिय (निधिषु) रत्नादि से भरे हुए कोशों के निमित्त (उपहूताः) बुलाए हुए हैं (ते) वे (इह) इस हमारे समीप स्थान में (आ, गमन्तु) आवें (ते) वे हमारे वचनों को (श्रुवन्तु) सुनें, वे (अस्मान्) हम को (अधि, ब्रुवन्तु) अधिक उपदेश से बोध युक्त करें (ते) वे, हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥२॥

ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म यां२॥ऽउ च न प्रविद्म। त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳसुकृतं जुषस्व ॥ ३ ॥

अर्थ, हे (जातवेदः) नवीन तीक्ष्ण बुद्धि वाले विद्वन्

(ये) जो (इह) यहां (च) ही (पितरः) पितादि ज्ञानी लोग हैं (च) और (ये) जो (इह) यहां (न) नहीं हैं (च) और हम (यान्) जिन को (विद्म) जानते (च) और (यान) जिन को (न प्रविद्म) नहीं जानते हैं, उन (यति) यावत् पितरों को (त्वं) आप (वेत्थ) जानते हो (उ) और (ते) वे आप को भी जानते हैं, उन की सेवा रूप (सुकृतम्) पुण्यजनक (यज्ञम्) सत्कार रूप व्यवहार को (स्वधाभिः) अन्नादि से (जुषस्व) सेवन करो ॥३॥

वह यह मन्त्र हैं जिन से वह आवाहनादि किया करते हैं, और इन मन्त्रों का अर्थ तुमने सुन ही लिया है, मरे हुओं का कहीं नाम ही नहीं, किन्तु प्रश्नों का सुनना और उत्तर देना यह मरे हुओं में होना सर्वदा असम्भव है ।

पौ० क्यों जी ! इन वेदमन्त्रों का अर्थ उन्होंने क्यों उलटा समझ लिया और क्यों मरे हुओं में लगा दिया ।

आ० आर्ष ग्रन्थों के न पढ़ने से और स्वार्थी होने से। देखो यदि वह पितृ शब्द का अर्थ यौगिक समझते तो

कभी भ्रम न होता, क्योंकि रक्षा करने वाले पुरुषों को पितर कहते हैं। पा (रक्षणे) धातु से उ० पा० २ सू० ९५ तृच् प्रत्यय होने से पिता बनता है (पाति रक्षतीति पिता) जो रक्षा करे उस को पिता कहते हैं। देखो मनुजी ब्रह्मचारी आदि को भी पिता बतलाते हैं॥

वसून्वदन्ति ये पितॄन्रुद्रांश्चैव पितामहान्।
प्रपितामहांश्चादित्यान्श्रुतिरेषासनातनी॥
मनु० अ० ॥३॥

यह व्याख्या वेद और छान्दोग्यादि उपनिषदों के अनुकूल की जाती है, यथा छान्दोग्य प्र० ३ ख० १६ जिस ने चौबीस वर्ष का ब्रह्मचर्य्य किया हो उस को वसु (उत्तम गुणों के अपने में वास कराने से) कहते हैं, वह पिता कहाता है तथा चवालीस वर्ष का ब्रह्मचर्य रखने वाले को रुद्र (दुष्टों का रुलाने वाला होने से) पितामह कहते हैं और अड़तालीस वर्ष के ब्रह्मचर्य्य रखने वाले को आदित्य (उत्तम गुणों के आदान अर्थात् ग्रहण करने से) प्रपितामह कहते हैं।

पौ० क्यों जी! इतना तो फल दीखता है, कि श्राद्ध

करते समय पिता माता आदि का मृत्यु याद आने से वैराग्य उत्पन्न होता है।

आ० यदि वैराग्य के लिये ही श्राद्ध करना है तो धूर्त्तों को उत्तम २ भोजन खिलाने की क्या आवश्यकता है, उन की प्रतिकृति अर्थात् फोटो वा तसवीर अपने पास रखने से नित्यप्रति उन की मृत्यु स्मरण होगी और वैराग्य उत्पन्न होगा।

पौ० क्यों जी! लोग ऐसा भी कहते हैं, कि जैसे किसी के पिता को कोई गाली देवे उसे पहुंच जाती है तभी तो उसका पुत्र क्रुद्ध होता है॥

आ० यह भी तुम को उन स्वार्थी लोगोंने सुनाई होगी परन्तु यदि तुम विचारो तो आप ही जान लोगे कि गाली किस को पहुंचती है। कल्पना करो, कि एक मनुष्य का पिता अमृतसर में बैठा है, एक देवदत्त ने उस के लड़के को सुनाकर गाली दी तो उस का पुत्र तो क्रोध करता है, परन्तु हम उस के पिता को तार देते हैं और पूछते हैं कि देवदत्त ने तुम को क्या कहा, तो वह उत्तर देता है कि कुछ भी नहीं। इस से स्पष्ट सिद्ध होता है, कि जैसे सुनने वाले को गाली पहुंचती है वैसे ही खाने

वाले को ही अन्न पहुंचता है और मरे पितरों को नहीं।

पौ० आपने मेरी सब शंका निवारण करदीं, परन्तु जो आपने जाट का इतिहास सुनाया था उस से एक शंका हुई है और वह यह है, कि क्या वैतरणी नदी (जो यम लोक के मार्ग में है और जिस का विस्तार गरुड़पुराण में लिखा है कि १०० योजन अर्थात् ४०० कोश चौड़ी और राध लोहू से भरी है यथा—

नीयन्ते तर्तुकामं तं महावैतरणीं नदीम्।
शतयोजनविस्तीर्णां पूयशोणितसंकुलाम्॥

(ग० पु० प्रे० अ० ३ श्लो० २६)

से पार उतरने के अर्थ जो गौ दान करते हैं, वह भी नहीं मिलती और पार उतारती?

आ० भाई तुम आप ही विचारो कि किस प्रकार वह मिलेगी जिसने मरते समय गौ दान की, वह तो शरीर छोड़ कर गया, परन्तु जिस को हम गौ देते हैं उस के घर ही बंधी रहती है वा कई ऐसे दुष्ट भी होते हैं, जो कसाइयों के हाथ बेच दिया करते हैं, गौ तो यहां ही रह जाती है वहां कैसे पहुंचेगी? और प्रेत को कोई शरीर

मिल जाता है कि जिस से पुच्छ पकड़ के पार हो वा आत्मा ही गौ की पुच्छ पकड़ता है? यदि शरीर मिलता है तो कभी जन्म लिये विना नहीं मिल सकता और जन्म ले के फिर पार होता है, तो अवश्य हमारा भी यही हाल होता और हम को भी गौ की पुच्छ पकड़ के उक्त नदी के पार होना पड़ता, परन्तु हम ने तो ऐसी विलक्षण नदी देखी भी नहीं, यदि आत्मा पुच्छ पकड़कर पार होता है तो यह अत्यन्त असम्भव है, क्योंकि आत्मा में ऐसा कर्म नहीं घट सकता और तुम्हारे गरुड़पुराण के अनुसार यदि मान भी लें कि अवश्य नदी उत्तीर्ण होगा, तो अच्छा होता यदि तुम तूंबा दान करते जिस की सहायता से अच्छी प्रकार तैर सकता, क्योंकि चार सौ कोश उस का फांट है, गौ बेचारी चलती २ यदि थक करके डूब मरे, तो गोहत्या होना सम्भव है इसलिये तूंबे से ठीक तैर सकेगा, परन्तु महाअसम्भव तो यह है, कि वह नदी रुधिर और पीब [पूय] की भरी हुई उक्त पुराण में लिखी है। विचारना चाहिये, कि नदी पर्वत आदि से निकला करती है और पर्वत आदि से रुधिर का निकलना असम्भव है। मानना पड़ेगा कि किसी शरीर से निकलता

है हम पूंछते हैं कि वह किस का शरीर है और कहां पड़ा है, जिस से आज तक नदी निकलती रहती है। दूसरी शङ्का यह है कि रुधिर में तैरना बन ही नहीं सक्ता, क्योंकि वह शरीर से निकल कर ठंढा होने से जम जाता है, इस लिये ऐसी दशा में एक बड़ा भारी बूट, जो बरफ़ पर चलने का होता है, दान करना चाहिये, कि वह पहिर कर चला जाय।

पौ० यह बातें न तो वेदादि शास्त्रों में लिखी हैं और न युक्ति से सिद्ध होती हैं, फिर पुराणों में कैसे लिखी गईं और हमारे बड़ों ने कैसे मानी ?

आ० भाई यह पुस्तकें पुराणी नहीं हैं किन्तु बहुत नवीन हैं क्योंकि इन में जैन, बौद्धादि मतों को बुरा भला कहा है, इस से जाना जाता है, कि बौद्धादिकों के पश्चात् बनी, उस समय अविद्या फैली हुई थी, स्वार्थी लोगों ने अपनी मन मानी बातें पुराणों में लिख दीं। और देखो, यदि हम पुराणों के लेख के अनुकूल ही श्राद्ध करें, तो हम को एक ही बार करना पड़े जैसाः—

रामगीतां पठन्भक्त्या यः श्राद्धे भोजयेद् द्विजान्।

तस्य पितरः सर्वे यान्ति विष्णोः परमं पदम् ॥

ब्रह्माण्डपुराण उत्तर खण्ड श्लो० ५५

अर्थ, जो मनुष्यभक्ति से रामगीता का पाठ करता हुआ श्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन कराता है उस के सारे पितर मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जब हम उक्त रीति से एक ही बार श्राद्ध करेंगे तो फिर करने की आवश्यकता नहीं होगी, क्योंकि पितर तो हमारे मुक्त हो ही गये फिर श्राद्ध किस को पहुंचेगा।

उस समय तुम्हारे बड़े पढ़े हुए नहीं थे, क्योंकि पोप जी का हुक्म था, कि विना ब्राह्मण के किसी को पढ़ने का अधिकार नहीं, इस लिये इन के जाल में फंस गये।

पौ० महाराज आपने मुझ पर बड़ी कृपा की, कि मेरे सारे संदेह निवृत्त कर दिये और मुझे सच्चे मार्ग पर चला दिया अब कृपा करके यह आज्ञा करिये कि मैं प्रतिदिन क्या क्रिया करूं और किस ग्रन्थ को देखूं, कि फिर इन स्वार्थी लोगों के जाल में न फसूं।

आ० नित्य पांचु वैदिक यज्ञों को करो जिस में जीते माता पिता आदि का श्राद्धादि है, और सत्यार्थप्रकाश को पढ़ो और फिर और आर्षग्रन्थों को देखना ॥ इति ॥

ओ३म्

मृतक श्राद्धविषयक प्रश्न ॥

———*———

(१) पौराणिकों के मतानुसार मृतकश्राद्ध को चलाने वाले राजा कर्ण हुए हैं इस से स्पष्ट है कि उक्त राजा से पूर्व मृतकश्राद्ध की परिपाटी का सर्वथा अभाव था अतएव मृतकश्राद्ध वैदिककर्म नहीं हो सकता ।

(२) राजा कर्ण से पूर्व पितरों की गति के निमित्त लोग क्या कर्म किया करते थे ?

(३) कौओं और पितरों में क्या सम्बन्ध है जो श्राद्ध में विशेष कर उन को भोजन दिया जाता है ?

(४) तीन पीढ़ी तक श्राद्ध करने का नियम है उन के पहिले अर्थात् ५।६ पीढ़ी के पुरुषों की क्या गति होती है?

(५) जो निस्सन्तान मरते हैं उन को अपने धर्म के अनुसार स्वर्ग प्राप्त होता है वा नहीं क्योंकि शुकदेव जी, भीष्म जी, पञ्चशिख इत्यादि बहुत से ऋषियों ने अपना विवाह नहीं किया वे हिन्दूमतानुसार कौन से नरक में हैं?

(६) जो मनुष्य गयानगर में अपने पुरुषों का श्राद्ध

कर आता है उस के पुरुषों का फिर श्राद्ध नहीं होना चाहिये पर क्यों होता है और गया के निवासी क्यों करते हैं ?

(७) ३६० दिन में से १६ दिन पितरों का क्यों नियम बांधा, कि सब हिन्दुओं के एक दम श्राद्ध करने से पात्र ब्राह्मण और आवश्यक पदार्थों का मिलना असम्भव होता है। और एक ही दिन के पिण्डों से वर्ष भर की तृप्ति क्योंकर होजाती है ?

(८) पितर लोग कौन से शरीर से ग्रहण करते हैं ? यदि स्थूल शरीर से, तो मनुष्यों को दीखते क्यों नहीं, यदि सूक्ष्म शरीर से, तो सूक्ष्म शरीर स्थूल भोजन को कैसे ग्रहण कर सकता है ?

(९) यदि एक ही मनुष्य के ४ पुत्र ४ नगरों में एक ही दिन और एक ही समय में श्राद्ध करें तो वह चारों का भोजन ग्रहण कर सक्ता है वा नहीं, शास्त्रों के मत से जीव अल्पशक्ति और एकदेशी है ।

(१०) स्त्रियों को श्राद्ध करने का अधिकार नहीं है तो पुत्री का अधिकार क्यों है ?

(११) कनागतों में हजामत बनवाने और कपड़े बद-

लने का किस शास्त्र में निषेध है? क्या मैले और अशुद्ध रहने से पितर प्रसन्न होते हैं?

(१२) माता पिता इत्यादि सम्बन्ध सशरीर जीव से हैं वा निश्शरीर से? यदि सशरीर से हैं तो शरीरवियुक्त जीव किस का माता पिता है और उस के लिये श्राद्ध देने का अधिकारी कौन है?

(१३) मोक्षगत जीव के निमित्त श्राद्ध देना चाहिये वा नहीं? यदि चाहिये तो वह किस प्रकार पाते हैं, यदि न चाहिये तो क्या निश्चय है कि जीव मोक्ष में है वा उस से अलग है?

(१४) जीव को निजकर्मानुसार गति होती है वा नहीं यदि होती है तो मृतकश्राद्धों का क्या फल है?

(१५) सपिण्डीकरण में तीन शाखों में मेल किया जाता है सो क्या तीनों शाखें विना दूसरी योनियों के कहीं विद्यमान हैं या यह मेल करना व्यर्थ है?

(१६) यदि वह जीव किसी योनि को पाचुके हैं तो उन शरीरों के साथ दूसरे का क्या मेल और वह किन शरीरों में हैं इस का निर्णय क्या है?

(१७) सपिण्डीकरण श्राद्ध में वह पिण्ड जोकि जीव

का शरीर माना जाता है काटकर त्रिपुरुष में मिलाया जाता है ऐसी व्यवस्था में घातदोष लगता है वा नहीं?

(१८) यदि वह जीव जिन में सपिण्डी से मेल किया जाता है बैल गधे आदि योनियों में हैं तो जिस का मेल किया है वह उस मेल के कारण उन्हीं योनियों को जायगा वा दूसरी गति पावेगा?

(१९) श्राद्ध में जो पदार्थ दिये जाते हैं यदि वह उन योनियों के सानुकूल नहीं जिन को प्रेतादि पाचुके हैं तो पुत्र आदि के दिये श्राद्धगत पदार्थ व्यर्थ हैं वा नहीं? यदि कालान्तर के लिये सार्थक माने जावें तो सम्प्रति वे जीव क्या खाते हैं क्योंकि विना श्राद्ध उन्हें भूखों मरना ही है। यदि निजकर्मानुसार भोजन पाते हैं तो श्राद्ध करना व्यर्थ है?

(२०) श्राद्ध करने का अधिकार किन२ जातियों को है और जिन २ जातियों को श्राद्धाधिकार माना जावे उन जातियों के अनुकूल श्राद्ध में वे २ पदार्थ क्यों नहीं दिये जाते?

(२१) यदि प्राणी की तृप्ति होनी अभीष्ट है तो मद्य मांसाहारी जीव के लिये मद्य मांस ही देना उचित होगा

महाशंङ्कावली १ भाग)। दूसरा भाग)। ईसाईमत-खण्डन १ भाग)। दूसरा भाग)। ईसाईमतलीला)। शिवलिङ्गपूजाविधान)। पं० रामचन्द्र वेदान्ती का उत्तर)। गङ्गा की नींद)। नीतिशिक्षावली)। (१) पुराण किसने बनाये (२) अमेरीका निवासी डेविस की आर्यसमाज और स्वामी जी पर राय (३) श्रीस्वामी शङ्करानन्द जी के अनमोल उपदेश, ये तीनों आधे २ पैसे की हैं। रामायण का आल्हा)। आर्योंजागृत हो)।।

श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी महाराज कृत पुस्तकें सत्यार्थप्रकाश मूल्य २) जो कई महीनों से छपता था अब बम्बई टाइप में उत्तम कागज़ पर छपके तैय्यार हो गया और हमारे पास भी आगया है मोटे काग़ज़ का मूल्य २॥) है ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥) संस्कारविधि१।) आर्याभिविनय ।) पञ्चमहायज्ञविधि ≡)॥ संस्कृतवाक्यप्रबोध ≡) व्यवहारभानु ≡) आर्योद्देशरत्नमाला -) गोकरुणानिधि -) सत्यधर्मविचार (मेला चांदापुर) -) शास्त्रार्थ काशी -) वेदान्तिध्वान्तनिवारण -)

पता—स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती

प्रबन्धकर्त्ता वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड सदर—मेरठ

ओ३म्

वेदमन्त्रविवरण

संख्या १

मनुष्यसमाज

मन्त्र

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

यजु० अ० ३१ मं० ११॥

इस मन्त्र पर विचारकी आवश्यकता॥

यह मन्त्र कई कारणोंसे विचारणीय है प्रथम, यह उन मन्त्रोंमें से है जिन पर आर्य्यसमाज और सनातन धर्म्मसभाके बीच सदा वाद विवाद होता रहता है। दूसरे, यह मन्त्र उस महाहानिकारक जातिभेद अथवा आधुनिक नामसत्रकी वर्णव्यवस्थाका पोषक समझा जाता है कि जो इस देशवासियोंकी सामाजिक अवनति का मुख्य कारण है। इस लिये यह मन्त्र इस योग्य है कि इस पर अच्छे प्रकार विचार किया जाय, और हम

आशा करते हैं कि पाठक गण इस पर विशेष ध्यान देंगे ॥

मन्त्रका आधुनिक अर्थात् प्रचरित अर्थ ॥

हमारे हिन्दू पण्डित सायणाचार्य्य आदिका अनुकरण करते हुए इस मन्त्रका यह अर्थ करते हैं–" ब्राह्मण ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न हुए, क्षत्रिय उसकी भुजाओंसे, वैश्य उसकी जङ्घाओंसे और शूद्र उसके पावोंसे ॥

इस अर्थमें अशुद्धिएं ॥

यह अर्थ नीचे लिखे कारणोंसे ठीक नहीं हो सक्ता– (१) यह वेदविरुद्ध है, (२) यह अयुक्त है, (३) यह व्याकरणकी रीतिसे अशुद्ध है, (४) यह प्रकरणविरुद्ध है ॥

(१) यह अर्थ वेदविरुद्ध है ॥

इस अर्थमें यह मान लिया गया है कि ईश्वर देहधारी है और उसके शिर भुजा आदि भी हैं। परन्तु वेदमें ऐसे अनेक मन्त्र हैं (यद्यपि हम उनको यहां लिखनेकी आवश्यकता नहीं समझते) कि जिनसे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि वेदोंके अनुकूल ईश्वर चैतन्यस्वरूप, निराकार, शरीररहित और सर्वव्यापी है । इसके अतिरिक्त यह अर्थ आज कलकी झूंठी वर्णव्यवस्था वा जातिभेदकी पुष्टि

करता है अथवा उसकी पुष्टि करने वाला समझा जाता है, यद्यपि यह जातिभेद वैदिकसमयमें कदापि न था। वैदिक ग्रन्थोंमें ऐसे अनेक वचन हैं जिनसे सिद्ध होता है कि प्राचीन आर्य्यावर्तमें वर्णव्यवस्था गुण कर्म स्वभाव पर थी न कि जन्म पर। विशेषकर महाभारतमें इस प्रकार के अनेक श्लोक पाये जाते हैं, उनमें से कुछ श्लोक इस विषयका ऐसी स्पष्ट रीतिसे समाधान करते हैं कि हम उनको यहां लिखना आवश्यक समझते हैं–

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मणा वर्णतां गतम् ॥

शान्तिपर्व अ० ७२ ॥

एकवर्णामिदं पूर्वं विश्वमासीद् युधिष्ठिर ।
कर्म्मक्रियाविभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम् ॥
सर्वे वै योनिजा मर्त्याः सर्वे मूत्रपुरीषिणः ।
एकेन्द्रियेन्द्रियार्थाश्च तस्माच्छीलगुणैर्द्विजः ॥
शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् ।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात् प्रत्यवरो भवेत् ॥

शूद्रे तु यद् भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥

वनपर्व १२४ ॥

अर्थ—"वर्णोंकी कोई विशेषता नहीं है, यह सारा जगत् एक ब्रह्मका रचा हुआ है। जब ब्रह्म इसको रच चुका तब कर्म्मों के भेदसे यह भिन्न २ वर्णोंको प्राप्त हुआ ॥ (शान्तिपर्व) ॥

हे युधिष्ठिर ! यह सारा जगत् पहले एक वर्ण था परन्तु कर्म और क्रियाके भेदसे चार वर्ण हो गये॥ सब मनुष्य एक ही प्रकार उत्पन्न होते हैं, सबका एक सा ही मल मूत्र होता है, एक सी इन्द्रियें और एक से ही इन्द्रियोंके विषय हैं। इस लिये मनुष्य अपने स्वभाव ही के कारण द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य कहलाता है। शूद्र भी यदि उत्तम स्वभाव और गुणसे युक्त हो तो ब्राह्मण होजाता है और ब्राह्मण भी यदि क्रिया हीन हो तो शूद्रसे भी नीच हो जाता है। यदि शूद्रमें सदा-

चरण हों और द्विजमें न हों तो वह शूद्र शूद्र नहीं, और न वह ब्राह्मण ब्राह्मण है। जिसमें यह सदाचरण पाया जाय उसीको शास्त्रोंने ब्राह्मण कहा है, जिसमें यह न पाया जाय उसी को शूद्र बतलाया है"। (वनपर्व) ॥

परन्तु इस विषय पर अधिक लिखना अनावश्यक है क्योंकि अब यौरपके विद्वान् भी एकमत होकर मानने लगे हैं कि यह आजकलका जातिभेद वैदिक समयके पीछे फैला है ॥

(२) यह अर्थ अयुक्त है ॥

यदि यह मान भी लिया जाय कि ईश्वर शरीरधारी है, तो यह समझमें नहीं आता कि यह चारों वर्ण उस के शरीरसे कैसे निकले। इस लिये मन्त्रका प्रचरित अर्थ सर्वथा अयुक्त है ॥

(३) यह अर्थ व्याकरणकी रीतिसे अशुद्ध है ॥

जो कोई थोड़ी सी भी संस्कृत जानता है वह समझ लेगा कि इस अर्थमें व्याकरणकी कई अशुद्धियां हैं। मुखम् बाहू और ऊरू यह शब्द प्रथमा विभक्तिमें हैं, न कि पञ्चमीमें। इसमें कोई सन्देह नहीं पद्भ्याम् शब्द

पंचमी विभक्तिमें है परन्तु उसका "व्यत्यय" मानना पड़ेगा जैसा कि मुखम् बाहू और ऊरू शब्दोंसे स्पष्ट है, और पूर्व मन्त्रसे जिसको हम आगे लिखेंगे और भी स्पष्ट हो जाता है। इस लिये मन्त्रका ठीक और शाब्दिक अर्थ यह है—"ब्राह्मण उसका शिर हैं, क्षत्रिय उसकी भुजा बनाये गये हैं, जो वैश्य हैं वे उसकी जङ्घा हैं और शूद्र उसके पांव बनाये गये हैं"। यह अर्थ कदापि नहीं होसक्ता कि ब्राह्मण उसके शिरसे उत्पन्न हुए, क्षत्रिय उसकी भुजाओंसे निकले इत्यादि। हम नीचे इस मन्त्रके महीधर भाष्यको लिखते हैं जिससे यह बात स्पष्ट हो जायगी कि हमारे आधुनिक पण्डित किस प्रकार इस मन्त्रसे अपना मत साना अर्थ निकालना चाहते हैं।

"ब्राह्मणोब्रह्मत्वविशिष्टःपुरुषोऽस्य प्रजापतेर्मुखमासीत् मुखादुत्पन्नइत्यर्थः। राजन्यः क्षत्रियत्वजातिविशिष्टः पुरुषो बाहू कृतो बाहुत्वेन निष्पादितः। तत् तदानीम्, अस्य प्रजापतेर्यत् यावूरू तद्रूपोवैश्यःसम्पन्नः ऊरुभ्यामुत्पादितइत्यर्थः" (महीधरभाष्य)॥

अर्थ—"ब्राह्मण अर्थात् ब्राह्मत्व जातिविशिष्ट पुरुष उस प्रजापतिका मुख था अर्थात् उसके मुखसे उत्पन्न हुआ क्षत्रिय अर्थात् क्षत्रियत्व जातिविशिष्ट पुरुष उस की भुजा बनाया गया अर्थात् उसकी भुजारूपसे रचा गया, तब उस प्रजापतिकी जो जङ्घा थीं तद्रूप वैश्य हुआ अर्थात् जङ्घाओंसे उत्पन्न हुआ।" हम अपने पाठकगणोंका उस आशयकी ओर विशेष ध्यान दिलाते हैं कि जो मोटे अक्षरोंमें छापा गया है। यह स्पष्ट है कि महीधरने मन्त्रका पहिले ठीक और सीधा अर्थ करके फिर उसके पदोंमें अपने मनमाने ढंग पर खेंचातानी की है। यह समझमें नहीं आता कि मुखमासीत् (मुख था) इन शब्दोंका यह अर्थ कैसे हो सक्ता है कि मुखादुत्पन्नः (मुखसे उत्पन्न हुआ) और फिर यावूरू तद्रूपो वैश्यः (जो जङ्घा थीं तद्रूप वैश्य हुआ) इन शब्दोंका यह कैसे तात्पर्य्य हो सक्ता है कि ऊरुभ्यामुत्पादितः (जङ्घाओंसे उत्पन्न हुआ) यह बात स्पष्टहै

कि यह अर्थ मन्त्रके शब्दोंमेंसे निकलता नहीं किन्तु उनमें बलात्कार डाला गया है।

(४) यह अर्थ प्रकरणविरुद्ध है॥

इससे पहिला मन्त्र यह है:—

मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते।

अर्थ—"उसका शिर क्या था, क्या भुजा थीं और जङ्घा और पांव क्या कहे जाते हैं? यहां यह नहीं पूछा गया है कि उसके शिरसे कौन निकले और उसकी भुजाओंसे कौन निकले। इस मन्त्रमें जो प्रश्न किया गया है उसीका उत्तर देनेके लिये वह मन्त्र है जिसकी व्याख्या इस पुस्तकमें की गई है। इस लिये मन्त्रका प्रचरित अर्थ सर्वथा अशुद्ध है। भला यह कहीं हो सक्ता है कि प्रश्न तो यह किया जावे कि "उसका शिर क्या था, उसकी भुजा क्या थीं और उसके जङ्घा और पांव क्या थे?„ और उत्तर यह दिया जावे कि "ब्राह्मण उसके मुखसे निकले और क्षत्रिय उसकी भुजाओंसे, वैश्य उसकी जङ्घाओंसे और शूद्र उसके पांवोंसे?„ इस लिये मन्त्रका ठीक और सत्य अर्थ केवल वही हो सक्ता है जो हम ऊपर दे चुके हैं॥

यह बात ध्यान देने योग्य है कि पौराणिक समयमें भी लोग इस मन्त्रके सत्य अर्थको बिल्कुल न भूल गये थे। निस्सन्देह पुराणोंमें ऐसे बहुत से वचन हैं जिनमें वही अर्थ मिलता है जिसको हमने अशुद्ध ठहराया है। तथापि भागवत पुराणमें यह अद्भुत श्लोक मिलता है—

पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः।
ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रो व्यजायत॥

भागवत स्कं० २ अ ५ श्लोक ७७

अर्थ—"ब्राह्मण उस पुरुषका शिर हैं, क्षत्रिय उसकी भुजा हैं, वैश्य उसकी जङ्घा हैं और शूद्र उसके पांव बनाये गये हैं"॥

ब्रह्माननः क्षत्रभुजो महात्मा विडूरुरङ्घ्रिश्रितकृष्णवर्णः। भा० स्क० २ अ० १ श्लो० ३७॥

अर्थ—"उस महान् पुरुषके ब्राह्मण शिर हैं, क्षत्रिय भुजा हैं, वैश्य जंघा हैं और शूद्र पांव समान हैं"। तात्पर्य स्पष्ट है, अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं॥ यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि "वह कौन पुरुष है जिसके पांव शूद्र हैं"? इस प्रश्नका उत्तर देने से पहिले

हमको यह स्थल देखना चाहिये कि जहां यह मन्त्र आया है ॥

मन्त्रकी पूर्वापर सङ्गति और उसका प्रकरणानुकूल सत्य अर्थ ॥

यह मन्त्र वेदके एक सुप्रसिद्ध सूक्तमें आया है कि जिसका नाम *"पुरुषसूक्त" है। इस सूक्तमें सृष्टि की रचनाका वर्णन है। हमको यहां पर कुल सूक्तका अर्थ लिखनेसे प्रयोजन नहीं। इसलिये हम उसके केवल उतने आशय की ओर संकेत करेंगे कि जितना इस मन्त्रकी व्याख्यासे सम्बन्ध रखता है ॥

मन्त्र १ से मं० ४ तक यह वर्णन है कि ईश्वर इस जगत् का स्रष्टा और सर्वव्यापक है, उसकी महिमा अनन्त और अपार है। इसके पश्चात् इस जगत्की सृष्टिका वर्णन है। प्रथम ईश्वरने प्रकृतिका कि जो प्रलयकी अवस्थामें अविज्ञेय और अलक्षय दशामें पड़ी थी, प्रादुर्भाव किया। तब उसमें से पृथिवी और अन्यलोक रचे (मं० ५)। इसके पश्चात् उन अनेक वस्तुओंकी रचना का वर्णन किया गया

*देखो ऋग्वेद १०-९०, यजुर्वेद ३१, अथर्ववेद १९-६

है जो इस पृथ्वी पर पाई जाती हैं। प्रथम वनस्पति और विविध जीव जन्तु रचे गये-

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥

अर्थ-"उस सर्वपूज्य परमेश्वरने सब प्रकारकी वनस्पति, रसयुक्त पदार्थोंको रचा, और वायुमें उड़ने वाले जंगलोंमें फिरने वाले तथा गांव आदि वस्तियोंमें रहने वाले इत्यादि सब जन्तुओंको रचा (मं० ६)। अन्तमें मनुष्य रचे गये-

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥

अर्थ-"उसी परमात्माने मनुष्यजातिको जिसमें उस सर्वपूज्य और सर्वश्रेष्ठ सर्वव्यापी परमात्माको हृदयमें धारण करने वाले अनेक विद्वान् साध्य और ऋषि हैं, रचा"। (मं० ९)। हमारे हिन्दू भाई इस मन्त्रमें विराट्रूपसे ईश्वरका वर्णन मानते हैं। परन्तु वास्तवमें यहां मनुष्यजाति रूपकालङ्कार द्वारा एक पुरुषवत् वर्णन की गई है।

परन्तु विना सूक्ष्मदृष्टिसे देखे और विचारे अलङ्कार समझमें नहीं आता। कोई यह प्रश्न कर सक्ता है कि "भला अनेक पुरुष और स्त्रियोंके समूहमें और एक पुरुषके शरीरमें जिसमें शिर भुजा आदि कई प्रकारके अङ्ग होते हैं, क्या उपमा हो सक्ती है"? यह प्रश्न स्वभाव से हर मनुष्यके हृदयमें उत्पन्न हो सक्ता है, और इसलिये वेदमें भी इस प्रकार उठाया गया है:-

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते॥

अर्थ-"जिस पुरुषका विधान किया और जिसको कई प्रकारके अङ्गों वाला कल्पना किया-उसका शिर क्या है? भुजा क्या हैं? और जङ्घा और पाउं क्या कहलाते हैं" (मन्त्र १०)। इसी मन्त्रके उत्तरमें अगला मन्त्र कहा गया है कि जिसकी इस पुस्तकमें व्याख्या है-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

अर्थ-"ब्राह्मण उसका शिर है, क्षत्रिय उसकी भुजा बनाये गये हैं। जो वैश्य हैं वह उसकी जङ्घा हैं, और शूद्र

उसके पाउं उत्पन्न किये गये हैं"। मन्त्र ९ में मनुष्यजाति पुरुषरूपसे वर्णन की गयी है। मन्त्र १० में यह प्रश्न किया गया है कि उस पुरुषके अङ्ग क्या हैं? उसका शिर क्या है? उसकी भुजा क्या हैं? इत्यादि। मन्त्र ११ में उत्तर दिया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्रमसे उस मनुष्य जातिरूप पुरुषके शिर भुजा जङ्घा और पांव हैं।

अब पाठकगण भली भांति समझ गये होंगे कि मन्त्र का प्रचरित अर्थ सर्वथा अशुद्ध है। इससे आगे हम इस मन्त्रके सत्य अर्थकी व्याख्या करेंगे॥

मन्त्र पर व्याख्या॥

इस मन्त्रमें मनुष्यजातिको रूपकालङ्कार द्वारा एक पुरुषसे तुलना करके मनुष्यसमाजकी रचनाका वर्णन किया गया है। जैसे पुरुष अर्थात् मनुष्यके शरीरमें शिर, भुजा, जङ्घा और पांव हैं उसी प्रकार मनुष्यसमाजमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। जैसे शिर भुजा आदि अलग २ काम करते हैं, वैसे ही ब्राह्मण क्षत्रियादिके पृथक् २ कर्म्म हैं॥

(१) यहां ब्राह्मणोंको मनुष्यसमाजके मुख वा शिर से उपमा दी गई है। जैसे मनुष्यके शरीरमें शिर सब

ज्ञानेन्द्रियों और मस्तिष्कका आधार है, वैसे ही मनुष्य-जातिमें ब्राह्मण ज्ञान और विद्याके आधार हैं। जैसे शिरमें केवल एक कर्म्मेन्द्रिय अर्थात् 'जिह्वा' है जिसका काम बोलना और उपदेश करना है, वैसे ही ब्राह्मणोंका मुख्य कर्म्म पढ़ना पढ़ाना और उपदेश करना है। मनुष्य के शरीरमें मस्तिष्क सब अङ्ग और अवयवोंको चलाता है और प्रत्येकको अपने काममें लगाता है, वैसे ही मनुष्यसमाजमें ब्राह्मण सबको अपने २ काममें लगाते हैं और अपने उपदेशसे उनको अपने धर्म्म पर आरूढ़ करते हैं। इस लिये उनको मनुष्यसमाजके शिरःस्थानी कहना सर्वथा युक्त है॥

(२) क्षत्रिय, मनुष्यसमाजकी भुजा वर्णन किये गये हैं। भुजाओंका काम सारे शरीरकी रक्षा करना है। यह भुजाओंका मुख्य काम है। इसी कारण बहुत सी भाषाओंमें भुजाका पर्याय शब्द 'बल' के अर्थमें आने लगा है संस्कृत "बाहु" शब्द ही जो इस मन्त्रमें आया है बलके अर्थमें भी आता है। जैसा शतपथ ब्राह्मणमें लिखा है

"बाहुर्वै बलम्" अर्थात् 'बाहु' बलको कहते हैं। फ़ारसी का "बाज़ू" शब्द जो संस्कृत "बाहु" ही से बना है, भुजा और बल दोनों अर्थोंमें आता है। क्षत्रिय, मनुष्यसमाज की उसी प्रकार रक्षा करते हैं जैसे बाहु शरीरकी रक्षा करती हैं। इसी कारण उनको मनुष्यसमाजके भुजास्थानी बतलाया है॥

(३) वैश्य मनुष्य जातिके "ऊरू" वर्णन किये गयेहैं। "ऊरू" शब्दके दो अर्थ हैं (१) उदर, वा (२) जङ्घा। दोनों अर्थोंसे वही तात्पर्य निकलता है। वैश्यों के मुख्य धर्म्म खेती, वाणिज्य व्यापार आदि हैं। जैसे उदरका काम यह है कि भोजन को पचावे और सब शरीरके पोषणार्थ रस पहुंचावे, वैसे ही वैश्योंका काम यह है कि खेतीके द्वारा अन्न उत्पन्न करें, और वाणिज्य व्यापार द्वारा सब मनुष्यों को अन्न तथा और आवश्यक वस्तुएँ पहुंचावें। इसलिये उनको मनुष्यसमाजरूपी पुरुषका उदर कहना सर्वथा सार्थक है। अथवा "ऊरू" शब्दका अर्थ जङ्घा ले लीजिये। जङ्घाके बलसे मनुष्यका शरीर चलता फिरता है और एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाता है। इसलिये वैश्योंको जि

नका मुख्य कर्म्म यह है कि वाणिज्य व्यापारके लिये दे-
श देशान्तरोंमें जावें, मनुष्यसमूहकी जङ्घा कहना भी उ-
तना ही युक्त है ॥

(४) शूद्रोंको मनुष्यसमाजके पादस्थानी बतलाया गया है। शूद्र उन लोगोंका नाम है जो विद्यारहित होनेके कारण द्विजोंके कर्म्म न कर सक्ते हों और केवल उनकी सेवा करनेके योग्य हों। इसलिये उनको मनुष्यदेहके सबसे नीचे भागसे उपमा देना अयुक्त नहीं ॥

जैसे परमेश्वरने मनुष्यके शरीरमें शिरको जो ज्ञानका आधार है सबसे ऊंचा बनाया है, बाहुओंको जो बलके आधार हैं उससे नीचे, उदरको जहां भोजन पचकर रस बनता है, तीसरे स्थान पर और पाउंओंको जो सारे शरीरको सिम्हालते हैं सबसे नीचे रक्खा है; वैसे ही उ-सने मनुष्यसमाजमें ब्राह्मणोंको जिनका गौरव विद्याके कारण है सबसे ऊंचा बतलाया है, क्षत्रियोंको जिनकी बहादुरी धनके कारण है तीसरे स्थान पर और शूद्रोंको जो सेवामात्र करने के योग्य हैं चौथे स्थान पर रक्खा है। इसका कारण यही है कि विद्या, बल, धन, सेवा इन चारोंमें

विद्या श्रेष्ठ है क्योंकि विद्याके विना बल और धन कुछ काम नहीं कर सकते। बल विद्याकी अपेक्षा नीचे दर्जे का है, परन्तु धन से श्रेष्ठ है, क्योंकि बल से धन प्राप्त हो सकता है, परन्तु धन से बल होना दुष्कर है। और सेवा सबसे निकृष्ट है ॥

किसी अन्य मतका कौन पुस्तक अभिमान कर सकता है कि उस में मनुष्यजातिका विभाग इस उत्तम रीतिसे किया हो? कहां यह विभाग कि जिसमें विद्वान् सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं, बलवान् दूसरे दर्जे पर, और धनवान् तीसरे दर्जे पर रक्खे गये हैं, और कहां आज कलके बहुत से सभ्य देशोंकी प्रणाली कि जिसके अनुसार धनवान् सर्वोपरि माने जाते हैं?॥

यह अलङ्कारकी संक्षेपसे व्याख्या हुई। इससे यह बात स्पष्ट है कि यह मन्त्र जातिभेदकी किसी प्रकार पुष्टि नहीं करता किन्तु उन कर्म्मोंको बतलाता है जिनके अनुसार मनुष्यजातिका चार वर्णोंमें विभाग किया गया है। इस प्रकार मन्त्रके अनुकूल वर्णव्यवस्थाकी नींव कर्म्मों पर है न कि जन्म पर। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सक्ता है कि

इस मन्त्रमें **कार्यविभाग** और **मिलाप**का उपदेश किया गया है कि जिन पर (जैसा हम आगे सिद्ध करेंगे) मनुष्यजातिकी सारी उन्नति और सभ्यता निर्भर है॥

परन्तु यह मन्त्रका केवल साधारण अर्थ है। उसका गम्भीर अर्थ परोपकारका उपदेश करता है। उसमें अलङ्कार द्वारा यह बतलाया गया है कि **परोपकार** और **स्वार्थ** एक दूसरेके विरुद्ध नहीं किन्तु वास्तव में एक हैं क्योंकि सब मनुष्योंका सुख चाहे बिना हम आप भी सुख प्राप्त कर नहीं सकते। हम इसके आगे यह वर्णन करेंगे कि अलङ्कार से यह उपदेश किस तरह निकलता है॥

अलङ्कारमें सारी मनुष्यजातिकी एक पुरुषकी देहसे तुलना की गई है। जैसे मनुष्यदेहमें अङ्ग और अवयव हैं वैसे ही मनुष्यसमाजरूपी देहमें मनुष्य हैं। जैसे सब अङ्ग और अवयवोंका एक दूसरेसे परस्पर सम्बन्ध है और सारे शरीरसे भी सम्बन्ध है, वैसे ही सब मनुष्योंका एक दूसरे से और सारी मनुष्यजातिसे सम्बन्ध है। इस लिये सब मनुष्योंका परस्पर वैसा ही सम्बन्ध है जैसा एक शरीरके अङ्गों अर्थात् भागोंका। और जैसे शरीरका कोई अङ्ग अपने आप बिना दूसरे अङ्गोंकी सहायताके काम

नहीं कर सक्ता वैसे ही कोई मनुष्य बिना दूसरेकी सहायता के जीवन निर्वाह नहीं कर सकता। हम देखते हैं कि मनुष्यदेहमें सुख और आरोग्य तो क्या, बिना सब अङ्गों के मिल कर काम किये जीवन भी नहीं रह सक्ता। प्रत्येक अङ्गका आरोग्य सब अङ्गोंके आरोग्य पर निर्भर है। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यका सुख सब मनुष्योंके सुख पर निर्भर है। यही उपदेश आर्य्यसमाजके नवें नियममें किया गया है—"प्रत्येकको केवल अपनी ही उन्नतिसे सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझनी चाहिये"। सम्भव है कि आर्य्यसमाजके स्थापन करने वालेके ध्यानमें इस नियमके बनाते समय यही वेदमन्त्र हो। जो बात असङ्गत और अयुक्त सी प्रतीत होती थी वह अब अच्छी तरह समझमें आजाती हैं। मनुष्य अपने मनमें बहुधा प्रश्न किया करता है—"मैं दूसरोंका भला क्यों करूं? मैं अपनी ही उन्नतिका यत्न क्यों न करूं? क्यों सबकी उन्नतिके सोचमें आपको डालूं?" उत्तर बहुत सीधा है। किसी मनुष्यके लिये बिना सबकी उन्नतिका यत्न किये अपनी उन्नति चाहना ऐसा ही असम्भव है, जैसा शरीरका कोई अङ्ग यह चाहे कि मैं बिना सारे शरी-

रखे स्वास्थ्यका यत्न किये अपने आपको स्वस्थ रक्खूं। यहां उदर और दूसरे अङ्गोंकी कथा जो प्राचीन रोमके इतिहासमें बहुत प्रसिद्ध है वर्णन करनी अनुचित न होगी॥

प्राचीन समय में रोम में दो तरह के लोग रहते थे एक वह जो धनवान् थे और जिन को राज्य में सब प्रकार के अधिकार प्राप्त थे, दूसरे वह जो निर्धन और अधिकाररहित थे और जिन पर राज्याधिकारी बहुत अत्याचार किया करते थे। उनके अनेक अत्याचार से अत्यन्त दुःखित होकर यह विचार अपना एक नया नगर बसाने के विचार से रोम को छोड़ कर निकल गये। जब रोमके धनवान् और अधिकारी लोगों ने यह देखा कि इन लोगों के विना हमारा काम नहीं चल सक्ता तो अपने कुछ दूत उनके पास भेजे। इन दूतोंमें ऐग्रीपा नामी एक बड़ा बुद्धिमान् पुरुष था। उसने उन लोगोंको जो रोम छोड़ कर चले आये थे यह कथा सुनाई—"एक समय हाथ पांव आदि शरीरके अङ्गोंने उदरसे द्रोह किया। उन्होंने विचार किया कि हमको सब काम करना पड़ता है, और उदर चुपचाप शरीरके बीचमें बैठा हुआ हम जो कुछ उसके लिये लाते हैं उसको विना किसी परि-

श्रमके भोगता है। इस विचारसे उन सबने काम करना बन्द कर दिया, और उदरको भूखा मार कर वशीभूत करना चाहा। परन्तु जब उदर भूखा रहने लगा तब सारा शरीर भी शिथिल होता गया और सब अङ्गोंने भी अपने आपको दुर्बल होते हुये पाया। इस ही प्रकार हे रोमके निवासियों! तुम रोमके राज्याधिकारियोंको हानि पहुंचानेमें अपना भी नाश कर लोगे"। इन लोगोंको निश्चय होगया कि ऐग्रिपा सत्य कहता है, और कुछ अधिकार मिलने पर फिर रोममें जाकर बसना स्वीकार कर लिया॥

निदान मन्त्र यह सिखलाता है कि प्रत्येक मनुष्यके सुख और सारी मनुष्यजातिके सुखमें ऐसा सम्बन्ध है कि परोपकारके विना कभी स्वार्थ भी सिद्ध नहीं हो सक्ता। इसलिये परोपकार मनुष्यको अवश्य कर्त्तव्य है। यह उपदेश अलङ्कारसे अच्छे प्रकार स्पष्ट है। हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि शरीरका सुख और आरोग्य सारे अङ्गों के आरोग्य पर निर्भर है। यदि किसी एक अङ्गमें भी रोग हो तो सारा शरीर दुःखसे पीड़ित हो जाता है। किसी मनुष्यके शिरमें पीड़ा होती है तो उस के हाथ पांव और सारा शरीर शिथिल और क्रियाहीन हो जाता है।

यदि पांवमें कांटा भी चुभ जाता है तो सारे शरीरमें बेचैनी होजाती है। यही दशा मनुष्यसमाजरूपी देह की है। यदि उसका कोई भाग अपना धर्म्म पूरा नहीं करे, अथवा किसी कारणसे दुःखित हो तो सारे समाजको हानि पहुंचती है। यहां यह भी वर्णन करना अनुचित न होगा कि ब्राह्मणोंके अत्याचारको पुष्ट करना तो दूर रहा इस मन्त्रसे इसके बिल्कुल विरुद्ध आशय निकलता है। पौराणिक समयमें ब्राह्मणोंका शूद्रों पर उससे भी अधिक अत्याचार था कि जैसा रोमके धनवान् लोग निर्धन लोगों पर करते थे। परन्तु ऊपरके अलङ्कारसे इसके सर्वथा विरुद्ध शिक्षा मिलती है। शिरका पांउओंको हानि पहुंचाना वैसा ही बुरा है जैसा कि पांउओंका शिरको हानि पहुंचाना। क्योंकि यदि पांउओं को शिर की सहायताकी आवश्यकता है, तो शिरको पांउओंकी सहायता की भी वैसी ही आवश्यकता है॥

यहां कोई यह शङ्का कर सक्ता है कि यह सारी व्याख्या एक अलङ्कार की नीव पर उठाई गई है कि जो अलङ्कार मिथ्या है। सम्भव है कि कोई यह कहे कि सारी मनुष्यजातिका प्रत्येक मनुष्यसे वह सम्बन्ध नहीं है कि जो सारे

शरीरका अपने प्रत्येक अङ्ग और अवयवसे है और इसलिये अलङ्कार न घटनेके कारण यह बात सिद्ध नहीं हुई कि मनुष्य क्यों परोपकार करें,—क्यों परस्पर सहायता करें और लाभ पहुचावें। इसका समाधान यह है कि शरीरके आरोग्यके लिये उसके सब भागोंके मिलकर काम करने की आवश्यकता तो स्पष्ट ही है। उदर अन्नको पचाता और उसके रससे केवल अपना ही नहीं किन्तु सब अङ्गोंका पोषण करता है। फेफड़े रुधिरको शुद्ध करते हैं हृदय उसको सारे शरीरमें पहुंचाता है और इस प्रकार केवल फेफड़े और हृदय ही नहीं किन्तु सारा शरीर जीवित और बलवान् रहता है। शरीर के अन्य भाग भी एकदूसरे की इस ही प्रकार सहायता करते हैं। अब यह देखना चाहिये कि मनुष्योंके जीवन और सुखके लिये परस्पर मेल और सहायता की ऐसी आवश्यकता है कि नहीं?। यदि है तो अलङ्कार ठीक है और यदि नहीं तो वह मिथ्या है। इसका निर्णय करनेके लिये हमको मनुष्यसमाज की रचना पर विचार करना चाहिये। हम देखते हैं कि जैसे प्रत्येक अङ्गका स्वास्थ्य सब अङ्ग की सहायता पर निर्भर है, वैसे ही प्रत्येक मनुष्यका सुख सब मनुष्यों की सहायता

पर निर्भर है। प्रतिदिनके साधारण कामोंमें भी हमको अनेक मनुष्यों की सहायता लेनी पड़ती है। हमको भोजन और वस्त्रमात्र प्राप्त करनेमें अनेक मनुष्य सहायता देते हैं। एक मनुष्य नाज बोता है, दूसरा उसका आटा पीसता है, और तीसरा उसकी रोटी बनाता है। इसके अतिरिक्त खेतीके लिये हल की आवश्यकता है और हल बनानेके लिये खानसे लोहा निकालने वाले, उसको पिघला कर शुद्ध करने वाले, इसी प्रकार लोहार, बरसे लकड़ी काटकर लाने वाले, आरा खींचने वाले, बढ़ई आदि चाहियें। चीकेके वर्त्तनोंके लिये भी अनेक कारीगरोंकी आवश्यकता है। इस ही प्रकार वस्त्र बनानेके लिये कपास बोने वाले, काटने वाले, धुनने वाले, कातने वाले और बुनने वाले और वह सब कारीगर जो इस प्रकार के वस्त्र और कलोंको बनाते हैं, चाहियें। और यदि हम उन आराम और सुभीतेकी वस्तुओंको भी गिने कि जिन को पश्चिमी सभ्यता हमारे बीच में फैलाती जाती है तो उन लोगोंकी संख्या की, कि जिनकी सहायतासे हमको यह सब सुख मिलते हैं कोई सीमा नहीं रहती। एक छोटी सी पीनके बनानेमें तीस आदमी लगते हैं। तब

वह हमारे कामके योग्य होती है। फिर भला यदि हम रेल तार धूमपोतादिकका विचार करें तो उन मनुष्यों की संख्याका, जिनसे हमको सहायता मिलती है क्या पारावार रहे। क्या कोई मनुष्य इन सब कामोंको अकेला अपने आप कर सक्ता है?—यदि कोई कहे "कि मुझको किसी मनुष्यसे कुछ प्रयोजन और सम्बन्ध नहीं" तो क्या उसका यह कहना महा अयुक्त और असम्भव नहीं? क्या वह किसान, रसोईया, जुलाहे आदि सबका काम अकेला कर सक्ता है? कदापि नहीं। यह ऐसे ही असम्भव है कि जैसा पेट यह चाहे कि मैं दिल, गुरदे, फेफड़े आदि सबका काम अपने आप ही कर लूं॥

इसलिये यह अलङ्कार सर्वथा ठीक है। मनुष्योंको परस्पर मिलकर और बांट कर काम करने की ऐसी ही आवश्यकता है कि जैसी शरीरके अङ्गोंको। इसके विना हमारा जीवन भी नहीं रह सक्ता। अन्य प्राणियोंके लिये इसकी ऐसी आवश्यकता नहीं। उदाहरणके लिये—घोड़ा, गाय, वा बैलको देखो। ईश्वरने उनके खानेके लिये नरम और सुन्दर घाससे पृथ्वीको भूषित कर रक्खा है। उनके पीनेके लिये निर्म्मल जलकी नदियें बहा रक्खी हैं, शी-

तादिकसे रक्षा करनेके लिये उनके शरीर पर ऊन वा रोम उत्पन्न कर दिया है। वे चाहे एक दूसरे की सहायताके विना रह सकें; परन्तु मनुष्यके लिये यह ईश्वरीय नियम है कि वह एक समाज बना कर और परस्पर मिल कर रहें; उनका स्वभाव और बनाव ही ऐसा है कि वह विना परस्पर मेलके रह ही नहीं सक्ते। यही कारण है कि केवल मनुष्यजाति की एक पुरुषसे तुलना की गई है, और अन्य प्राणियों की नहीं। आपसमें मिलकर और बांट कर काम करना केवल मनुष्यजातिमें पाया जाता है और यही मनुष्यों और पशुओंमें बड़ा भेद है। इङ्गलिस्तानके एक बड़े तत्त्वज्ञ ऐडमस्मिथने "कार्यविभाग" के नियमके विषयमें कहा है कि सभ्यजातियों की उच्चताका केवल यही कारण है, अर्थात् जिस जातिमें जितना अधिक इस नियमका पालन किया जाता है, वह जाति उतनी ही अधिक सभ्य होती है। यदि दोनों नियमोंको साथ लिया जाय तो यह बात और भी अधिक दृढ़ हो जाती है। हमारी सारी सभ्यता इन दोनों नियमों पर निर्भर है। यदि आपसमें मिल कर और बांट कर काम करनेका नियम न होता तो क्या रेल, तार, धूमपोत आदि बन सक्ते थे?।

उपसंहार ॥

मन्त्रका मुख्य उपदेश मनुष्यसमाजकी रचनाका वर्णन करना अर्थात् "कार्यविभाग" और "मिलाप" इन दो नियमोंका उपदेश करना है, कि जिन पर हमारी सारी उन्नति और सभ्यता निर्भर है। साथ ही "परोपकार" उदारता आदि परमावश्यक धर्मोंका उपदेश भी दिया गया है कि जिनके विना परमार्थ तो क्या मनुष्यका स्वार्थ भी सिद्ध नहीं हो सक्ता। कहां यह अर्थ कि जिसमें से ऐसे गूढ़ उपदेश निकलते हैं, और कहां वह अयुक्त अर्थ कि ब्राह्मण ब्रह्माके मुखसे निकले, क्षत्रिय उसकी भुजाओं से, वैश्य उसकी जङ्घाओंसे और शूद्र उसके पावों से! लोग स्वामी दयानन्द और उनके स्थापित आर्य्यसमाज पर वेदोंके अर्थमें खैंचातानी करनेका चाहे जितना दोष लगाऐं, परन्तु हम आशा करते हैं कि हमारे पाठक इस एक ही मन्त्रसे समझ लेंगे कि उनके किये हुए अर्थ केवल युक्ति युक्त ही नहीं किन्तु ठीक और सत्य भी होते हैं ॥

इति ॥

—*—

"वैदिकदेवपूजा"

यह वह व्याख्यान है जो आर्यप्रतिनिधिसभा पश्चिमोत्तर देश की उपदेशकता में मैंने—काशी, मिर्ज़ापुर, प्रयाग, लखनौ, कानपुर, बरेली, अयोध्या, आगरा, झांसी, ग्वालियर, मथुरा, मेरठ, सहारनपुर इन नगरों में समारोह के सामने दिया था। लखनौ आदि कई स्थानों में मुझ से इस व्याख्यान के छपने को आग्रह किया गया था। आज यह छपकर तैयार होगया और मौखिक व्याख्यानों में जो समयाभावादि कारणों से कुछ बातें छूट जाती थीं और जो उस समय तक अज्ञात थीं वे भी इस में बढ़ाई गई हैं। इस में वैदिक देवों के नाम, रूप, स्वभाव और भागग्रहण का प्रकार तथा देवदूत का वर्णन, आश्चर्यदायक देवपूजा का फल, कर्मकाण्ड में देवयजन की मुख्यता, किस २ आश्रम को यह कर्त्तव्य और किस २ को अकर्त्तव्य है इत्यादि विषय की वेदमन्त्र, सूत्र, धर्मशास्त्र और साइंस के प्रकार से युक्तिसिद्ध भी पुष्टि की है। ब्रह्मचारी, गृही और वनी को यह पुस्तक उन के कर्त्तव्य का ध्यान दिलाने वाला है। मूल्य -)॥

पता—पं० तुलसीराम स्वामी सम्पादक वेदप्रकाश

स्वामियन्त्रालय—मेरठ

अया ।।) गीता ।।।) स्त्रीधर्मनीति ।) श्री छत्रपति शिवाजी का जीवनचरित्र ।) सुश्रुत भाषानुवाद सहित १०) आयुर्वेदशब्दार्णव ।।=) पाकरत्नाकर ।=) लेखदीपिका ।-) हारमोनियमगाइड ।=) खेतीविद्या के मुख्य सिद्धान्त ।।=) वेदान्तप्रदीप ।।) हकीकतराय का जीवनचरित्र)॥ धर्म्मप्रचार)॥ नमस्ते)॥ वायुमण्डल)। गायत्री अर्थ सहित २ पैसे। श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज की तसवीर पूना की ।।।) छोटी सादी १ आना, रंगीन डेढ़ आना, पं० गुरुदत्त जी एम०ए० की तसवीर सादी -) रंगीन डेढ़ आना, सद्धर्मप्रकाश १) बहारेनयरंग प्रथम भाग २ आने, दूसरा ४ आने,

धर्म्माधर्म्म विचार ।) सभाप्रबन्ध ।)॥ वेश्यानाटक ।)॥ उर्दू =)॥ दानकरणविधि =) प्रेमोदयभजनावली ≡) भजनामृतसरोवर =) सङ्गीतरत्नाकर =) दुलदेवी -)॥ बुद्धिमती ।-) अबलाविनय ≡)॥ हितशिक्षा -)॥ संस्कृत की प्रथम पुस्तक)।।। द्वितीय -)। तृतीय =)।।। चतुर्थ ।।) शास्त्रार्थकिरण =) ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दूपरत्ने प्रथमोंशः -)॥ तथा द्वितीयोंशः -)।।। वैदिकदेवपूजा -)॥ चाणक्यनीतिसार भाषा टीका -)। प्रश्नोत्तररत्नमाला भाषा टीका और आर्य्यविवाहमङ्गलाष्टक -) भजनेन्दु -) ना-

लिकाविष्कार)।।। आर्य्यचर्पटपञ्जरी)। प्रबन्धार्कोदय ।-) प्रिन्स विक्टर का जीवनचरित्र -) श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज के ८ व्याख्यान ६) स्वधर्म्मरक्षा ।) धर्म्म विषयक व्याख्यान २ आने, अप्रतिमनिरूपण ३ आने, स्त्री पर सामाजिक अन्याय २ आने, सत्यासत्यविचार सवा आना, आर्य्यसमाज के नियम सवा तीन आने सैकड़ा, व्याख्यान के विज्ञापन २ आने सैकड़ा, मांसभोजनविचार के प्रथम भाग का खण्डन डेढ़ आना, द्वितीय भाग ढाई आना, तृतीय सवा तीन आने, पंचमहायज्ञ अंगरेज़ी ४ आने, वैदिकटेक्सट्स तीनों भाग अंगरेज़ी पं० गुरुदत्त कृत १ आना, उर्दू पुस्तकें-हुज्जतुलइसलाम ८ आने, सबूत तनासुख़ सवा रु०, तकज़ीबबुराहिन अहमदिया सवा रु०, नुसख़े खब्तअहमदिया १२ आने, इलाज़ुलऔहाम १२ आने, क्रिश्चयनमतदर्पण ८ आने, तारीखदुनियां प्रथम भाग २ आने दूसरा ४ आने, जहाद ३ आने, ऋग्वेद के पहिले मन्त्र का अर्थ १ पैसा, श्री स्वामी दयानन्दसरस्वती, पं० लेखराम जी, पं० भीमसेन, मुंशी चिम्मनलाल, पं० कृपाराम के उर्दू टीक आदि पुस्तकेंभी मिलेंगी, सब का डाकव्यय अलग पड़ेगा ॥ ब्रह्मानन्दसरस्वती प्रबन्ध कर्त्ता

वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड मेरठ

ओं परमात्मने नमः ॥

पतितोद्धारण

लेखराम सीरीज़ संख्या ७

श्रीयुत् स्वर्गवासी धर्मवीर पं० लेखराम जी कृत

श्रीयुत मुन्शी जगदम्बाप्रसादजी अनुवादित

पुस्तक संख्या ३६

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित "वैदिक पुस्तक प्रचारक फण्ड" द्वारा प्रकाशित ॥

पञ्जाब एकीनामीकल प्रेस लाहौर में प्रिंटर लाला लालमणि के अधिकार से छपा॥

आर्यसम्वत्सर १९७२९४९०१ सन् १९०० ई०

प्रथम वार १०००] जनवरी [मूल्य)॥

वैदिक पुस्तक प्रचारक फण्ड से छपी पुस्तकें उक्त फण्ड के प्रबंधकर्त्ता मेरठ या पुस्तकाध्यक्ष आर्यसमाज लाहौर तथा अजमेर से मिलेंगी।

वैदिक पुस्तक प्रचारक फण्ड से छपी पुस्तकें

(१) समीक्षाकर ॥) (२)अन्त्यष्टि कर्मआवश्यक है)॥।
(३) क्या स्वामीदयानन्द मक्कार था ?)॥। (४) श्रीस्वामी
विरजानन्द का जीवनचरित्र)॥। (४)हिन्दू,आर्य, नमस्ते
की अन्वेषण)॥। (५) आर्यसमाज के १० नियम और वेद
मन्त्र से सम्मेलन)॥ (७) आर्योजागृत हो)॥ (८) क्रि-
श्चीयन मत दर्पण)॥ (९) जीवात्मा)॥ (१०) श्रीस्वामी
दयानन्द सरस्वती जी का जीवन चरित्र)॥ (११) पुरुष
सूक्त)॥ (१२)भजन पच्चीसी(सिकन्द्रावाद भजन मंडली
के भजन))॥ (१३) मनुष्य जन्म की सफलता)॥ (१४)
मनुष्य समाज)॥ (१५) मृतक श्राद्ध खण्डन)॥ (१६)
ईसाई मत खण्डन १ भाग)। (१७) दूसरा भाग)। (१८)
ईसाई मत लीला)। (१९) गङ्गा की नींद)। (२०) देवी
भागवत परीक्षा)। (२१) नृसिंह की विचित्र कथा)।
(२२) नित्यकर्म विधि (पञ्चयज्ञ अर्थ सहित))। (२३)
नीति शिक्षावली)। (२४) पुराण किसने बनाये)। (२५)
महाशङ्कावली १म, भाग)। (२६) दूसरा भाग)। (२७)
पण्डित रामचन्द्र वेदान्ती काउत्तर)। (२८) श्रीरामचंद्र
जीका दर्शन कलियुगलीला काशीमहात्म्य)। (२९)रामा
श्रय का लाल्हा)। (३०) सुशीलादेवी)।

-: ओ३म् :-

पतित उद्धारण

आर्य्य (हिन्दू) लोग क्यों मुसलमान हुए ?

वेदों का श्रेष्ठ धर्म व शास्त्रों की पवित्र मर्यादा जिन के निमित्त अद्यावधि भी विरोधी व अनुयायी लोग उन के पवित्रता की गीतें गा रहे हैं, यदि आज तक संसार में विद्यमान रहते वा उस के अनुसार लोग आचार व्यवहार करते रहते तो निश्चय कोई और मत मुंह न दिखलाता और नकोई नैया दीन उत्पन्न होता। वैदिक समय के लाखों घटनाओं में से एक "श्रीरामचन्द्र महाराजजी" का वृत्तांत है, जिन के बातर से सदर्म का प्रकाश चमकता है, और पगर पर सत्यता की झलक आती है। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के परस्पर सच्चे प्रेम से कौन अभिज्ञ नहीं है ? बांधविक प्रेम के सामने वे राज्यको तुच्छ व व्यर्थ जानतेथे रामचन्द्र जी की खड़ाऊंओं को भरत का राज्य सिंहासन पर रख कर रामचन्द्र जी के दास कहला कर १४ वर्ष राज्य

करना क्या संसार में अनुपम दृष्टान्त नहीं है ? और इसी प्रकार रामचन्द्र जी का वनवास से लौटने पर पहिले कैकई के गृह में नमस्कार के निमित्त जाना क्या संसार में कोई दृष्टांत रखता है ? यही आर्यधर्म वा वैदिक धर्म का समय था और उस के पीछे भी बहुत काल पर्यन्त रहा, अनन्तर कौरव पाण्डव का समय आया, पाण्डु के स्वल्प कालिक प्रदत्त राज्य पर दुर्योधन का अधिकार (कबजा) हुआ, घोर युद्ध तक की नौबत पहुंची तब श्रीकृष्णचन्द्र स्वयम् ही समझाने के लिये गये और केवल यह कहा कि सम्पूर्ण आर्य्यावर्त के राज्य में से भाइयों को देहली (इन्द्रप्रस्थ) के निकट पांच गांव (१) पानिपत, (२) सोनपत, (३) बागपत (४) दलपत, (५) करनाल दे देवें कि जिस से झगड़े बखेड़े की नौबत न पहुंचे, तब दुर्योधन ने कहा कि :—

"सूचि अग्रं न दास्यामि विनायुद्धेन केशव"

(अर्थ) हे कृष्ण तुम तो पांच गांव मांगते हो, मैं उनको सुई के अगले नोक के बराबर भी पृथ्वी विनायुद्ध किये न दूंगा।

समय के इस परिवर्तन शीलत्व को देख कर कौन है जिसे शंका होगी कि धर्म की व्यवस्था वैसी की वैसी ही

स्थिर रहेगी, इतना बड़ाभारी परिवर्तन व अन्धेर बहुत आशाओं के मूल पर बिजली गिराता है ॥

भारत के युद्ध के पश्चात् आर्य्यावर्त की अवस्था दिन प्रतिदिन अधःपात होने लगी व्यभिचार के फैलने के कारण राजाओं व राज धर्म की व्यवस्था बहुत ही खराब हो गई और "यथा राजा तथा प्रजा" का होना आवश्यक हुआ यही कारण था कि उन के बुरे आचरणों का प्रभाव राजाओं ही मात्र तक परिमित न रहा। राजगुरु अर्थात् पुरोहित लोगों ने इस में सब से पहिला भाग लिया और तन्त्र शास्त्र की रचना हुई, तथा वाममार्ग का मत बढ़ा गया यथा :—

کفر گیرد کاملے شود "कुफ्र गीरद कामिले शवद"

(अर्थ) यदि पूरा उस्ताद हो तो कुटिलता करे, सारे ब्राह्मण राजपुरोहित के आधीन होते हैं, यही बड़ा भारी कारण था कि वे परवश होने से स्वेच्छा विरुद्ध होते भी चुप रहे या उनके साथी बनगये, और जो लोग चुप हो रहे उन्हीं ने वाममार्ग की प्रवृत्तिमार्ग से विरुद्ध निवृत्तिमार्ग नाम रख सनातनधर्म को पतित होने से बचाया और व्यभिचार के गड्ढे में न गिरने दिया ॥

वाममार्ग के अत्याचार ने बौद्ध धर्म उत्पन्न किया जिस ने वैदिक धर्म को अत्यंत हानि पहुंचाया और संस्कृत विद्या का तिरस्कार हो कर प्राकृतभाषा रची गई, नास्तिक मत का प्रचार और वैदिक मत का संहार होने लगा कि इसी बीच दो सिंह पुरुष पूर्ण विद्वान् धर्म के क्षेत्र (मैदान) में निकल पड़े और शास्त्रार्थ का झण्डा खड़ा किया पहिले का नाम कुमारिल भट्ट वा भट्टाचार्य्य था जिसने वाममार्ग का नाश किया और दूसरे का श्रेष्ठ नाम श्री स्वामी शङ्कराचार्य्य था, जिसने नास्तिकता के वृक्ष पर परशरामी कुठार रक्खा; तथा उसे आर्यावर्त्त के पवित्र भूमि अर्थात् महर्षियों के देश से जड़ पेड़ सहित काट कर समुद्र में गिरा दिया; फिर वैदिक धर्म का प्रचार व शास्त्रोक्त संस्कार होने लगे लाखों पतित लोग जो नास्तिक थे फिर गङ्गा व गोदावरी किनारे यज्ञोपवीत पहिना कर शुद्ध किये गये और नये सिरसे उन में वर्ण व्यवस्था गुण कर्मानुसार स्थापित हुई उस समय शुद्धि का नियम केवल यह था कि हस्तामलक आदि शिष्य स्वामी के आज्ञानुसार एक दो दिन में प्रायश्चित्त करा, गायत्री सिखला, यज्ञोपवीत पहिना कर सभा में ला के शुद्ध कर देते थे, इस से अधिक कोई प्रायश्चित न था,

श्री शङ्कराचार्य्य जी के कई शताब्दियों पश्चात् रामानुज आचार्य हुये, यह वही समय था जब कि मुहम्मदी मत का अरब देश में प्रादुर्भाव हुआ और कुछ दिनों के पश्चात् लूट मार के नियत से जहाद (धार्मिक उमंग) का दावा (प्रतिज्ञा) करते हुये आर्य्यावर्त्त पर आक्रमण करना आरम्भ हुआ अर्थात् ६३६ ई० में अबुल आमिन यमन निवासी ने बम्बई के निकट थाना नगर पर आक्रमण किया, फिर सन् ६६४ ईसवी में महाबल अरब का अमीर काबुल के मार्ग से मुलतान तक आया, फिर सन् ७१२ ईसवी में मुहम्मदबिन कासिम आमिलेहजाज ने सिन्ध पर आक्रमण किया और फिर सन् ९ ईसवी से १०२६ तक महमूद ग़ज़नवी के १७ सत्रह आक्रमण (हमले) हुये, और इसी प्रकार मुहम्मद गोरि, शमसुद्दीन अलतमश, अलाउद्दीन खिलजी, कुतुबुद्दीन, सुलतान मुहम्मद तुगलक, व फ़िरोज़शाह और सन् १३९८ ई० में तैमूरशाह के आक्रमण से सन् १७५७ ईसवीं पर्यन्त जब कि नादिरशाह दुर्रानी का अन्तिम आक्रमण हुआ बराबर हमले होते रहे॥

जिस घोर अत्याचार व निष्ठुरता से उन आततायी लुटेरों ने पीड़ित हिन्दुओं के साथ बर्ताव किया व जैसी

निर्दयता व छल से इन बिचारे दुःखियारों के गर्दनों पर तलवारें चलाईं और अपमान किया उसका समाचार पढ़ने से हृदय कम्पायमान होता है, व कलेजा थरथराता है ॥ (पूरा पूरा हाल देखो रिसाला जहाद) ऐसी अवस्था में सहस्रों में से एक मनुष्य भी कठिनता से मिलेगा जो अत्यन्त असह्य अपमान व मार डाले जाने को भी सहन करले, परंतु दीन मुहम्मदी न स्वीकार करे और सहर्ष पर दृढ़ रहे और आपत्ति पर आपत्ति पड़ने पर भी जो न डिगे जब तलवार के धनी राजपूतों ने राज्य व सम्पत्ति के रहने पर भी साहस हीन हो कलङ्क का टीका लगवा लड़कियां देना स्वीकार कर लिया, जब राना बापा जैसे पुरुष मुसलमानियों के पीछे मुसलमान हो गये और इसी प्रकार सहस्रों राजपूतों ने किसी किसी अभिप्राय से तलवार या अपमान के भय से मुसलमान होना स्वीकार किया ; और कौला देवी व देवल देवी व जोधबाई, जैसी स्त्रियां बलात्कार शाही रणवास में प्रविष्ट की गईं, जब जेबा व जलिया जैसी स्त्रियां बग़दाद में ऊंटों के पांवों से बन्धवा कर मार डाली गईं तो सर्व साधारण की क्या कथा है ? प्रत्येक राजपूत से राना प्रताप व राना सङ्गा व महाराज

सेवाजी के जैसा साहसी हृदय नहीं है, और न प्रत्येक खत्री में हकीकतराय का सा धैर्य है, और जब कि प्रत्येक ब्राह्मण में उन तीन ब्राह्मणों जैसा ब्रह्मतेज नहीं है जिन्हें फ़िरोज़ शाहने, सिकन्दर लोदी औरङ्गजेब ने निज मुहम्मदी मत होने से द्वेष के कारण शाही दरबार के सामने जीवित ही आगमें जलायाथा, और न वैष्णवी बनियों जैसी सब वैश्यों में हिम्मत है फिर तलवार, अपमान, व इसलामी मत के सामने (मुकाबिले) ठहर सकना कितना कठिन काम है ॥

ज़रा एक मिनट के लिये चित्त एकाग्र कर के सोचिये कि आप में कितने ऐसे बहादुर हैं, जो यदि उनके सिर पर तलवार और हाथ में क़ुरान रक्खा जावे तो तलवार को अङ्गीकार करें और क़ुरान से इनकार ?

भाइयो ! ऐसी आपत्तियों के पड़ने से जो बराबर (सन् ६२६ से १७, ५७ ई० तक) ११३१ वर्षों पर्यन्त एक के पीछे एक पड़ती रहीं और जिन का सामना सर्व साधारण के लिये कठिन बरन् असम्भव था, लाखों ब्राह्मण, क्षत्रिय राजपूत, वैश्य, शूद्र सारे हिन्दुस्तान के प्रत्येक भाग में बलात्कार स्वेच्छा रहित भी तलवार के बल से मुसलमान बनाये गए ॥

सुख का साधन न होने से वैदिक शिक्षा सर्वथा लोप हो गई थी, संस्कृत का प्रचार छूट गया था, फिर बतलाइये कि कौन पवित्र वेदों को पढ़ता, पवित्र उपनिषदों का पाठ करता और कौन उन्हें पढ़ कर मुसलमानों के सिद्धान्तों से मिलान करता ऐसे अस्वास्थ अवस्था में अर्थात् सिकन्दर लोधी के समय में हिन्दुओं ने फ़ारसी पढ़ना आरम्भ किया, हिंदुधर्म से अनभिज्ञता शिक्षा की न्यूनता इत्यादि से और "यदि कोई समझाने वाला होता तो वह मारा जाता" इत्यादि कारणों पर ध्यान देने से स्पष्ट ज्ञात होगा, कि फ़ारसी की धार्मिक शिक्षा अपना क्या रङ्ग लावे गी; तद्यथा इस कारण से भी अति कठिन आपत्ति में पड़ कर "न राह मुर्दन न राह बुर्दन" नसीत आवे न पौका छूटे। के अनुसार कष्ट में पड़कर बहुत से हिन्दू मुसलमान हो गये जिन का कुछ भी दोष नहीं था। और जो प्रत्यक्षतः मुसलमान हुये वे मन ही मन में मुहम्मदी मत के कायल (मानने वाले) और रूपवती स्त्रियों पर मोहित हो रहे और अनन्तर वे कुछ पीढ़ियों के पश्चात् खुल्लमखुल्ला मुसलमान हो गये यह दूसरा कारण है ॥

इधर अज्ञाननी व निरपराधी बिचारी हिन्दुओं की

लड़कियां बलात्कार पकड़ी जाती थीं, उधर वेश्याओं के समूह हिन्दु युवा जनों को फंसाने के निमित्त पृथक् ही जाल फैलाये हुए थे, जिन के पेंचदार बन्धन में, जो परिणाम में नर्कप्रद था। भानु, ह्लाद और जगन्नाथ जैसे विद्वान् पण्डित भी फंस गए, तो फिर साधारण अनपढ़ शूद्रों वा मूर्खों का क्या कहना, वह तो पूर्व से ही अभागी हैं, उनके मुसलमान होने में क्या देर थी॥

"मुर्ग़ दिल क्यों न फंसे दाना भी हो दाम भी हो"
(एक कंचन-एक कुचन पर को न पसारे हाथ)

और जब कि वे सुशिक्षिता, कुरान पढ़ी हुई, निमाज़ें जानने वाली और रमज़ान के ३० रोज़े रखने वाली, ईमानदार (धन में अत्यन्त शुद्ध) रहने वाली, सारी कमाई का रुपैया मस्जिदों में व्यय करने वाली, मुहर्रम में शर्बत की छबीलें लगाने वाली, विदुषियें और कवित्व शक्ति युक्ता हों तो उन्हें हिन्दुओं को आकर्षण करने में क्या देर लग सकती है? इसी कारण से दो क्रोड़ से अधिक हिन्दुओं को मुसलमाननी वेश्या रूपी काली नागिनियों ने डस लिये और वे इस प्रकार कामातुर हो कर पतित हो गए। यह

तीसरा कारण है कि जिस से हिन्दु लोग मुसलमान होगए ॥

मुसलमानी पाठशालाओं (मकतबों) के प्रचरित होने से सहस्रों हिन्दु विद्यार्थी सौलवियों की धूर्तता (शरारत) व बहकावट में आकर फिसल गए। यह तो सब पर प्रगट ही है कि गुरु का शिष्य पर कितना अधिकार होता व प्रभाव पड़ता है; यह चतुर्थ कारण है ॥

विधवा हो जाने की अवस्था में हिन्दु स्त्रियों के लिये पुराणों ने दो ही मार्ग दर्शाए हैं, एक तो पति की चिंता के साथमें भस्म हो जाना, दूसरा सारी आयु शोक जनित वस्त्र पहिनती हुई दुःख भोगना। ऐसी शिक्षा के अनुसार लाखों जल कर दग्ध हो गईं। (देखो टाड राजस्थान) परन्तु क्रोड़ों जो कि इस कुकर्म्म से बच गईं उन की अवस्था पर ध्यान दीजिये; निर्वंश होनेकी अवस्था में विधवात्व का समय कठिन है, और कैसा अगम्य पहाड़ लांघना पड़ता है। "जवानी मस्तानी और जवानी दीवानी" की अवस्था मस्त हस्ती के तुल्य है, उस का वेग रोकना सर्वथा कठिन है; सहस्रों शुद्ध चारित्रा सत्वन्तियों के सिवाय, और लाखों स्त्रियोंसे यह कठिनता न सहीगई(क्योंकि उसका सहारना वस्तुतः अति कठिन है) वे लाचार मसलमान कुटनियों की

बहकावट से व स्वयं ही मुसलमान हो गईं; जिस में उन का कुछ भी अपराध नहीं था, यदि दोष था तो बाल्यविवाह कराने वालों का, या टेवा देखने वालों का या काशीनाथ कायस्थ शीघ्रबोध बनाने वाले और उस के अनुयायों का या पुनर्विवाह बन्द कराने वालों का, क्योंकि पराशर जी महाराज ने जिन्हें सारे हिन्दु मानते हैं अपनी स्मृतिमें इस प्रकार लिखा है :—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥

अर्थ—पति खो जाय, मरजाय, साधु होजाय, नपुंसक हो जाय, मुसलमान या किसी और धर्म्म में जा कर किसी और प्रकार से पतित हो जाय, ऐसी अवस्था मे स्त्री को चाहिये कि दूसरा पति कर लेवे ॥

और नारद जी का भी यही कथन है। यदि इस के अनुसार वर्ताव होता रहता तो अभी तक मुसलमानों की इतनी उन्नति न होती व प्रायः दोक्रोड़ से अधिक न बढ़ते और ऐसा ही हुआ है, कि जवान हिन्दु जो किसी विधवा से (नमिलने, कुवारा रहने या सारी आयु रण्डुआ रहने

के कारण) विवाह करना चाहता है और हिन्दु उसे बिरा-
दरी से वाह्य करना चाहते हैं तो वह उस विधवा सहित
मुसलमान होजाता है कि जिस से ताना आदि व्यङ्ग वचनों
को सुनने से बचे रहें; यह पांचवां कारण है॥

जिस प्रकार बौद्ध मत के फैलने से बुद्ध के नास्तिक व
वेद निन्दक होने पर भी पुराणों के निर्माण कर्त्ताओं ने बुद्ध
को अवतार मान लिया, इसी प्रकार हिन्दुओं को हनन
करने व उनकी मानहानि करने पर भी क्रोड़ों मूर्ख हिन्दु
स्त्री पुरुषों ने मुसलमान पीर फकीरों (साधु सन्तों) के
खानकाहों (समाधियों) से अन्धाधुन्ध अभीष्ट कामनायें
मांगना आरम्भ किया और बाल विवाह व ब्रह्मचर्य बिगाड़
ने के कारण प्रायः नपुंसकताने मुंह दिखलाया अतः कबरोंसे
पुत्र मांगने लगे और यह प्रगट है कि कबरों के दिये हुए
या निर्दयी मुसलमानों के प्रदत्त बेटे हिन्दु नहीं रह
सकते एक दो पीढ़ीके पश्चात् अवश्य मुसलमान होजाते हैं॥

मूर्ति पूजा का यह फल होना भी था। क्योंकि
कबर पूजा या मृतकोपासना यह मूर्ति पूजा की दूसरी
बहिन है। मूर्ति पूजा से निराश हिन्दुओं ने जब देखा
कि कबरोपासक मुसलनान इस से बलिष्ट हैं तो मूर्खता

वश उन का अनुकरण करते हुए कबरों से अभीष्ट सिद्धि,
के प्रार्थी हुए। आर्य्यावर्त के प्रत्येक दिशाओं में कबरोंपसना
आरम्भ हुई, बाबा नानक जैसे सत्य प्रेमी के मरने
पश्चात् भी उन के अनुयायों में मूर्ति पूजा व कबरोपासना
के बराबरी में रूड़े साहिब, टाली साहिब, बेरी साहिब
टेहरा साहिब, दुःख भन्जन साहिब, केरा साहिब, बाट
साहिब, हाट साहिब, तोल साहिब, पन्जा साहिब
बाबे की बेर, चूहा साहिब, नियत हुए; जिस से
उनके अनुयायी भी उसी प्रकार मूर्त्ति पूजा में गिर पड़े,
जिस प्रकार अन्य साधारण कबरोंपासक व मूर्त्तिपूजक हैं॥

अतः क्रोड़ों राजपूत, ब्राह्मण, मरहटा, सिक्ख, क्षत्री,
अरोड़े, बनियें और शूद्र, लोग ख्वाजा मुइनुद्दीन पीर
साहिब, लखान का दाता, निगाहेवाला, सरवर, औंढ़ल,
यूसुफ शाह पीराने कलेर, पाकपट्टन, इमामबख्श, शमसुद्दीन
बहादुलहक, स ादेशहीद, दीनपनाह, गाज़ी मुसलमान,
इत्यादि की प्रेतगृहों (कबरों) में मारे २ फिरने व शिर
रगड़ने लगे जिस से प्रतिदिन लाखों मुसलमान होते और
सद्धर्म से पतित हो जाते हैं; यह छठवां कारण मुसलमान
होने का है॥

बहुत से गरीब हिन्दु विवाह न होने के कारण और सारी आयु कुवारेपन को सहन करने की अत्यन्त कठिनता से घबरा कर विवाह के लालच से मुसलमान हो जाते हैं जिनकी संख्या भी किसी अवस्था में एक क्रोड़ से न्यून न होगी और प्रत्येक नगर और ग्रामादि में इस के बहुत से दृष्टान्त विद्यमान हैं; यह सातवां कारण है ॥

जितनी लागत मूर्त्तियों के मन्दिरों पर लगी है उस से कई गुणा बढ़ कर मुसलमानों ने कबरों पर लगाई है और बड़े २ कबरों के गृह प्रेतोपासना निमित्त बना दिये हूं व प्रायः आर्य्यावर्त्त के ५ क्रोड़ मुसलमानों में से ४ क्रोड़ मूर्त्तिपूजक अर्थात् कबरों पासक हैं, और जिस प्रकार यहां ऐसे २ मठ बनाये इसी प्रकार अरबमें भी हैं तद्यथा श्रीमान् मुहम्मद साहिब की कबर पर तीन क्रोड़ रुपये के हीरे और लाल जड़े हुए हैं। इसका नाम मूर्त्तिपूजा नहीं बरन प्रेतगृह (कबर) उपासना है। (अखबार दानापुर से उद्धृत)

उपरोक्त कठिनता, आपत्तियें, दुःख व कष्ट हैं जिन के कारण से सन् ६२६ ई० से १८८० ई० की मानुषी संख्या (मर्दुमशुमारी) पर्य्यन्त ८७३२५४३२ हिन्दु लोग मुसलमान हो गए व उन की सन्तान आर्य्यावर्त्त में विद्यमान हैं ॥

एक उपाख्यान ॥

डेरा इस्माईलखां नगर, में एक शेख यूसुफ़ की खानकाह है जिस से सैकड़ों हिन्दु स्त्री पुरुष इष्ट के प्रार्थी होते हैं, वहां के मुजावर (पुरोहित) प्रथम मुंह पर थूकते फिर जूते लगाते हैं। एक वार डेरा में कुछ हिन्दू मुझ से पूंछने लगे कि वे थूकते तो हैं परन्तु जूते क्यों लगाते हैं। मैंने कहा कि थूकते इस निमित्त हैं कि तुम परमात्मा पारब्रह्मको छोड़ कर कबर पर सिर रगड़ने आये और यतः थूक जल्दी सूख जाती है इस लिये जूते भी लगाते हैं जिस से तुम जल्दी न भूल जाओ ॥

फा०:-"अलहिज़ अयकौम नादां अलहिज़"

अर्थ—सावधान हो! हे मूर्ख जाति सावधान हो!!

यद्यपि मुसलमान हुए १३०० तेरह सौ वर्ष हो भी चुके तथापि अभी तक भी हिदुओं से मुसलमान हुए लोगों में हिन्दुओं की सहस्रों रीतियें (दस्तूरें) पाई जाती हैं ॥

लाखों मुसलमान ब्राह्मणोंसे फेरे फिरवाते और विवाह पढ़वाते और उनको पुरोहित मानते हैं, कण्ठा बान्धते हैं, और हिन्दु मुसलमान दो नाम पृथक रखते हैं और यही अवस्था स्त्रियों की है और प्रायः एक क्रोड़ ऐसे होंगे जो

सर्वथा गोमांस नहीं खाते, लाखों मुसलमान ऐसे हैं जिनको इसलाम मत से सिवाय मट्टी के प्यालों के और कुछ लाभ नहीं हुआ सारे रांघड़ों का यही हाल है॥ (देखो सैय्यद अहमद खां साहिब का व्याख्यान)

लाखों मुसलमान ऐसे हैं जो सिवाय मृतक शव को गाड़ने के और इसलाम के नियमों आदि से सर्वथा न तो अभिज्ञ हैं और न उनके मन्तव्य ही स्वीकार करते हैं। लाखों मुसलमान हिन्दुओं के ज्योतिष पर विश्वास रखते और पण्डितों के शिष्य हैं और जब मिलते हैं उन्हें पालागन या नमस्कार करते हैं॥

लाखों अब तक विवाह शादी में गोत्र बचाते हैं और निकट विवाह कदापि नहीं करते और हिंदुओंसे मुसलमान हुए लोगोंकी बिरादरी से बाहर विवाहादि नहीं करते हैं।

लाखों ऐसे हैं जो चोंटी रखते और नागरी पढ़ते हैं, जैसे मुम्बई के बोहरे और खोजे हैं, जिनके नाम काहनजी, रामजी, शामजी हुआ करते हैं॥

लाखों सच्चे मन से वापस आने को उद्यत हैं, यदि आर्य जाति का कुछ भी इशारा उनको मिले या उन की कोई सहायता करने वाला हो॥

इसलिये हे भाइयो! ऐसे आफ़त के मारों व पीड़ितोंकी शोचनीय दशा पर दयाकरो। उत्साह युक्त उदार चित्त से शास्त्रों पर विचार करो और उन पर कृपा करके परोपकार निमत्त उनको फिर वापस लेने के लिये प्रयत्न करो॥

धर्मशास्त्र के अनुसार आपत्काल का विधान और पतित पुरुषों के लिये प्रायश्चित्त॥

जिस प्रकार वैद्यक शास्त्र आयुर्वेद में सारे शारीरक रोगोंकी औषधि है, उसी प्रकार धर्मशास्त्र में सारे आत्मिक रोगों की औषधि है। सब धर्मशास्त्रों व वैद्यक शास्त्रों का मूल वेद है व यही कारण है, कि वेदों में शरीरिक रोग निवृत्ति के निमित्त ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यस्थ की विधि है और इसी कारण युक्त आहार, विहार का वर्णन किया है कि जिस का अनुवर्तन करने से मनुष्य शारीरिक रोगों से बच सकता है। इसी प्रकार आत्मिक रोगों के निवृत्त करने के लिये वेद ने विद्या, उपासना प्रार्थना, ध्यान, धारना, समाधि योग का विधान किया है, कि जिस से शारीरिक व आत्मिक दोनों प्रकार के आनन्द भोग कर जीव मोक्ष धाम को प्राप्त हो॥

वेदों के पश्चात् राजनैतिक धर्मशास्त्रकार मनु हुए हैं जिनकी स्मृति विद्यमान है। यद्यपि स्मृतियें तो अठारह हैं परन्तु सब में मनुस्मृति ही प्रधान है अर्थात् उसी को श्रेष्ट माना गया है। बृहस्पतिस्मृति में स्पष्ट ही लिखा है, कि:—

वेदार्थोपनिबन्धृत्वात् साधनानि मनोःस्मृतम्।
मन्वर्थ विपरीतातु या स्मृतिः सानशस्यते॥

अर्थ—वेदार्थ के अनुकूल मनुस्मृति सब स्मृतियों की शिरो धार्य है। जो स्मृति मनु के विरुद्ध है वह प्रतिष्ठा योग्य नहीं है॥

जिन बातों को मनु ने प्रायश्चित्त के योग्य लिखा है, यदि (उन बातों का) उनके लेखानुसार प्रायश्चित्त कराया जावे तो प्रायः एक हिन्दू भी आर्यावर्त में ऐसा न निकलेगा जो प्रायश्चित्ती न हो। मनुस्मृति अध्याय। ११। श्लोक ५४ में लिखा है कि :—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्ग नागमाः।
महान्ति पातकान्याहुःसंसर्गश्चापितैःसह॥

अर्थ—ब्रह्महत्या करने वाला, मदिरापान करने वाला, गुरुकी स्त्री से प्रसंग करने वाला यह तीनों महा पातकी हैं

व इन (तीनों) की सङ्गति में रहने वाला भी ऐसा ही है॥ प्रथम व अन्तिम बातों को छोड़ कर मदिरापान करनेवाले इस समय प्रत्येक वर्ण व प्रत्येक कुलीन घरानेमें न्यूनाधिक विद्यमान हैं। और हमारे इस पाञ्चाल देश में तो कई स्थान पर ब्राह्मण मदिरा के ठेकेदार हैं बरन मदिरा के दुकानों पर फुटकर बिक्री भी करते हैं। शूद्र तो फिर भला किस गिनती में हैं। और वाममार्ग के अनुयायियों को तो चाहे किसी ही जात में हों, अवश्य ही मदिरा पान करनी पड़ती है। मांस खाने वाले भी जिसे धर्म्मशास्त्र में अति-निन्दनीय कर्म लिखा है, आर्यावर्त के प्रत्येक भाग में विशेषतः पञ्जाब, काश्मीर, बंगाल, मैथिल व मध्य देश में लाखों हैं। यदि कोई धार्मिक राजा मनु अ०११ श्लोक ९१। के अनुसार दण्ड देनेलगे तो कदाचित् इस देश की मानुषी संख्या आधी हो जावे। परन्तु साथ ही शास्त्र यहभी कहता है कि जब राजा आर्य्य धर्म्मानुकूल न हो तो वह आपत् काल है, आपत्काल के लिये यह भी विधि है॥

"आपत्काले मर्यादा नास्ति"

अर्थात् आपत्काल में कोई मर्यादा नहीं जो होसके की जिस प्रकार हो सके अपने धर्म को स्थिर रक्खे और यह

अवस्था काबुल, गांधार, गज़नी, हिरात, बिलोचस्तिान, खिलात, तिब्बत्, काश्मीर, बुखारा, जनोवा, बूशहर, बशरा, सिकन्द्रिया, निटाल, अदन, जावा और बाटी, जापान, माल्टा, हाङ्गकाङ्ग, व जङ्गबार के हिंदुओं का है। कि वे अपने आप को हिन्दु कहते ही हैं, परन्त् धर्म्म की कोई भी साची उन के पास नहीं। अत: क्या हम उन को धर्म से च्युत समझें? नहीं कदापी नहीं! क्योंकि धैर्य्य व साहस में हम से बढ़ कर हैं, और उनको श्रद्धा भी हम से अधिक हैं, और हिन्दु धर्म्म से जितना उन का प्रेम है उस की कोई गणना नहीं हो सकती परन्तु वे आपत्काल में हैं, इस कारण से बेवश व लाचार हैं॥

हमारे ऋषि मुनि इस बात से अनभिज्ञ नहीं थे, वे दूर दर्शी थे व अपनी दूरदर्शी विज्ञान शक्ति से इस बात को जानते थे अतएव उन्हीं ने इस विषय पर विचार भी कियाहै (देखो मनुस्मृति अ० १० श्लोक ८१ से १३० पर्यन्त)

तद्यथा, श्लोक १०६ में लिखा है कि धर्म्म व अधर्म्म के जानने वाले "वामदेव" ने चुधा से पीड़ित हो कर कुत्ते का मांस खा लिया परन्तु वह पतित न हुआ॥

(श्लोक १०७) भूख से लाचार "भरद्वाज" ऋषि महा

तपस्वी ने एक घने जङ्गल में अपने लड़के सहित एक नीच से दान लिया॥

(श्लोक १०८) भूखसे अत्यन्त चुधातुर धर्म्म अधर्म्म के तत्व को जानने वाले ऋषि "विश्वामित्र" ने एक चाण्डाल से कुत्ते की टांगें खाने के लिये लीं॥

प्रेमसे ग्रस्त रामचन्द्रजी ने भीलनी शूद्रा वरन् अतिशूद्रा के जूठे बेर खाए और प्रेम से ग्रस्त कृष्ण महाराज ने कुब्जा मालिन के घर का भोजन पाया॥

रामानुज के उपदेश से कबीर व कमाल आदि मुसलमान वैदिक धर्मानुयायी हो गए,और लाखों हिन्दु अब इन मुसलमान साधुओं को अपना परम पूज्य वा अगुआ मानते हैं॥

चैतन्य स्वामी बङ्गाल वाले के उपदेशसे भी कई जन्म के मुसलमान वैदिक धर्म के अनुयायी हुए व बराबर बङ्गालियों में उन का बर्ताव होता रहा॥

मनुष्य का मुरदा खाने वाले अघोरी साधुओं के भी कई हिन्दु चेले हैं जिनके साथ सारे हिन्दु बर्ताव करते हैं।

मनुजी ने एक स्थानपर लिखाहै (अ० १० श्लो० १०४) जो मनुष्य प्राणों की रचा के लिये किसी नीच जाती का

अन्न खालेता है वह अन्तरिक्ष के सदृश पाप लिप्त नहीं होता ॥

मनुस्मृति में लिखा है, कि यदि गोहत्या आदि करे तो तीन मास में शुद्ध होताहै। देखो अ० १० श्लो० ६० व ११६

और मनुस्मृति अ० १० श्लो० ४६ में लिखा है, कि बिना इच्छा अर्थात् बलात्कार किया हुआ पाप वेद के अभ्यास से दूर होजाता है, परन्तु जो इच्छा से पाप किया जावे तो धर्म से उस का प्रायश्चित्त् है ॥

बड़े से बड़ा ऐसा कोई भी पाप नहीं है जिस का धर्म शास्त्र में प्रायश्चित्त् न कहा हो, अथवा प्राचीन काल में न होता रहा हो और जब कि उन के लिये प्रायश्चित्त् है तो जो लोग आपत्काल के मारे तीक्ष्ण शस्त्र (तलवार) के भय से मुसलमान हो गये या अपनी मान बड़ाई के लिये मुसलमान हो गये कि जिस से उन की स्त्रियों का पतिव्रत धर्म नष्ट न हो, तो वे केवल गायत्री के जप से ही शुद्ध हो जाते हैं।

जन्म के मुसलमानों, ईसायों, यहूदियों, जैनियों, या बौद्धों के लिये शास्त्र ने स्पष्ट बतलाया है कि वे बिना

कामना के प्रवेश करते हैं इस लिये वे केवल गायत्री मंत्र से या अग्नि होत्र से शुद्ध हो कर आर्य धर्म में प्रवेश कर सकते हैं जैसा कि स्वामी शङ्कराचार्य ने सहस्रों बौद्धों को केवल गायत्री का जप कराकर शुद्ध कर लिया था, उसी प्रकार होना चाहिये ॥

अब रहे स्वयं मुसलमान या ईसाई आदि होकर शुद्धि की अभिलाषा रखने वाले; सो उन के लिये शास्त्र कहता है कि देश काल पात्र देख कर प्रायश्चित्त् करा कर शुद्ध कर के आर्य जाति में मिलाओ ॥

शास्त्रों में लिखा है कि सावित्री के जाप करने से ब्रह्म हत्या व गो हत्या का पाप छूट जाता है ॥

गायत्री मन्त्र सब से पवित्र है इसी लिये इस विषय में सब की एक मती है कि इस से नाना प्रकार के पाप छूट जाते हैं। तो क्या मुहम्मदी, ईसाई या बौद्ध शुद्ध नहीं हो सकते ? अवश्य होसकते हैं ॥

प्रायश्चित करा कर शुद्ध करने की विधि ॥

आज तक आर्य समाजों में लग भग एक सहस्र मुहम्मदी व ईसाई आदि पतित लोग शुद्ध किये गये परन्तु किसी विशेष व्यवस्था के विद्यमान न होने से प्रत्येक स्थान

पर कठिनता पड़ती है। अमृतसर, रावलपिण्डी, लाहौर पेशावर, गुजरांवाला, लुध्याना की समाजें जितना अधिक उत्साह व धर्मभाव से इस कार्य में तत्पर रहीं, उतना ही अधिक वे धन्य वाद के योग्य हैं। आर्य समाजों ने जितना ही अधिक यह धार्म्मिक सेवा की, उतना ही अधिक वैदिक धर्म्म के गौरव को सत्कार करने वाले होते गये॥

किसी पतित को शुद्ध करने के लिये सब से प्रथम यह आवश्यक है कि उस के हृदय के मन्तव्य शुद्ध किये जावें और उसे सद्धर्म की श्रेष्ठता जहां तक वह समझ सकता हो बतलाई जावे। अन्यथा किसी विशेष प्रकार के स्नान भोज्य वस्तु अथवा किसी अङ्ग के कटवाने, दासत्व की चिन्ह लगाने या दासत्व का विशेष वस्त्र पहिनने से कोई भी शुद्ध नहीं हो सकता॥

पौराणिक लोग गोबर खिला, गङ्गा जी भेज वा और वहां के भङ्गियों से जूते लगवा कर और ब्रह्मभोज करवा करके हिन्दु धर्म्म से पतित लोगों को शुद्ध करते हैं॥

स्वर्ग वासी महाराजा रणबीर सिंह जम्बू व काश्मीराधिपति ने इस कठिन दण्ड को बहुत धन व्यय कर के सरल कर दिया था तथा यह व्यवस्था प्रचरित की थी कि

संख्या १ व ३ आवश्यक नहीं व सं० २ व ४ ही मात्र शुद्धि के लिये पुष्कल हैं, तदनुसार कई हिन्दु पवित्र किये गये। सिक्ख लोग यद्यपि साधारणतः शुद्धि के विरोधी हैं परन्तु उन में से कुछ महाशय मिश्री या बताशे का सर्बत घोल कर उस में लोहा रगड़ कर पिलाते हैं और ऊपर से शूकर का मांस खिलाते और कुछ शर्बत की उस के शिर में डालते व कुछ मुंह व आंखों पर डाल कर शुद्ध करते हैं, और बहुत से जूते भी उसे झाड़ने पड़ते हैं। परन्तु यह पक्षपात युक्त कार्यवाही कई २ कट्टर मुल्लाओं के उन कार्य वाहियों से कदापि अधिक नहीं हो सकती, जो वे हिन्दुओं के साथ या सिक्खों के साथ जब कि उन को मुसलमान बनाते हैं किया करते हैं; जिस से मन दुःखित करने के सिवाय और कोई पवित्रता प्रगट नहीं होती। परन्तु क्या गोबर या शूकर का मांस, भङ्गियों के जूते अथवा साधारणतः सब के जूते, पीड़ित दीन गाय का मांस, *खतना, वा ईसायों का चिल्लू भर पानी इत्यादि मस्तिष्क या अन्तःकरण की राई

---

* जो मुसलमानों का एक के संस्कारों में से है, विशेष करके लिङ्ग इन्द्रिय की खलड़ी कटवाना है॥

के बराबर भी शुद्ध कर सकते हैं ? भक्त कबीर जी ने सच कहा है :—

ओह जावें मक्के, ते ओह जावें काशी ।
कहै कबीर दुहां गल फासी ॥
ओह पूजें मढ़ियां, ते ओह पूजें गोरां ।
कहे कबीर दोये लुट लिये चोरां ॥

फिर दूसरी जगह कबीर जी कहते हैं :—

इन झटका उन बिस्मिल कीनी ।
दया दुहां थी भागी ॥
कहे कबीर सुनो भाई साधो ।
आग दुहां घर लागी ॥

और यही कारण है कि पञ्जाब में साधारण हिन्दुओं की अपेक्षा सिक्ख लोग यद्यपि मनुष्य गणना के अनुसार वे बहुत थोड़े भी हैं, तो भी अधिकता से मुसलमान हुए व हो रहे हैं और इसी प्रकार पहाड़ी डोगरे राजपूत और सूअर का मांस खानेवाले भी यही लोग हैं । हमारे हिन्दु भाईओं को कदाचित् ज्ञात नहीं है कि महम्मदी दीन में

(१) सूअर का मांस खाने (२) जूआ खेलने, (३) मदिरा पीने, (४) व्यभिचार करने से अधिक पाप अन्य कोई पाप नहीं माना गया, यद्यपि हिन्दुस्तान, रूम, अरब, अफ़गानिस्तान, ईरान आदि में क्रोड़ों मुसल्मान संख्या दो से चार तक के पाप कर्मों में लिप्त हैं । और फिर यह भी नहीं ज्ञात होता कि मुरगा, सूअर व भेड़ जैसे घृणास्पद तामसी पशुओं के खाने से क्या आत्मिक पवित्रता प्राप्त हो सकती है ? ॥

बाबा नानक जी जो कि सिक्ख मत के आदि कर्त्ता हैं वे सब प्रकार के मांस व विशेषत: सूअर के मांस को हराम (अभक्ष्य) मानते थे, और मदिरा को भी ऐसा ही जानते थे तथा एक निर्पक्ष पुस्तक कर्त्ता, जिस के रचित पुस्तक को सब लोग प्रतिष्ठा करते हैं, और जिसकी सिक्खों के पांचवें गुरु श्री गुरु अर्जुनदेव जी से अत्यन्त मित्रता थी लिखता है ।

"نانک قایل بتوحید باری بود و تناسخ نیز ایمان داشت و خمر و
گوشت وخوک را حرام شمرده ترک حیوانی کرده با جتناب آزار
حیوان امر نموده بود و گوشت خوردن بعد از و در مریدانش شهرت

یافت وارجن مل کہ از خلفائے بواسطہ اوست چوں منع آنرا دریافت
ازاکل حیوانی مانع آمدو گفت ایں عمل مرضی نانک نیست "

फ़ारसी–नानक क़ायल व तौहीद बारी बूद व तनासुख़ नीज ईमां दास्त व ख़मरो गोस्त व ख़ोकराहराम समर्दा तर्क हैवानी कर्दा व बइस्तना बआज़ार हैवां अम्र मीफ़रमूद व गोस्त खुरदन बाद अज़ व दर मुरीदानश शोहरत याफ़्त व अर्जुनमल कि अज़ ख़लफ़य बवास्ता ओस्त चूं क़बह आरां दरियाफ़्त अज़ अक्ले हैवाने मानः आमद व गुफ़्त ईं अमल मरज़ी नानकनेस्त".

(दबिस्तान मज़ाहब तालीम दोयम सफा २२३)

अर्थ—नानक ईश्वर को अद्वितीय मानता था, और आवागमन के सिद्धान्त का विश्वासी था व मांस तथा सूअर को अभक्ष्य समझ कर पशुओं को छोड़ कर पशुओं को दुःख देने से बचने की आज्ञा देता था। और मांस खाने का प्रचार उनके शिष्यों में पीछे से पड़ा। और अर्जुनदेव ने जिस के

साथ ख़लीफ़ों का कुछ सम्बन्ध है जब इस बुराई को प्र-
न्वेषण किया तो स्वार्थपरायण बुद्धि इस की रुकावट हुई।
तथा कहा कि यह व्यवहार नानक की अभिलाषा के अनुसार
नहीं है (देखो दबिस्ताने मज़ाहब तालीम दोयम पृष्ठ २२३)

शुद्धि का ठीक २ नियम वही है जिस नियम से बाबा
नानक ने मरदाने को शुद्ध किया अर्थात् परमेश्वर की भक्ति
वैदिक रीति अनुसार सिखलाकर, न कि सुअर आदि का मांस
खिला कर। और सबसे अधिक भूलकर हमारे भाईयों की यह
है कि वे ईसाईयों को भी इसी भ्रम युक्त रीति से शुद्ध करते
हैं अर्थात् सुअर का मांस खिला कर। शायद उन्हें ज्ञात नहीं
है, कि ईसाई मत सुअर को अभक्ष्य नहीं मानते बल्कि
लोग अच्छी प्रकार इसको खाते हैं। व सुअर ही
क्या! इन के मत में तो सारे पशु भक्ष्य हैं॥

अतः ठीक व यथार्थ पतित पावन या पतितउद्धारण की
रीति वही है जो सच्छास्त्रों में लिखी है जिस के अनुसार
सनातन धर्म (पवित्र वेद) अनुयायीयों का कर्तव्य है, कि
वह सारे अन्य मतों में पतित मनुष्यों को शुद्ध करके
सत्य सनातन आर्य्य धर्म के अनुयायी बनावें॥

शुद्धि व्यवस्था ॥

१-जन्म से पतितों के लिये प्रायश्चित ।

उनको प्रथम अच्छी प्रकार कई दिनों तक सद्धर्म का तत्व बतला कर अन्य धर्म्मों का रङ्ग उन के हृदय रूपी दर्पण पर से पृथक् कर देना चाहिये, जब अच्छी प्रकार उस के चित्त में निश्चय हो जावे तो उसे सन्ध्या गायत्री अर्थ सहित सिखला कर व वैदिक रीति से उसका नाम करण संस्कार कराके यदि वह यज्ञोपवीत संस्कार के योग्य भी हो तो यज्ञोपवीत करा के सब रीतियें समझाने के पश्चात् सभा में शुद्ध कर देना चाहिये अर्थात् गुण कर्म्म नुसार किसी वर्ण में मिला लेना चाहिये ॥

२-बलात्कार व (जबरदस्ती) लाचारीसे भ्रष्ट हुए लोगों का प्रायश्चित ॥

जब अच्छे प्रकार निश्चय हो जाय कि वह परवश में पड़ बलात्कार वे किसी अनुचित दबाव से अन्य मत (मजहब) में प्रवेश हो गया था तो उसे बिना रोक टोक अति हर्ष पूर्वक सत्कार पूर्वक मिला लेना चाहिये । उस के

निमित्त केवल उसका आ जाना ही पुष्कल है । किसी और प्रायश्चित या दण्ड की आवश्यकता नहीं ॥

३-अपनी प्रसन्नतासे धन स्त्री के प्रेम यापुस्तकों के अवलोकन से पतित होनेवाले का प्रायश्चित

जितने वर्षों तक अन्य मत में रहा हो उतने सप्ताह व जितने महीने रहा हो उतने दिन व जितने दिन रहा हो उतने घण्टे उसकी परीक्षा करके जब अच्छी प्रकार निश्चय हो जावे कि वह फिर पतित नहीं होगा व उसकी श्रद्धा भी अधिक ज्ञात हो व सम्बन्ध भी टूट गया हो या पतित करने वाली स्त्री भी उस के साथ ही वापस आना चाहती हो, तो एक सप्ताह साधारण व्रत रखवा कर शिखा रखवाने व नाम बदलवाने के पश्चात् सब उपस्थित सज्जनों को विनय व प्रार्थना करानेकेपश्चात् उसमतके दोष व सद्धर्म का गौरव अच्छी प्रकार समझा कर हवन कराके उसे मिला लना चाहिये व उसके सहचारिणी को भी यदि वह किसी वेश्या के प्रेम में पतित हुआ हो तो उस से यथाशक्ति कुछ दण्ड लेना चाहिये नहीं तो किसी धार्मिक सोसायटी (सभा) अर्थात् आर्यसमाज आदि में उससे योग्यसेवा लेनी चाहिये

और यदि कोई मनुष्य एक वार प्रायश्चित् कराने पर फिर भी दैवयोग से किसी कुसंग में पड़ कर पतित हो जावे तो दोबारा उस से दुगुना दण्ड लिया जाय और दुगनी सावधानि की आवश्यकता है ॥

नोट—शुद्धिपत्र से पूर्व उस से पतित होने के विषयमें विस्तार पूर्वक समाचारों सहित प्रार्थनापत्र लिया जावे और फिर शुद्ध करके उसको एक शुद्धिपत्रिका निम्न प्रकार की दी जावे जिसकी एक नकल समाजमें स्मर्णार्थ रक्खी रहे ॥

॥ ओ३म् ॥

शुद्धिपत्रिका ।

आज तिथि···मास···शुदि या वदि···संवत् विक्रमी या ता०···मास···सन्···ई० को सब वृतान्त अच्छी प्रकार जांच लेने के पश्चात् नाम·········पिता का नाम········· जाति···निवास स्थान············आयु···वाले को धर्मशास्त्र मनु व मिताचरा अध्याय·········श्लोक·········के अनुसार शुद्ध कर के आर्य धर्म में संमिलित किया गया है, इसे अब इस से घृणा (परहेज) नहीं रही, यह सब प्रकार से हम में संमिलित है इस से कोई घृणा न करे, इसने सब के सामने

·········मत से घृणा प्रगट करके उस से पश्चाताप किया इस कारण सारे उपस्थित निम्न लिखित महाशयों के सामने शुद्ध किया गया है ।

ह०मन्त्री·················ह० प्रधान···············

बाहर की विक्रियार्थ आई पुस्तकें ।

भास्कर प्रताश अर्थात् दयानन्द तिमरभाष्कर का उत्तर प्रथम भाग ।≁) द्वितीय भाग ॥) चतुर्थ भागा ॥) विदुरनीती भाषा टीका ।≠) श्वेताश्वतरोपनिद् ।≢) चित्रविद्या अर्थात् फोटोग्राफी १·) उर्दू में दो भाग १) पांचसौव्यापार १) उर्दू में १) चिकित्सासिन्धु २) विश्वकर्मा प्रकाश म् १।) हारमोनियमगाईड १भाग ।≠) दूसराभाग ।≠) उर्दूमें ॥) वीरेन्द्र वीर अथवा कटोरा भर खून ॥≠) जया ॥) खेतीविद्या के मुख्य सिद्धान्त ॥≠) श्रीछत्रपतिशिवजी महाराज का जीवन चरित्र ।) स्वधर्मरक्षा ।) आर्यसमाज परिचय ।) वदांतप्रदीप ॥) स्त्री धर्मनीति १) बुद्धिमती ।≠) भामनी भूषण ।) आर्यसंगीत-पुष्पावली जिल्द वाली ॥) उर्दू ॥) सभाप्रश्न ।) उर्दू ≢)॥ बहारेनरंग १ भाग ≠) तीसिय भाग ।) सत्यहरिश्चन्द्र नाटक ।≠) नीलदेवी नाटक ≢)

ईला ॥⁄) मीला ॥⁄) फलित ज्योतिष परीचा ⁄) बाईबल की पोल ⁄) ब्रह्मकीर्तन)॥ कौर्य वर्णन)॥ धर्म्मप्रचार)॥ शिचावली)॥ शिचाध्याय)॥। संस्कृत प्रथम श्रेणी: ⁄) आर्यभाषा की प्रथम पुस्तक ⁄) द्वितीय ⁄)॥ तृतीय ।) शान्तिसरोवर ⁄)। ब्रह्मयज्ञ ॥) नारीभूषण ।⁄) संस्कृतभाषा की प्रथम पुस्तक)॥ द्वितीय ⁄)। तृतीय ⁄)॥ चतुर्थ ॥) वैदिक देव पूजा ⁄) ईश्वर और उसकी प्राप्ति ⁄) मुक्ति और पुनर्जन्म ⁄)॥ सत्यार्थप्रकाश संग्रह ⁄) चाणक्यनीति संग्रह ⁄)। सांख्यदर्शन भाषा टीका ॥।) वैशेषिकदर्शन भाषा टीका १।) नारायणीशिचा दोनों भाग १।) वीर्यरचा ⁄)॥ गर्भाधान विधि ⁄)॥ सत्यनारायण की प्राचीन कथा ⁄) ओ३म् पीतल के ⁄) गिलट ⁄) गायत्री मन्त्र अर्थ सहित)॥

हमारे पास श्री स्वामी दयानन्द महाराज जी कृत, पं० लेखराम जी कृत, पं० भीमसेन जी कृत, पं० तुलसीराम जी कृत, आदि महाशयों की भी पुस्तकें हैं ॥

ब्रह्मानन्द सरस्वती-प्रबन्धकर्त्ता वैदिक पुस्तक प्रचारक हाल लाहौर गुमटी बाजार ॥

शिवलिङ्गपूजाविधान

शिवपुराणके अनुसार

पुस्तक सं० १८

पं० रामविलास मिश्र मन्त्री आर्यसमाज
शाहाबाद ज़ि० हरदोई अनुवादित.

॥ दोहा ॥

पूजा शिवके लिङ्गकी, जेहि विधि भई प्रचार ।
यहि पुस्तकमें सो लिखी, शिवपुराण अनुसार ॥

श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वती स्थापित
"वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड" द्वारा
प्रकाशित
पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक वेदप्रकाश
के प्रबन्धसे उनके स्वामियन्त्रालय
मेरठमें मुद्रित
आर्य्य संवत् १९७२९४८९९९ एप्रिल ९७ ई०
प्रथम बार २०००] [मूल्य)॥ एक पैसा

ओ३म्

शिवलिङ्गपूजाविधान ।

कालचक्रने ऐसा पलटा खाया है और अविद्याने वह दिवस दिखाया है कि लोगोंको शत्रु मित्रका भी ज्ञान न रहा, जो कुछ स्वार्थीजनोंने धर्मकी आड़में उनसे कहा, वह उसीको ईश्वरवाक्य मान बैठे। चाहो वह उनकी प्रतिष्ठा खोदे, दीन ईमान बिगाड़दे और उनको संसारमें मुख दिखाने योग्य न रक्खै। पवित्र वेद जैसे सब संसारमें सच्चे व सबसे प्राचीन धर्मको भूल शत्रुओंके बनाये हुये कल्पित और गबरगंडसे भरे हुये गप्प १८ पुराणोंको अपना धर्म मान लिया, इतना ही नहीं किन्तु उनकी प्रतिष्ठा व मान उससे भी अधिक कर दिया। इससे अधिक खेदकी और क्या बात होगी॥

"शिव" जो ईश्वरका पवित्र नाम है, उसके लिये व्यभिचारियोंने वह २ क़िस्से कहानी जोड़ दिये हैं कि जिनका वर्णन करते लज्जा आती है, लिखते हुये लेखनी थर्राती है परन्तु आजकल थोड़ेसे कुबुद्धि मुफ़्तख़ोर अपनी रोटी जाती देख इस प्रकाशके समयमें भी इस आडम्बरको स्थिर रखना चाहते हैं; केवल यही नहीं किन्तु वेदा-

नुयायियोंको कलङ्की व अधर्मी बताते हैं, अतः सर्वसाधारणकी जानकारीके लिये हम शिवपुराणके श्लोक अनुवाद सहित पाठकोंकी भेंट करते हैं इसलिये कि सत्य और असत्यको परखैं, और ऐसे गपोड़ोंको छोड़ें॥

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ४२

पुरा दारुवने जातं यद्वृत्तन्तु द्विजन्मनाम् ।
तदेव श्रूयतां सम्यक् कथयामि यथाश्रुतम् ।५।
दारु नाम वनं श्रेष्ठं तत्रासन्नृषिसत्तमाः ।
शिवभक्ताः सदा नित्यं शिवध्यानपरायणाः ।६।
त्रिकालं शिवपूजाश्च कुर्वन्ति स्म निरन्तरम् ।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्देवं मन्त्रैर्वा ऋषिसत्तमाः ॥७॥
एवं सेवां प्रकुर्वन्तो ध्यानमार्गपरायणाः ।
ते कदाचिद्वने याताः समिदाहरणाय च ।८।
एतस्मिन्नन्तरे साक्षाच्छङ्करो नीललोहितः ।
विरूपश्च समास्थाय परीक्षार्थं समागतः ॥९॥
दिगम्बरोऽतितेजस्वी भूतिभूषणभूषितः ।

चेष्टाश्चैव कटाक्षश्च हस्ते लिङ्गञ्च धारयन् ।१०।
मनांसि मोहयन् स्त्रीणामाजगाम हरःस्वयम् ।
तं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्यस्ताः परं त्रासमुपागताः।११।

अर्थ–प्राचीन कालमें दारु वनमें द्विजोंका जो वृत्तान्त हुवा उसे हमने जैसा सुना है वर्णन करते हैं ॥५॥ एक दारु नाम सुन्दर वन था तहां ऋषियोंका वास था वे शिवके बड़े भक्त थे सदा उसीके ध्यानमें रहते ॥६॥ नाना भांतिके स्तोत्रों व मन्त्रोंसे त्रिकाल शिवजीका पूजन किया करते और ध्यानमें लगे रहते थे ॥७॥ एक दिन ऋषिजन वनमें लकड़ियां लेनेको गये ॥८॥ तब शिवजी परीक्षा के अर्थ नीलवर्णमिलित रक्तके सदृश शरीर किये, बुरा रूप बनाये ॥९॥ नङ्गे, तेजधारण किये हुये, *लिङ्ग हाथ में लिये ॥१०॥ स्त्रियोंके हृदयको लुभाते हुये उस वनमें आये जहां ऋषि रहते थे, उनको देख ऋषिपत्नियां भयभीत हुईं ॥११॥

*क्या इससे बढ़के निर्लज्जताका कोई काम हो सक्ता है, ऐसा काम तो अघोरी किया करते हैं।

नोट–प्रिय पाठक गण ! देखा कि जिस वर्णनका नाम इन्होंने ज्ञानसंहिता रक्खा है वह महाअज्ञानसंहिता है, क्या इससे भी अधिक कोई बुराईकी बात हो सक्ती है कि परमात्मा जो महान् पवित्र है और काम क्रोधादि दुर्गुणोंसे रहित है, वह ऐसा असभ्य स्वांग भर अपने उन भक्तोंकी स्त्रियोंके सङ्ग (जो उसे मानते थे, मानते ही नहीं किन्तु रात्रि दिवस उसे पूजते थे) ऐसी अनुचित कार्य्यवाही करे, जो एक वन्यपुरुष भी नहीं कर सक्ता। अतः हमारी सन्ततिमें यह सारा कलङ्क वाममार्गियोंका है, जिन्होंने निज पातकोंका उत्तर बनानेके अर्थ शिवजीके माथे यह दोष लगाया, और वैसा ही उनका स्वरूप वर्णन किया। हम कदापि विश्वास नहीं कर सक्ते कि व्यास, जिनकी बुद्धि वेदान्तादि पुस्तकोंसे झलकती है ऐसी निर्लज्ज पुस्तक बनायें। जैसे इस समय होलीके भड़ुवे महात्मा कबीरका नाम धर बहुत सी व्यर्थ बातें बना लेते हैं, वैसे ही वेदधर्मके शत्रुओंने महर्षि व्यासका नाम रख शिवपुराणादि रच लिये हैं। ऐसा कौन सपूत भारत सन्तान होगा, जिसको अपने पिता शिव पर यह कलङ्क

देख लज्जा न आयेगी ॥

विह्वला विस्मिताश्चैव समाजग्मुस्तथा पुनः ।
आलिलिङ्गुस्तदा चान्याः करं धृत्वा तथापराः॥१२
परस्परन्तु संहर्षाद्गतश्चैव द्विजन्मनाम् ।
एतस्मिन्नेव समये ऋषिवर्य्याः समागमन् ॥१३॥
विरुद्धं वृत्तकं दृष्ट्वा दुःखिताः क्रोधमूर्च्छिताः ।
तदा दुःखमनुप्राप्ताः कोऽयं कोऽयं तथाऽब्रुवन्१४
यदा च नोक्तवान् किञ्चित् तदा ते परमर्षयः ।
ऊचुस्तं पुरुषं ते वै विरुद्धं क्रियते त्वया ॥१५॥
त्वदीयश्चैव लिङ्गञ्च पततां पृथिवीतले ।
इत्युक्ते तु तदा तैस्तु लिङ्गञ्च पतितं क्षणात् ॥१६॥

अर्थ—वे स्त्रियां घबराईं व आश्चर्य्यित हुईं परन्तु फिर आये पुरुषको देख हर्षसे वह ऋषियोंकी स्त्रियां हाथमें हाथ मिला आपुसमें *आलिङ्गन करने लगीं ॥१२॥ इतने

*विचारे ऋषियोंकी स्त्रियों पर भी कलङ्क लगा दिया क्या ऋषिपत्नियां ऐसी ही होती हैं ? ।

में ऋषि लोग आगये ॥१३॥ और महादेवजीके अनुचित व्यवहारको देख दुःखी हुये, क्रोधसे विक्षिप्त हो कहने लगे "यह कौन है,, ॥१४॥ जब शिवजी कुछ न बोले, तब ऋषियोंने शाप दिया कि "तुमने बुरा कर्म किया ॥१५॥ तुम्हारा लिङ्ग कटके गिर पड़े,, इतना कहते ही तुरंत पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥

नोट—हमें इसपर नोट लगाते लज्जा आती है न्यायप्रिय पाठक स्वयम् समझ लें। हे पौराणिक भाइयो ! क्या आप ऐसे गपोड़ोंको वेदोंका ज्ञान बताते हैं, आपकी व आपके चेलोंकी बुद्धि प्रशंसनीय है ॥

तल्लिङ्गञ्चाग्निवत् सद्य ददाह यत् पुरःस्थितम् ।
यत्र यत्र च तद्याति तत्र तत्र दहेत् पुनः ॥१७॥
पाताले च गतं तच्च स्वर्गे चापि तथैव च ।
भूमौ सर्वत्र तद्भ्रान्तं कुत्रापि तत् स्थितं न हि १८
लोकाश्च व्याकुला जाता ऋषयस्तेऽपि दुःखिताः ।
न शर्म्म लेभिरे क्वापि देवाश्च ऋषयस्तथा॥१९॥
ते सर्व्वे च तदा देवा ऋषयो ये च दुःखिताः ।

न ज्ञातश्च शिवो यैस्तु ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥२०॥
तत्र गत्वा तु तत् सर्व्वं कथितं ब्रह्मणे तदा ।
ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा प्रोवाच ऋषिसत्तमान् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ज्ञातारश्च भवन्तो वै कुर्व्वन्ति गर्हितं पुनः ।
अज्ञातारो यदा कुर्य्युः किं पुनः कथ्यते तदा ॥२२॥
विरुध्यैव शिवं देवाः कुशलं कः समीहते ।
गृहे समागतं दूरादतिथिं यः परामृषेत् ॥२३॥
तस्यैव सुकृतं नीत्वा स्वीयञ्च दुष्कृतं पुनः ।
संस्थाप्य चातिथिर्य्याति किं पुनःशिव एव च २४
यावल्लिङ्गं स्थिरं नैव जगतां त्रितये शुभम् ।
जायते न तदा क्वापि सत्यमेतद्वदाम्यहम् ॥२५॥
भवद्भिश्च तथा कार्य्यं यथा स्वास्थ्यं भवेदिह ।
इत्युक्तास्ते प्रणम्योचुः किं कार्य्यं तत् समादिश ॥
इत्युक्तश्च तदा ब्रह्मा तान् प्रोवाच तदा स्वयम् ।

आराध्य गिरिजां देवीं प्रार्थयध्वं शुभां तदा ॥२७॥
योनिरूपं भवेच्चेद्वै तदा तत् स्थिरतां भजेत् ।
तदा प्रसन्नां तां दृष्ट्वा तदेवं कुरुते पुनः ॥२८॥

अर्थ–उस लिङ्गने उन सब पदार्थोंको जो उसके सन्मुख थे, * अग्निकी नाईं भस्म कर दिया। जहां २ वह लिङ्ग गया वहां २ वैसे ही जलाता चला गया ॥१७॥ पाताल स्वर्ग पृथ्वी आदि सब स्थान जलाता, †उछलता, कूदता किसी स्थान पर स्थित न हुआ ॥१८॥ तब सब जन विकल होगये, और वे ऋषि भी दुःखी हुये, कहीं पर ऋषियों व देवताओंको सुख न मिला ॥१९॥ तब वे देवता व ऋषि जो दुःखी होरहे थे, और जिन्होंने शिवजी को नहीं §पहचाना था, सब ब्रह्माके पास गये ॥ २० ॥ और सब हाल ब्रह्मासे कहा। ब्रह्मा उनके वचन सुनके

* शिवलिङ्ग क्या था बला था।
† इसने तो . . . . को भी मात किया।
§पौराणिक भाइयो! तुम तो देवताओंको अन्तर्यामी बताते हो और तुम्हारा पुराण ना समझे।

बोला कि ॥२१॥ तुमने जानें बूझके *दुष्कर्म किया, अब जो †अज्ञानसे कुकार्य्य करै, उसको क्या कहा जावे ॥२२॥ हे देवताओ ! शिवजीको क्रोधित करके कौन सुखी रह सकता है ॥ २३ ॥ जो दूरसे आये हुयेका अतिथिसत्कार नहीं करता, उसके जितने सुकर्म हैं, उनको तो वह ले-जाता है, और अपने किये दुष्कर्मोंको छोड़ जाता है । तिसपर शिवजीसे अतिथिका अपमान करना थोड़ी बात नहीं ॥२४॥ देखो जबलों यह लिङ्ग स्थिर न होगा, तबलौं जगत्में कहीं पर सुख न होगा । यह मैं सत्य कहता हूं ॥२५॥ अब तुमको ऐसा करना चाहिये, जिससे यह लिङ्ग स्थिर हो । यह ब्रह्माने उनसे कहा, तब वह ऋषिगण ब्रह्माको दण्डवत् कर बोले कि अब हमें क्या करना चाहिये, आप बताइये ॥२६॥ तब ब्रह्मा बोले कि तुम पार्वतीका भजन

* वाह २ अपनी स्त्रियोंका धर्म बचाना दुष्कर्म हुआ क्या वे उनको भ्रष्ट होने देते ।

† पहले तो लिखा जानते बूझते, और अब कहा अज्ञानसे । झूंठेको स्मरण शक्ति नहीं होती ।

करके उसकी स्तुति करो ॥२७॥ जब पार्वती योनिके सदृश होजाय तब तुम इस लिङ्गको उसमें डाल देना ॥२८॥

नोट—उक्त श्लोकोंमें जैसी कुछ अश्लील व सभ्यताविरुद्ध बातें लिखी हुई हैं, वह सब पर प्रकाशित हैं, हम अधिक नोट चढ़ाना नहीं चाहते, और धर्मसभाके सहायकों और महामण्डल वालोंका ध्यान आकर्षित करते हैं कि लज्जित होवो ॥

एवं कृते च स्वास्थ्यं वै भविष्यति न संशयः
इत्युक्तास्ते तदा देवाः प्रणिपत्य पितामहम्।३७।
शिवस्थं शरणं गत्वा प्रार्थितः शङ्करस्तदा ।
पूजितः परया भक्त्या प्रसन्नः शङ्करस्तदा।३८।
पार्व्वतीञ्च विना न्यान्या लिङ्गं धारयितुं क्षमा ।
तया धृतञ्च शान्तिश्च गमिष्यति न संशयः।३९।
गृहीत्वा चैव ब्रह्माणं गिरिजा प्रार्थिता तदा ।
प्रसन्नां गिरिजां कृत्वा वृषभध्वजमेव च।४०।

पूर्वोक्तञ्च विधिं कृत्वा स्थापितं लिङ्गमुत्तमम् ।
मन्त्रोक्तेन विधानेन देवैश्च ऋषिभिस्तदा ।४१।

अर्थ—प्रथम उसे प्रसन्न करो, ऐसा करने से अवश्य यह लिङ्ग स्थिर होजायगा, और जगत्में स्वस्थता हो जायगी । जब ब्रह्माने ऐसा कहा, तो वे ऋषिजन उसको प्रणाम करके ॥३७॥ शिव जी के पास गये । बड़ी भक्तिसे प्रार्थना की और पूजन किया । जब शिव जी प्रसन्न हुये ॥३८॥ तो बोले, कि पार्वतीके अतिरिक्त इस लिङ्गके धारनेकी शक्ति अन्य किसीमें नहीं है जब वह इसे धारण करेगी तो यह शान्त हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं ॥३९॥ तब उन ऋषियोंने ब्रह्माको सङ्ग ले पार्वतीके निकट जाके प्रार्थना की और शिवको भी प्रसन्न करके ॥ ४० ॥ विधिपूर्वक देवता व ऋषिओंने मन्त्र पढ़के उस उत्तम लिङ्ग को पार्वतीमें स्थापित किया (तबसे ही लिङ्गपूजा चली) ॥

नोट—यह श्लोक ऐसे अश्लील हैं कि हमें नोट लगाते लज्जा आती है, पर इतना अवश्य लिखे देते हैं कि संसार

में ऐसा कोई मत नहीं है कि जिसने ऐसी व्यर्थ बातों को उचित रक्खा हो । हबशी जो सबसे मूर्ख गिने जाते हैं, वह भी कदापि निज माता पिताके लिये ऐसी कहावत नहीं मानते, जैसी कि शिवपुराण वालोंने अपनी माता पार्वती व पिता शिवके अर्थ गढ़ी हैं । प्यारे हिन्दुओ ! तनिक न्याय दृष्टिसे देखो, कि ऐसी सभ्यताविरुद्ध अश्लील बातोंको मानके क्या आप अन्य मतावलम्बियोंको अपना मुख दिखा सक्ते हैं ? कदापि नहीं । प्यारो ! अब तो चेतो और इन निरर्थक बातोंको त्यागो । इसी कारण सहस्त्रों हिन्दू ईसाई व मुसलमान होगये व होजायंगे जो आप कामी व भोजनभट्टोंकी बातें मानेंगे । प्रियवरो ! आप केवल वैदिक धर्मको मानों और इनको त्यागो । लोग तुम्हें बहुत बहकायंगे, फुसलायंगे, तुम्हारी हंसी उड़ायंगे पर याद रक्खो कि सत्य सत्य ही है और इनका कहना केवल रोटीके अर्थ है, न धर्मके निमित्त । हम ऐसेही धूर्तपनकी और भी धूलि उड़ावेंगे ॥

शिवके ठीक २ अर्थ लीजिये "शिवु, कल्याणे, इस धातुसे शिव शब्द सिद्ध होता है ।

"बहुलमेतन्निदर्शनम्" इससे शिवु धातु माना जाता है। जो कल्याणस्वरूप और कल्याण करनेवाला है उसी को शिव कहते हैं। और यह गुण एक परमात्मा ही के हैं, अतः शिव नाम उस निर्विकार ज्योतिःस्वरूपका है ॥

फल—परमानन्द व मुक्ति चाहनेवाले ऐसे कामी और ऐसेकुरूपकी उपासना व ध्यान करना तो एक ओर उसे देखना भी नहीं चाहते। यह तो होलीके होलियारोंके योग्य है। धन्य हैं वे, जो सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्माके ध्यानमें निमग्न रह सदा कल्याणके भागी होते हैं ॥

लिङ्गपुराणसे पूर्व बुद्धदेव हो चुके थे, जिसको प्रायः लोग बौद्धावतार कहते हैं, (शिवपुराण पूर्वार्द्धखण्ड अध्याय ५ श्लोक ३ से ९ तक)

परन्तु इतिहासवेत्ताओंने जयस्तम्भ अथवा स्तूपों और बौद्ध मन्दिरों और आर्य्यावर्त्त, लङ्का, ब्रह्मा, चीन और तिब्बतकी पुस्तकों और अजायबघरकी मूर्त्तियोंसे सिद्ध किया है कि बुद्ध विक्रमीय संवत् से ६१४ वर्ष पूर्व हुये थे और ८० वर्षकी आयुमें उनका देहान्त हो गया था जिसको सं० १९५१ विक्र० तक २५६५ वर्ष होते हैं और व्यासजीको

४९९४ वर्ष हुये हैं अर्थात् बुद्ध ४२९ वर्ष व्यासजीसे पीछे हुये हैं अतएव व्यासजी पुराणोंके कर्त्ता नहीं हो सकते।

२—रामानुज विक्रमकी १२ वीं शताब्दीमें हुये थे, इस में सब इतिहासवेत्ताओंकी सम्मति है, और रामानुजने वैष्णवमत चलाकर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मसे लोगोंको चक्राङ्कित बनाया, परन्तु वैष्णवमतका खण्डन लिङ्गपुराण में है।

शङ्खचक्रे तापयित्वा यस्य देहः प्रदह्यते।
सजीवन्मृतकस्त्याज्यः सर्वधर्मबहिष्कृतः।१।

अर्थ—जिसके शरीर पर तपाकर शङ्ख, चक्रकी छापें लगाई गई हैं वह जीतेजी मुर्दा और सर्व धर्मोंसे पतित के समान त्यागने योग्य है।

इससे स्पष्ट है कि रामानुजके मतके पीछे उसका खण्डन लिङ्गपुराणमें हुआ "प्राप्तौ सत्यामिषेधः" अर्थात् जो वस्तु है, उसका ही निषेध होता है, और लिङ्गपुराणका नाम १८ पुराणोंमें है, रामानुज विक्रमकी १२ वीं शताब्दीमें हुये थे अर्थात् आज तक उनके हुये ७५१ वर्ष

होते हैं और व्यासजी का जैसा द्वापर कहा है ४९९५ वर्ष हुये हैं अतएव व्याससे रामानुज ४२४६ वर्ष पीछे भये, इस लिये व्यास लिङ्गपुराणके कर्त्ता नहीं हो सक्ते हैं। (और लिङ्गपुराण शिवपुराणसे भिन्न नहीं)। इति ॥

—*—

वैदिकपु०प्र०फण्डसे छपी पुस्तकोंका सूचीपत्र॥

पुरुषसूक्त अर्थसहित)॥ ईसाईमत संसारमें कैसे फैला)॥ महाशङ्कावली)। नीतिशिक्षावली)। रामायणका आल्हा)। सुशीलादेवी)। ईसाईमतलीला)। ईसाईमतखण्डन)। १ला भाग)। दूसराभाग)। नित्यकर्मविधिः)। श्रीरामजीकादर्शन, कलियुगलीला और काशीमहात्म्य)। स्वामीशङ्करानंन्दके अनमोल उपदेश, पुराणकिसने बनाये, अमेरिकानिवासी मि० डेविसके आर्य्यसमाज और स्वामीदया० सरस्वती महाराज पर विचार, ये पुस्तकें आधे २ पैसे की हैं।

विना गुरुके संस्कृत सिखाने वाले पुस्तक—संस्कृतकी प्रथम पुस्तक)॥ द्वितीय -)। तृतीय =)॥ नालिकाविष्कार)॥ शास्त्रार्थनिर्णय =) प्रश्नोत्तररत्नमाला -)

पता—स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामी प्रेस मेरठ

ओ३म् परमात्मने नमः

मनुष्यजन्मकी सफलता

श्रीमान् ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी महाराजका एक व्याख्यान जो ता० १५।७।९४ को बम्बईमें दिया था उसे एक आर्य्यपथिकने गुजरातीसे अनुवाद किया।

पुस्तक सं० १९

श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वती स्थापित "वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड" द्वारा प्रकाशित

पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक वेदप्रकाश के प्रबन्धसे उनके स्वामियन्त्रालय मेरठमें मुद्रित

आर्य्य संवत् १९७२९४९९९ । सन् ९७ ई०

प्रथम वार २०००] [मूल्य)॥ दो पैसा

सीताचरित्र हिन्दी प्रथम भाग ॥) इस पुस्तक में पर स्पर स्त्रियोंकी बात चीतमें स्त्रीधर्म्म तथा शिक्षाका उपदेश है पुस्तक बड़ा उत्तम हैं।

प्रेमोदयभजनावली मू० ≡) यह पुस्तक बा० रामकिशोरजीकी बनाई है। इसमें जो २ ग़ज़ल ठुमरी आदि वेश्या गाती हैं उसी ध्वनि पर भक्ति वैराग्य आदिके भजन हैं।

भजनामृतसरोवर =) सङ्गीतरत्नाकर =) ये पुस्तक बलदेवसिंह सवारने बड़े २ उत्तम राग, भक्ति, वैराग्य, देशोन्नति के बनाये हैं पुस्तक बड़ी उत्तम हैं दूसरी बार छपी हैं।

लेखदीपिका मू० ।) इसमें नीति, धर्म, शिक्षा आदि के बड़े उत्तम २ लेख हैं जो मिडिलके विद्यार्थियोंको लेख लिखने को बड़ी उपयोगी है।

दमयन्तीस्वयंवरनाटक मू० ≡) यह नाटक हिन्दीप्रदीप के एडीटरने नैषध काव्य से बनाया है। नाटककी भाषा बड़ी उत्तम है।

श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती महाराजकृत पुस्तकें सत्यार्थप्रकाश सिल्क वाला २।) इत्यादि अन्य पुस्तक भी मिलें गे। धर्म्मवीर पं० लेखरामजीकृत—सबूततनासुख १।) तकज़ीबबुराहिन एहमदिया १।) आदि और भी।

पता—स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामि प्रेस मेरठ

ओ३म् तत्सत् परमात्मने नमः।

मनुष्यजन्मकी सफलता।

ता० १५ जुलाई सन् १८९४ ईसवी के दिन फरामजी कावसजी इन्स्टीट्यूट में रावबहादुर आनरेबल जस्टिस महादेव गोविन्द रानडेके सभापतित्व में ब्रह्मचारी नित्यानन्दजी महाराजने "मनुष्यजन्मकी सफलता" पर एक व्याख्यान दिया, वह निम्नलिखित है॥

आजका मेरा विषय "मनुष्य जन्मकी सफलता" है। यह सफलता मनुष्यको किस रीतिसे प्राप्त होवे इस विषयमें मुझे आज विवेचन करना है। मनुष्यकी प्रकृति अनेक प्रकारकी हैं, परन्तु इस जगत्में सर्व मनुष्यजाति का विद्वान् और अविद्वान् ऐसे दो भागमें समावेश हो सकता है। अविद्वान् लोग रेलवेके इंजनकी गति अनुसार चलने वाले हैं, उनमें सारासार विचारका अभाव होता है। इञ्जन केवल चलना ही जानता है, अमुक स्थान पर कौनसा निश्चित स्थान है यह लखनऊ है या बरेली, इस विषयका उसको लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है। तद्वत् अविचारी मनुष्योंका वर्ताव होता है, वे "गतानुगति-

कता " के अनुसार खान पानमें निमग्न रहकर अपना सब आयु निरर्थक व्यतीत करते हैं। "हमारा क्या कर्त्तव्य है अथवा हमारा जन्मलाभ क्या है " इस विषयमें उन को यत्किञ्चित् ज्ञान या भान नहीं होता। अपना क्या कर्तव्य है यह मनुष्यमात्रको जानना चाहिये। अथर्व वेद में लिखा है कि "यथा अहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् " जैसे दिवस रात्री वैसे ऋतु एकके पश्चात् दूसरी अनुक्रमसे आती हैं तद्वत्! हे मनुष्य तू अपना कर्तव्य कर, तुम अपना कर्तव्य अहर्निश नियत समय पर करो। जैसे स्कूलके विद्वान् शिक्षक एशियाखण्ड की भूगोलकी शिक्षा देते समय प्रथम अपने शिष्योंको उसका सामान्यज्ञान देते हैं, उसके पश्चात् प्रत्येक देश और उसका विशेष ज्ञानका बोध कराते हैं और उसका उत्तम रीतिसे ज्ञान उसके मनमें बैठाने के लिये जैसे नक्शेकी सहायता लेते हैं क्योंकि पुस्तक द्वारा उत्तम ज्ञान होना सम्भव नहीं है तद्वत् वेदरूपी पुस्तक और सृष्टिरूपी नक्शाके आधारसे मनुष्यका कर्तव्य क्या है यह परम कृपालु परमेश्वरने हम सबोंको बताया है वह आप

महाशयोंके समक्ष आज मैं यथाशक्ति निवेदन करता हूं ॥

जिस पृथ्वी पर हम लोग निवास करते हैं वह अपना कर्तव्य करनेमें कभी चूकती नहीं है। प्रति दिवस चौबीस घण्टेमें वह एक बेर अपने आस पास फिरती है और प्रति वर्षमें एक बेर सूर्य्यकी प्रदक्षिणा करती है। अप्, तेज, वायु, आकाश, सूर्य्य, चन्द्र इत्यादि भी अपने कार्य्यसे च्युत नहीं होते। जड़ वस्तुके विषय पर कुछ न कह कर हिलने चलने वाले प्राणीके प्रति लक्ष देवेंगे तो ज्ञात होजायगा कि वे भी अपना २ कर्तव्य योग्य रीत्यनुसार कर रहे हैं तद्वत् हमारी इन्द्रियां भी अपना कर्तव्य यथानियम पालन करती हैं। इस ब्रह्माण्डमें ऐसी एक भी वस्तु दृष्टिपथमें नहीं आती है कि जो अपना कर्तव्य न करती होवे, तब सर्वमें श्रेष्ठ और ज्ञानी ऐसा जो मनुष्य, वह जो अपना कर्तव्य भूल, व्यर्थ भाररूप हो जावे तो वह कितना दुःखद और संतापजनक होवे ? ॥

"कर्तव्य" यह विषय बड़ा विस्तृत है। हमारा कर्तव्य अनेकधा है; परन्तु आत्मरक्षण, जीविका, सन्तान रक्षण, समाजसंस्था, मनोरञ्जन, और धर्म व ईश्वरोपासना,

ऐसे उसका छः भागमें समावेश होता है। इस विषयमें आप महाशयोंके आगे सूक्ष्म रीतिसे विवेचन करता हूं, कारण आप सर्व बहुश्रुत और विद्वान् हैं ॥

हमारे ऋषिवर्य्य अत्रि महाराजने चरक नाम ग्रन्थमें दिखाया है कि " प्राणैषणा धनैषणा परलोकैषणेति आसान्तु खल्वैषणानां प्राणैषणा तावत् पूर्वतरमापद्यते कस्मात्प्राणपरित्यागे हि सर्व परित्यागः "

अर्थ-प्रत्येक मनुष्यको प्राणकी, धनकी, और परलोककी ऐसी तीन प्रकारकी इच्छा होती है, इनमें से प्राणैषणा मुख्य है क्योंकि प्राणके त्याग पर सबका त्याग होजाता है। प्राणका रक्षण करना यह मनुष्यका प्रथम कर्त्तव्य है। धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष इन चारोंकी प्राप्ति ही मनुष्यजन्मकी सफलता है वह केवल प्राणको अवलम्बन कर रही है। जो शारीरिक प्रकृति ठीक न होवे तो इसमें का कोई भी बन नहीं पड़ता इसी लिये आत्मरक्षण मनुष्यका प्रथम कर्त्तव्यकर्म है। प्रत्येक मनुष्यको शारीरिक प्रकृति नीरोग रखने के लिये आरोग्य सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है, परन्तु इस प्रकारका ज्ञान

प्राप्त करके तदनुसार अपने शरीरका रक्षण करने वाले इस देशमें सम्प्रति कितने मिलेंगे ? उष्णकालमें जब अतिशय तृषा लगती है उसे मिटानेके लिये सारासारका विचार किये विना गट २ बहुत पानी पीके शरीर बिगाड़नेवाले हमारे देशमें थोड़े न मिलेंगे। नियम विरुद्ध चलकर अपना आरोग्य विगाड़नेवालोंके अनेक उदाहरण मिल जायेंगे ॥

इस देशमें मंजूरी कर दीनतासे, अति दुःखसे अपना और अपने कुटुम्बका यथायोग्य संरक्षण न करने वाले कुछ न्यून नहीं है। दिनमें मेहनत मंजूरी करके दो तीन आने पैदा करनेवाले अपने बाल बच्चोंका और अपना पोषण जब यथोचित नहीं कर सक्ते तब वे दुःखी जीव एक मन भर अन्न तीन कोस लेजानेकी शक्ति न हो तथापि उदरनिमित्त दो मन अन्न छः कोस ले जाके अपनी प्रकृति बिगाड़ते हैं और शीघ्र मृत्युके पंजेमें फंस जाते हैं॥

अब मध्यम श्रेणीके मनुष्योंकी स्थिति देखिये। इनको प्रातःकाल नव बजे नौकरी पर हाजिर रहना पड़ता है दस २ बारह २ घण्टे तक काम करना पड़ता है

तब उन्हें निर्वाहयोग्य दस पन्द्रह रुपैयेका वेतन मिलता है। काम कर २ के बीमार होते हैं परन्तु वे बिचारे क्या करें? खानेको तो प्रति दिन प्रातः और सायङ्कालको चाहिये ही। इस प्रकारके मध्यम श्रेणीके मनुष्योंकी दुःखात्मक स्थिति है। बड़े विद्वानोंकी स्थिति तो और ही प्रकारकी है बी० ए०, एम० ए०, एल० एल० बी० इत्यादि उपाधि प्राप्त करनेको उनको अतिश्रम करना पड़ता है पश्चात् उनको उत्तम नौकरी या रोज़गार प्राप्त होता है, परन्तु शरीरसे बिचारे क्षीण होजाते हैं अतएव उनसे विशेष परिश्रम हो नहीं सक्ता। खाली लोगोंको आडम्बर दिखानेके लिये वे गाड़ी घोड़े पर सवार होके फिरते हैं और आनन्द प्राप्त करते हैं। उनको देखके स्कूलके विद्यार्थी ऐसी लालसा करते हैं कि हम भी बी० ए०, एम० ए० होवें तो ऐसा सुख और चैन हमें भी प्राप्त होवे इसलिये वे अतिश्रम करके और शारीरिक आरोग्य का रक्षण विना किये विद्याध्ययन करते हैं और इसके अतिरिक्त स्कूल और कालेजमें फ़िलासफ़ी आदि गहन विषय सीखने के लिये मस्तिष्क ख़ाली करना पड़-

ता है तब वह ध्यानमें रह सक्ता है। और घरकी पीड़ा तो अलग ही रही। स्वतः तो दुर्बल और घरमें सोलह सतरह वर्षकी उनकी स्त्री होती है वहां भी घर संसार संभालना चाहिये, वह भी एक दुःखमें दुःख बढ़ाने वाला होजाता है। बड़े परिश्रमसे एकाध परीक्षा पारङ्गत हुये पश्चात् नौकरी प्राप्त करनेकी उत्सुकता, उसमें भी सुबध पर निष्फलता प्राप्त होती है। अब शरीरका क्या दोष? मन बिगड़ता है, आंखें भीतर घुस जाती हैं और अन्न भी ठीक पाचन नहीं होता। अन्तमें वे बिचारे जलदी यमदेवके शरण पहुच जाते हैं। मनुष्यकी जन्म मृत्युकी रिपोर्टसे ज्ञात हुआ है कि दूसरे मनुष्योंसे ग़रीब बिचारे ग्राज्युएट जलदी मरते हैं। वे जलदी मृत्युको प्राप्त होवें ऐसी ईश्वरकी उनपर कुछ अकृपा है क्या? ऐसे होने का कारण यही है कि उनके ऊपर शिक्षण आदिका बड़ा भारी बोझ आगिरता है॥

अपने शरीरकी प्रकृति नीरोग रखने के लिये बहुत न्यून मनुष्य इस विषय पर विचार करते हैं, हरेक मनुष्य को वैद्यक सम्बन्धी थोड़ा बहुत ज्ञान होना चाहिये। आ-

श्विनमें करेले खानेसे पित्तकी वृद्धि होती है और कार्त्तिक में दही खानेसे ज्वरादि प्राप्त होते हैं, इस लिये अमुक ऋतुमें अमुक वस्तु सेवन करने से प्रकृति नीरोगी रहे ये तत्सम्बन्धी ज्ञान प्रत्येक मनुष्यको होना चाहिये। विशेष करके व्याधि उपाधिका मूल हमारा प्रमाद ही है। व्याधि-ग्रस्त हुए पश्चात् औषधोपचार करने को कितनी हानि होती है? अत्यन्त प्यारे पुत्र कलत्र वे अच्छे नहीं प्रतीत होते, कार्य्यकी भ्रंशता, उपयोगी समयका नाश, औषधोपचार सम्बन्धी व्यय, घरकी सर्वमण्डलीकी चिन्तातुर दशा, डाक्टर लोगोंकी खुशामद इत्यादि ऐसी २ अनेक आपत्ति आ पड़ती हैं कि एक बेर प्रकृति बिगड़ी वह पूर्ववत् कालत्रयमें नहीं होती। पतञ्जलि ऋषिने योग-शास्त्र में लिखा है कि "हेयं दुःखमनागतम्" अर्थात् प्रत्येक मनष्यको ऐसा प्रयत्न करना योग्य है कि भविष्य में दुःख न हो जावे। सबसे प्रथम कर्त्तव्य शरीर संरक्षण है। व्याधि होनेसे पूर्व ही सर्व महाशयोंको सावधान रहना चाहिये, हमें क्या अन्न कैसा होना चाहिये इस विषयमें हमारे भाइयोंको कुछ भी बोध नहीं है यह क्या थोड़ी

लज्जाकी बात है?।

मनुष्यकी साधारण आयुर्मर्यादा १०० वर्षकी है "शतं जीवेम शरदः शतम्" ऐसा वेदमें वर्णन किया है और "त्र्यायुषं जमदग्नेः" इत्यादि प्रमाण है। योगाभ्यासके बलसे ३०० वर्ष पर्य्यन्त मनुष्य जी सक्ते हैं, परन्तु साम्प्रत कालमें १००० में १० मनुष्य बड़े भाग्यसे १०० वर्ष तक जीते मिलेंगे। इसका मुख्य कारण यह है कि हमलोग ब्रह्मचर्य्य, आचरण, खान, पान प्रत्येक पर सर्वथा (बिलकुल) लक्ष्य नहीं देते। मनुष्य "आत्मरक्षण क्या है" इसे यथार्थ जानते होवें और शास्त्राधारसे चलें तो सौ वर्ष पर्य्यन्त सहज में जी सकें॥

हमारा दूसरा कर्त्तव्य "जीविका" है। शरीरका पोषण करने के लिये मनुष्यको कुछ न कुछ उद्यम करना चाहिये, उद्यम विना किसी का भी निर्वाह नहीं होता। सर्व मनुष्य उद्योग करते हैं परन्तु यह योग्य है या नहीं इस विषयमें बहुत ही न्यून लक्ष्य देते हैं। बहुत से प्रारब्ध को पकड़ के बैठने वाले होते हैं। हिन्दू, ईसाई और मुसलमान इत्यादि विजातीय लोगोंके प्रारब्धको मानने

में मतभेद है, हम लोग अपने पूर्वजन्मोपार्जित कर्म्मको प्रारब्ध समझते हैं और वे लोग खुदाकी (ईश्वर की) इच्छाको प्रारब्ध मानते हैं। जो २ फलप्राप्ति हमको होती है वह सर्व पूर्वजन्मकर्म्मानुसार है ऐसा हमारा मानना है। परन्तु विना उद्यम प्रारब्धमात्रसे ही फलप्राप्ति नहीं होती। महाभारत शान्ति पर्व अ०३२१ श्लोक ३२ में लिखा है किः—

यथा क्षेत्रं मृदूभूतमद्भिराप्लावितं तथा।
जनयत्यङ्कुरं कर्म नृणां तद्वत्पुनर्भवः ॥

पूर्वजन्मका फल बीज रूप है उस बीजको उद्यम रूपी भूमिमें बोया न होवे किन्तु सन्दूकमें बांध रखा होवे तो क्या उसके फल प्राप्त होंगे? उसको योग्य स्थानमें बोया होवे, उत्तम खात डाला होवे, जल सिञ्चन किया होवे तो पश्चात् फलकी आशा रखी जावे। प्रकाश और दृष्टि इस उभयके संयोगसे वस्तु दृष्टिगोचर हो सक्ती है, केवल प्रकाश या केवल दृष्टिसे ईप्सित फलप्राप्ति नहीं होती। तद्वत् उद्योग और प्रारब्धके संयोगसे फलप्राप्ति समझनी। केवल प्रारब्धसे कोई फल नहीं मिलता।

उद्योगको विशेष प्राधान्य दिया है महाभारतके वनपर्व अ० ३२ में व्यास मुनिने कहा है किः—

यश्च दिष्टपरो लोके यश्चापि हठवादिकः।
उभावपि शठावेतौ कर्म्मबुद्धिः प्रशस्यते ॥
यो हि दिष्टमुपासीनो निर्विचेष्टः सुखं शयेत्।
अवसीदेत्स दुर्बुद्धिरामे घट इवोदकम् ॥२॥

अर्थ—जो पुरुष प्रारब्ध पर सर्व विश्वास रख उद्योग नहीं करता और स्वस्थ बैठा रहता है उसका नाश होता है। संसारमें प्रारब्धको अवलम्बन करके बैठनेवाले और "यद्भावि तद्भवति" ऐसा कहनेवाले मूर्ख होते हैं। उद्योगके सिवाय सर्व व्यर्थ है। उद्योग विषय बुद्धि रखने वाले पुरुष श्रेष्ठ होते हैं। इस प्रसंग पर जिस मकानमें एकत्र हुवे हैं वह कुछ स्वतः प्रारब्धसे निर्माण नहीं हुवा है, जब अनेक पुरुषोंने अनेक प्रकारका उद्योग किया तब यह मन्दिर अस्तित्वमें आया है। उद्योगसे क्या कार्य्य होता है और प्रारब्ध पर विश्वास रखनेसे मनुष्य

कैसी स्थितिको पहुंचता है? यह इंग्लैण्ड और हमारे इस आर्य्यावर्त्त देशकी स्थिति देखनेसे सहजमें ज्ञात होजायगा। देखो शुक्रनीतिमें कहा है कि :-

धीमन्तो वन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत्।
अशक्ताः पौरुषं कर्त्तुं क्लीबा दैवमुपासते ॥

अर्थ-जिनका चरित्र वन्दनीय है ऐसे महात्मा उद्योग को ही श्रेष्ठ मानते हैं उद्योगको न माननेवाले ऐसे जो नपुंसक वे प्रारब्धको चिल्लाते हैं और उद्योगको नहीं करते। विष्णुशर्माने पञ्चतन्त्रमें कहा है :-

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन देय-
मिति कापुरुषा वदन्ति। दैवं निहत्य कुरु पौ-
रुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति
कोऽत्रदोषः ॥

अर्थ-सिंहके सदृश जो उद्योगी पुरुष होता है उसी को लक्ष्मी अर्थात् धन मिलता है और जो कायर पुरुष होते हैं वे केवल प्रारब्ध २ ही पुकारा करते हैं उनके हाथ कुछ भी नहीं आता, वे आजन्म दरिद्र ही बने रहते हैं।

उद्योग करे पश्चात् "यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः" ऐसा ग्रन्थकर्त्ताका वचन है इसका अर्थ हमारे बड़े २ उपाधि धारण करने वाले ऐसा करते हैं कि यत्न करे पश्चात् जब कार्य्यसिद्धि नहीं होती तब उसमें हमारा क्या दोष? जितना हमसे भया उतना किया, अब हमारा कुछ दोष नहीं है। परन्तु ऐसा अर्थ करने में ये लोग बड़ी भूल करते हैं। कविका कथन इन लोगोंके कथनानुसार नहीं है किन्तु "कोऽत्र दोषः" अर्थात् "यत्ने को दोषः" अर्थात् यत्नमें क्या न्यूनता रही है जिससे कार्य्यसिद्धि नहीं होती। हमारे लिये क्या सर्वशक्तिमान् ईश्वरको उद्योग करना चाहिये? हमको जिस रोटीकी सदा आवश्यकता है क्या उसे ईश्वर बना देगा? ईश्वरका कार्य्य पृथ्वी आदि सृष्टि की सर्व वस्तु सृजनेका है और वह उसने किया है, करता भी है। जीवका कार्य्य जीवको ही करना चाहिये। ईश्वर देगा तो हम खायंगे यह कहना कैसा भूल भरा हुवा है। उद्योग अनेक प्रकार का है जिसको जैसा अच्छा लगे वैसा करना। संक्षेपसे शरीरका जिससे संरक्षण होवे ऐसा उद्योग सर्व मनुष्योंको करना चाहिये ॥

प्रत्येक मनुष्यको ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करके कमसे कम २५ वर्ष पर्य्यन्त विद्याध्ययन करना। पश्चात् धनोपार्जन करके स्वसम्पादित द्रव्यसे विवाह करना। ऐसी प्राचीन कालकी पद्धति थी। साम्प्रत समयमें बहुत जेन्टिलमैन धर्म्म छोड़ द्रव्योपार्जन करने लगे हैं। धर्म्म त्याग कर अधिक धन मिलता होवे तो भी वह कर्म्म सहसा न करना चाहिये। जिस धर्म्मसे परिणाममें दुःख प्राप्त हो वह सत्यधर्म ही नहीं। ऐसे धर्मका त्याग ही करना चाहिये। जिस धर्म्मसे अपना हित होवे उसीको धर्म्म कहना और वास्तविक रीतिसे वही धर्म्म है। सम्प्रति सात २ आठ २ वर्षके अज्ञान बालकोंका, की लग्न क्या है? वह किस उपयोगमें आता है, इस विषयका विचार भी नहीं कर सकते वैसोंका विवाह कर देते हैं यह कितना खेदकारक है?।

राजपुतानामें एक उत्तम गृहस्थके घर लग्न समारंभ था, वह मैंने स्वतः देखा है। लग्नमें वर पांच छः वर्षकी वयका था। लग्नका मुहूर्त रात्रीको था उससे वर कन्याको निद्रा आने लगी, इससे उनको एक तरफ़ सुला

दिया। फेरे फिरनेके पूर्वकी सर्व विधि पुरोहित महाराजने पूर्ण की थी। अब फेरा तो वरको ही फिरना चाहिये तब वरका पिता वरके पास आ उसे उठाने लगा और कहा कि भाई! उठ, अब फेरे खानेका समय आया है। परन्तु उस विचारेको फेरा कैसे खाये जाते हैं क्या ख़बर! उस लड़केके मनमें ऐसा आया कि मेरा पिता फेरा अर्थात् पेड़ा खानेको मुझे उठाता है। वह बोला पिताजी! मुझे नींद आती है, मुझे पेड़े नहीं खाने, मुझे भूख नहीं लगी। वरका एक चार पांच वर्षका छोटा भाई जो पास सोया था वह बोला, पिताजी! चलो मैं आता हूं, मुझे भूख लगी है, मुझे पेड़ा खाना है। तात्पर्य्य इतना है कि लग्न जैसी उत्तम विधिका यथायोग्य पालन नहीं होता॥

मैं तेरे सिवा कुछ भी नहीं करूंगी। तेरे सिवाय अन्यपतिमें चित्ताकर्षण नहीं होने दूंगी। इत्यादि प्रतिज्ञा वधूको लग्न समय करनी पड़ती है, तद्वत्–तेरी सम्मति बिना "धर्मे च अर्थे च कामे च नातिचरामि,, इत्यादि प्रतिज्ञा वरको करनी पड़ती है। अथर्व वेदके १४वें काण्डमें लग्न सम्बन्धी विषय पूर्ण रीतिसे वर्णन किया है।

सम्प्रति जितनी प्रतिज्ञा करनी होती है उसे केवल पुरोहित गुनगुना जाते हैं। वरको या वधूको तत्सम्बन्धी लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता। उनका लग्न बाल्यावस्थामें होनेसे वे प्रौढ़ हुवे पश्चात् दोनों लग्न अस्वीकार करें और पुरोहितको पूछें कि हमारी प्रतिज्ञा हमने कब की है? और करी होवे तो हमें बताओ? तब वह पुरोहित महाराज क्या उत्तर देंगे? प्राचीन कालमें वधू वर की इच्छानुसार विवाहकी विधि थी। सुभद्रा का अर्जुनके साथ किस रीतिसे विवाह हुवा उसे सर्व कोई जानते हैं। उसको लेके भाग जाने पर बलभद्र जब अर्जुन पर अतिक्रोधाविष्ट हुये तब श्रीकृष्ण महाराजने उनका समाधान किया और बोले कि:—

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत् को न मन्यते।
विक्रयं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात् पुरुषो भुवि॥

अर्थ—उनका विवाह उभय सम्मतिसे हुआ है। कन्याकी इच्छाके विरुद्ध उसको पशुके तुल्य बेचना यह कुछ योग्य नहीं। इसी रीत्यनुसार कुन्ती, सीता, द्रौपदी इत्यादि अनेक राजकन्यायें प्रौढ़ावस्थामें स्वयंवरकी विधि

से विवाहित हुई थीं। कोई कहे कि राजकन्याओंके ही इस रीत्यनुसार विवाह हुये थे। परन्तु ऐसा नहीं है। ब्राह्मण लोगोंकी कन्याओंके भी (जैसे कि शुक्राचार्य्यकी कन्या देवयानी) स्वयंवरसे विवाह हुये थे, और इच्छानुसार योग्य वर न प्राप्त होनेसे ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करके आजन्म अविवाहित रहीं ऐसी बहुत स्त्रियों के वृत्तान्त उपस्थित हैं। गार्गी, सुलभा इत्यादि स्त्रियों के चरित्रसे आप लोग जान लेंगे। इस विषयको अधिक जाननेकी इच्छा होवे तो मेरा बनाया "पुरुषार्थ प्रकाश" देखिये तो ज्ञात होजावेगा। स्त्रियोंके सदृश अनेक पुरुष जैसे कि भीष्म पितामह, हनुमान्, परशुराम इत्यादि ब्रह्मचर्य्य व्रतका पालन करके अपने पराक्रमका महत्त्व जगत्प्रसिद्ध कर गये हैं। इन लोगोंका पुरुषार्थ और सांप्रत हमारे लोगोंका पुरुषार्थ कैसा है उसे सर्व कोई जानते हैं। कुन्तीके पुत्रोंका पराक्रम कैसा था, और अब छोटे२ लड़के और लड़कीके लग्नसे उत्पन्न हुये मनुष्योंका पुरुषार्थ कैसा होगा। छोटी डब्बीमें क्या एक बड़ा भारी हाथी रह सकता है? बाल्यावस्थामें विवाह करने

से अनेक हानि होती हैं। पूर्ण वय प्राप्त हुये पश्चात् विवाह करना चाहिये। इसके अनुसार न करने वाले पापके भागी होते हैं। पूर्ण अवस्थामें विवाह होनेसे भविष्यकी प्रजा अत्यन्त अशक्त उत्पन्न होती है। जब माता पिता स्वतः बहुत न्यून अवस्थाके होवें तो उनको अपने बालकका संरक्षण किस प्रकारसे करना इसका विचार कहांसे होगा? और अपने बालककी रक्षाकी सावधानी का कार्य्य कैसे उनको आसक्ता है। वे अप्रौढ़ माता पिता लड़के को खेलने भी नहीं जाने देते क्योंकि उनको कसरत (व्यायाम) से होने वाले लाभसे वे अज्ञात हैं। जब वे अपने बालकोंके खाने पीनेकी यथायोग्य सावधानी रख नहीं सक्ते तब ऐसे अज्ञान माता पिताके बालक चोरी करके हदसे बाहर खाना सीखते हैं, जिनसे उनको अनेक व्याधिके भोग होजाते हैं। पेट फूलता है, हाथ पांव रस्सी जैसे पतले होजाते हैं, उनको घड़ीमें सरदी और घड़ीमें कुछ ऐसे अनेक व्याधिमें आगिरते हैं। अज्ञान माता पिताको केवल प्रजा उत्पन्न करनी आती है परन्तु उतनी वयमें उनको संरक्षण करनेकी बुद्धि नहीं आती॥

शारीरिक विषय अलग रखके विद्याकी ओर लक्ष्य देवेंगे तो वहां भी यही व्यवस्था ऊपर दरशाये कारणों से दिखाई देगी। साम्प्रत मनुष्य अपनी संस्कृत भाषा सीखनेको छोड़ अंग्रेज़ी पढ़नेके पीछे पड़े हैं। इतिहास सिखानेमें राम जनक इत्यादिके चरित्र न सिखाके आलमगीर जैसेका जन्मवृत्तान्त पढ़ानेमें आता है जो पढ़नेसे बालकोंके मनमें बुरा असर होता है। अपने सगे भाइयोंको राज्यपद प्राप्तिके लिये कैसे मार डालना, ऐसी कला भी सीखते हैं। श्रीरामचन्द्रजी जैसे महात्माओंके इतिहास सिखानेसे बन्धुप्रीति, पूज्यबुद्धि, माता पिताकी आज्ञाका पालन, सत्य बोलना तथा करना, पतिका पत्नी प्रति प्रेम, राजकीय कुशलता, प्रजा संरक्षण, एकपत्नीव्रत, ऐसे २ अनेक सद्गुण शिष्य सीखते हैं और वे पूज्यबुद्धिवाले होते हैं। और स्वयं उसके अनुसार वर्ताव करना सीखते हैं॥

बड़े२ विद्वान् होवें, बी० ए०, एम० ए० इत्यादि उपाधि प्राप्त करें तथापि वैदिक धर्म विषय कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं करते! वैदिक धर्म क्या है? उसमें क्या तत्त्व है?

इसे भी जाननेके लिये प्रयत्न नहीं करते। और जब जानते नहीं तब वे अपनेको बड़ा पण्डित माननेवाले, अपने परिवारको तो ऐसी विद्याका कहांसे बोध करासकेंगे? मुसलमान भाई अपने बालकको प्रारम्भसे कुरान शरीफ पढ़ाते हैं परन्तु हमारे आर्य लोग अपने बालकको वेदका दर्शनमात्र भी नहीं कराते हैं। क्रिश्चियन लोगों का अभ्युदय, केवल उनके धर्म्म पर प्रीति ही है। ग्लाडस्टून जैसे महान् विद्याभूषण, धर्म शिक्षणके विना उत्पन्न होनहीं सक्ते ॥

तमाकूके व्यसनसे आयुष्यमें पांच वर्ष कमती होते हैं। ऐसे कहने वाले डाक्टर स्वयं एक पश्चात् दूसरी चुरट फूंकते रहते हैं। ऐसे उपदेशकोंके उपदेशका परिणाम उनकी प्रजाके प्रति कैसे होवे? तमाकू नहीं पीना ऐसा कहनेमें कुशल परन्तु स्वयं वे पीवें, तब उसमें क्या होगा इस जिज्ञासासे पिता बाहर गये कि लड़के-उसका स्वाद निकाल कर देख लेते हैं। हम अपने आचरण तथा व्यवहार सुधारे विना अन्यको उपदेश करें यह मूर्खता है। बालकोंमें अनुकरण करनेकी शक्ति विशेष होती है,

इससे उनके समक्ष नीतिविरुद्ध कुछ भी बोलना अथवा आचरण करना न चाहिये। थोड़ा समय हुवा मुझे एक एम० ए० पास विद्वान् मिला था, उसने एक शङ्का की थी कि "भूत पिशाच नहीं हैं ऐसा हमको कालजमें प्रोफेसरोंने सिखाया है और हमको भी ऐसा ही प्रतीत होता है। परन्तु रात्रिमें जब हम अकेले स्मशान जैसे एकान्तवास या उस स्थान पर जाते हैं तब हमको भूत पिशाचोंका भय क्यों लगता है?" मैंने उनसे पूंछा कि "तुम्हारी बाल्यावस्थामें भूत प्रेतकी बातें तुम्हारे आगे किसीने करी थीं? उसने कहा हां, जब मैं बालक था तब मेरी माता कहती थी कि "रात्रिको बाहर मत जाना वहां भूत प्रेत होंगे वह तुम्हें चिपटें गे," तब हमको भय लगता था। तब मैंने उसके प्रत्युत्तरमें कहा कि तुम्हारी माता ही एक बड़ा भारी भूत है और उसी भूतने तुम को आज तक घेर रक्खा है ॥ महाभारतः—

नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः ॥

वेदसे परम दूसरा कोई शास्त्र नहीं है और माताके समान दूसरा कोई गुरु नहीं है। जब देशका अभ्युदय

विद्यासम्पन्न स्त्रियों पर आधार रखता है, तब स्त्रियों को अवश्य शिक्षा देनी चाहिये। जिस तरहसे पुत्रोंको विद्याभ्यास करवाया जाता है उसी तरहसे पुत्रियोंको भी विद्याभ्यास करवाना चाहिये ॥

दृष्टान्त लो कि एक लड़का अपने पिताके साथ उपवनसें फिरते पूंछने लगा कि पिता जी ! यह पुष्प काहे का है ? इस प्रश्न पर लक्ष्य न देके उसका पिता आगे चलने लगा जिज्ञासुभावसे बालकने पूंछा तो उसके मनकी शङ्काका समाधान पिताको करना था । मुख्य शिक्षण बालकोंको माता पिता से ही मिलना चाहिये। अपने चार पांच भाई लश्करी (रेजिमेन्ट) मनुष्यके सदृश एकसी रीति पर चल न सकेंगे। अपने पांव टेढ़े मेढ़े पड़ेंगे क्योंकि उस विद्याको हम नहीं सीखे। शिक्षाके उत्तरदाता माता पिता हैं परन्तु उनको प्रथम अपना व्यवहार सुधार कर अपने बालकोंको शिक्षा देनी चाहिये और उन का रक्षण करना चाहिये। यह तीसरा कर्त्तव्य है ॥

"समाज" यह चौथा कर्त्तव्य है । जिस विषयको मैं अभी विवेचन नहीं करूंगा। पांचवां कर्त्तव्य "मनोरञ्जन"

है । मनोरञ्जन करने के लिये धर्म्ममें बाधा न आवे ऐसी रीतिसे मनको विश्रान्ति देनी चाहिये । मनोरञ्जन विविध प्रकारसे हो सक्ता है। इसलिये जो मार्ग युक्त या इष्ट होवे उसीको करना चाहिये ॥

छठा और अन्तका कर्तव्य "धर्म और ईश्वरोपासना" है । जब तक मनुष्य ईश्वरका अस्तित्व नहीं मानता वहां तक उसमें मनुष्यत्व नहीं है ऐसा कहना चाहिये । सांप्रत ईश्वरका अस्तित्व यथार्थ रीतिसे मान्य करनेवाले न्यून ही होते हैं । आफ़िसमें ज़ोरसे बोलते डर लगता है कि कदाचित् साहब गुस्से होंगे । परन्तु परमेश्वर, साहबसे चाहे जितना बड़ा है तो भी उसका भय नहीं होता । इसको प्रसन्न रखनेके लिये उसकी आज्ञाके अनुसार वर्त्ताव करना यह सर्व प्राणिमात्रका कर्तव्य है । सर्व शक्तिमान् प्रभुका भय रखके उसके भक्त हुये विना मनुष्य पापाचरणसे निवृत नहीं होसकता । पापों का त्याग किये विना लोक व परलोक नहीं सध सक्ते । इससें आप महाशयोंसे विनती पूर्वक निवेदन करता हूं कि अपने ईश्वरके परमभक्त हो के इस लोक वा परलोकका हित कर लेना यह श्रेयस्कर है । इत्याशास्महे । इति ॥

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित वैदिक-पुस्तकप्रचारकफण्डके कार्य्यालयके विक्रेय पुस्तकोंका सूचीपत्र ॥

पुरुषसूक्त अर्थ सहित)॥ ईसाईमत संसारमें कैसे फैला (पं० लेखराम जी कृत))॥ महाशङ्कावली)। रामायण-का आल्हा)। नीतिशिक्षावली)। सुशीलादेवी)। ईसा-ईमतलीला)। ईसाईमतखण्डन १ भाग)। दूसरा)। शि-वलिङ्गपूजाविधान)। श्रीरामजीकादर्शन, कलियुगलीला, काशीमहात्म्य)। नित्यकर्मविधिः)। पुराणकिसनेबनाये, श्रीस्वामीशङ्करानन्दके अनमोल उपदेश, अमेरिकानिवासी मि० डेविसके आर्य्यसमाज और स्वामी जी पर विचार, ईसाईलीला, ये पुस्तकें आधे २ पैसेकी हैं।

श्रीछत्रपति शिवाजीमहाराजका जीवनचरित्र।)

ऐसा कौन द्विज है जो शिवाजीका जीवनचरित्र प-ढ़कर प्रसन्न न हो ? इनका साहस उद्योग और वीरता का स्वाद औरङ्गज़ेबसे बढ़कर और किसीको नहीं मिला, उस समयमें मुसल्मानोंको पराजित कर आर्य्यधर्म्मका गौरव रखना इन्हीं का काम था।

(२)–हारमोनियमगाइड मू०।=) विना उस्तादके हार-मोनियम बाजा बजाना सीखली, जिसमें होली, ग़ज़ल, ठुमरी, लावनी आदि सा. रे. ग. म की रीतिसे दी हैं। आज तक हिन्दीमें ऐसी पुस्तक नहीं छपी है जिसकी सैंकड़ों प्रति विक गईं, अब थोड़ी बाकी हैं।

(३)–धर्म्माधर्म्मविचार मू० ।) ईसाईधर्म्मकी पुस्तकों-को अच्छी तरहसे पढ़के इसमें उसकी बड़ी २ पोलें और भूलें सर्वसाधारणको ज्ञात हो जायं और ईसाइयोंके जालमें न फंसे इस लिये नये ढंगसे बनाई है। पुस्तक पढ़ने योग्य है।

(४)–खेतीविद्याके मुख्य सिद्धान्त मू० ॥=) यह पुस्तक किसानोंके लिये बड़ा उपयोगी है। इसमें खेती करनेके सिद्धान्त अच्छी तरहसे दिखाये हैं।

(५)–गीता भाषाटीका सहित मू० २।) यह पुस्तक पं० भीमसेनजीने बड़े परिश्रमसे बनाई है यथार्थमें गीता का आशय ज्ञात होता है। सर्व आर्योंको रखने योग्य है।

(६)–श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजीका चित्र मू०॥।) यह चित्र पूनाके चित्रशालामें बहुत उत्तम रंगोंसे बनाया

गया है वृक्षके नीचे स्वामीजी महाराज आसन लगाये बैठे हैं तथा इस चित्रके नीचे संक्षेपसे जीवनचरित्र भी दिया है। १६×२० इञ्चका है। सर्व महाशयोंको चाहिये कि इस देशहितैषी महात्माका चित्र रखकर घरकी शोभा बढ़ावें। छोटा लेथोमें छपा हुवा सादा -) रङ्गीन -)॥
पं० गुरुदत्तजी एम० ए० विद्यार्थीका सादा -) रङ्गीन-)॥

(७)–सद्धर्म्मप्रकाश मू० १) यह पुस्तक श्रीस्वामी रामानन्द सरस्वती महाराजने मुमुक्षके प्रश्नोत्तरसे शास्त्रों के प्रमाण सहित धर्म्म, नीति, शिक्षा और शास्त्रोंके सिद्धान्त दिखाये हैं। पहिले मू० १॥) था अब १) कर दिया है। बम्बई टाईपमें छपा है।

(८)–बहारेनयरङ्ग १ भाग =) दूसरा भाग ।) इसमें देशोन्नतिके तथा शिक्षाके उत्तम २ भजन हैं जिनके पढ़ने से बड़ा आनन्द आता है।

(९)–संस्कृतकी प्रथम पुस्तक)॥। द्वितीय -)॥ तृतीय =)॥। विना गुरुके संस्कृत सीखलो इनसे व्याकरण तथा लिखने पढ़नेका उत्तम बोध होजाता है। ये पुस्तक पं० तुलसीराम स्वामी भूतपूर्व उपदेशक आर्य्यप्र०नि०सभा पश्चिमोत्तर व अवध के बनाये हुये हैं।

ओ३म् तत्सत् परमात्मने नमः

गङ्गा की नींद

श्रीयुत लाला मलेकराज भल्ला कृत
पुस्तक संख्या २२

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित
"वैदिक पुस्तक प्रचारक फ़ण्ड" द्वारा
प्रकाशित

बूढ़े सफेद रीश हज़ारों फ़िदा हुये
मासूम सर भी तनसे हज़ारों जुदा हुये
अथवा
धर्मपे वृद्ध कटे बहुतेरे, बालन हूं दिये शीश घनेरे

आर्य्य संवत् १९७२९४८९९९
जुलाई सन् १८९७ ई०
द्वितीयवार२०००] [मूल्य)।

लाइटनिङ्ग प्रेस शहर मेरठ

ओ३म् तत्सत् परमात्मने नमः

गङ्गा की नींद

श्रीयुत लाला मलेकराज भल्ला कृत

पुस्तक संख्या २२

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित
"वैदिक पुस्तक प्रचारक फ़ण्ड" द्वारा
प्रकाशित

बूढ़े सफ़ेद रीश हज़ारों फ़िदा हुये
मासूम सर भी तनसे हज़ारों जुदा हुये

अथवा

धर्मपे वृद्धकटे बहुतेरे, बालन हूं दिये शीश घनेरे

आर्य्य संवत् १९७२९४८९९९
जुलाई सन् १८९७ ई०
द्वितीयबार२०००]   [मूल्य)।

लाइटनिङ्ग प्रेस शहर मेरठ

ओ३म्

भूमिका

प्रिय पाठक!

तीन मास हुए कि मुझे हरिद्वार जाना हुआ एक दिवस सन्ध्या समय नदी तट पर फिर रहा था आपमें से अधिक ने न्यून से न्यून एक बार हरिद्वार यात्रा की होगी अतः जानते होंगे कि यह स्थान जहां हिमालय की पुत्री अपने पिता की गोद से निकलकर मैदान में आती है उस को प्रकृति ने सुन्दर बनाने में कोई बात नहीं छोड़ी रात्रि दिवस के मिलने के मिलाप के समय उस के पवित्र तट पर फिरना विशेष आनन्ददायक है परन्तु सूर्य्य के प्रकाश के

मन्द पड़ जाने पर दृश्य के पृथक २ भागों में एक लगावसा उत्पन्न होजाता है जिस से उस को और शोभा मिलजाती है उस समय कुछ देर से मैं प्रकृति के रूप को देखने में निज को भी भूल गया था जब कि एक यात्रियों का समूह मेरे पास से निकला जिस में लौट जाने की बात चीत होरही थी और जिस ने मुझे स्मरण कराया कि मुझे भी अधिक काल लौं इस सुख में ठहरना नहीं है किन्तु १ या २ दिवस में लौट जाना है ॥

इतने में सूर्य्य अस्त हुआ और चन्द्रोदय हुआ चन्द्रमा का प्रकाश थोड़ा तो होता ही है उस समय कुछ छोटे २ बद्दल उसके सन्मुख आये हुये थे जिन्होंने उसको और भी घटा दिया- सुहावने दृश्य का कोई भाग उत्तम प्रकार देख पड़ता था शेष सब दृष्टि से छिप गये थे और केवल स्मरण द्वारा देखे

जासक्ते थे यह दशा ठीक गति काल की भांति थी इसी सम्बन्ध ने मेरे ध्यान को उसकी ओर खींचा पर जब एक बार उस ओर ध्यान पड़ा तो समस्त इतिहास मेरे सन्मुख प्रकट होगया– इन विचारों का एक भाग प्रकट करने का मैंने उद्योग किया है– मुझे निश्चय है कि हमारे मुसलमान भाई भी बुरा न मानेंगे- क्योंकि अब इस बात में सन्देह को किंचित् स्थान नहीं कि अरब और अफ़ग़ान आक्रमणकारियों ने जो अत्याचार भारत वर्ष में किये हैं- वह इतिहास पर बहुत बुरे धब्बे हैं ॥

आपका हितेषी
एक यात्री

॥*॥ पद्य ॥*॥

गङ्गा की नींद

गंगा उठो कि नींद में सदियां गुज़र गईं ।
देखो कि सोते २ ही बरसें किधर गईं ॥
औरों को जो जगाके ख़बरदार कर गईं ।
अन गिनत सायतें वह यहां बेख़बर गईं ॥
आंखें तो खोल देखो ज़रा हाल है ये क्या ।
रफ़्तार पहले कैसी थी अब चाल है ये क्या ? ॥
इस नींद ने ज़माना पै जेरोज़बर किया ।
गेती का एक दम से सफ़ह ही पलट दिया ॥
फाड़ा किसी का सीना किसी का जिगर सिया ।
पटकाया एक दूसरा सर पर उठा लिया ॥

इस नींद ही में सैकड़ों जंगो-जिदल हुये।
इस नींद ही में सैकड़ों रद्दोबदल हुये ॥ २ ॥
इस नींद में बहुतेरे हुये इंक़लाब यां।
तबदील होगया है हरेक तौरसे जहां ॥
इस नींद में बहुतेरे मिटे नाम और निशां।
भारत की आज बाक़ी हैं मुशकिल से हड्डियां ॥
नगरी के पांडवों की बयानात रहगये।
मिथिला अयोध्या के निशानात रहगये ॥ ३ ॥
इस नींद ही में शहर बियावान होगये।
आबाद देश उजड़ के वीरान होगये ॥
ज़रखेज़ जो क़ताथे वो सुनसान होगये।
राहत जहां थी रंज के सामान होगये ॥
तलवार ग़ज़नवी की इसी नींद में चली।
तातारियों की आग यहीं मुद्दतों जली ॥ ४ ॥
इस नींद ही में राज घराने तबाह हुये।

राजे मरे गुलामे गुलामान शाह हुये ॥
निर्बल बने बलीन क़वी बे पनाह हुये।
उजले कंवल से जो थे वो जलकर सियाह हुये ॥
जो ख़ान्दान तख़्त के वाली सदा से थे।
इस नींद ही में आज वह मिट्टी में मिलगये ॥ ५ ॥
इस नींद ही में क्षत्री मुसल्मान बन गये।
आधी सदी में हिन्दु से अफ़ग़ान बनगये ॥
तुर्कीनज़ादों नस्ले ख़ुरासान बन गये।
बाक़ी रहे कुछ अहले सफ़ाहान बन गये ॥
धक्कर ज़रासी बदल के अबके गुहर बने।
गर और कुछ न शेवतो सब बेखुतर बने ॥ ६ ॥
इस नींद ही में भाई से भाई जुदा हुआ।
बेटे का बैरी बाप हुआ ख़ुद बख़ुदा ॥
चेले गुरु का जोड़ फ़क़त ग़र्ज़ का हुआ।
राहत का साथ बाक़ी न यां रंजका रहा ॥

हर एक खुदी में अपनी हीं मख़मूर होगया ।
हर एक इसी नशे में पड़ा चूर होगया ॥ ७ ॥
इस नींद ही में धर्मपै चोटें हुई हज़ार ।
तुर्कों की फ़ौज छाती पै उसके हुई सवार ॥
साधू ब्राह्मण उसने किये तंग और ख्वार ।
मंदिर जो बेमिसल थे गिराये वह बेशुमार ॥
सेवक नतेंगे क़हर से छूटे न देवता ।
पापी बचे न ज़ुल्मसे उसके न पारसा ॥ ८ ॥
इस नींदही में हिन्द में नीवें नई पड़ीं ।
ईंटे यहां पै मक्के मदीने की आलगीं ॥
क़बरें मज़ारें ईदगाहें बहुत बन गईं ।
रसमें अरब की जो थीं यहां पर वह आजमीं ॥
काशी में मंदिरों की जगह मस्जिदें बनीं ।
तुर्कों की धर्ती बनगई प्रयाग की ज़मीं ॥ ९ ॥
इस नींद ही में होगया हिंदोस्तां शिकार ।

एक एक करके कट गये शाह और शहर यार ॥
चारों दिशा में मचगई घर २ में लूटमार ।
ज़ोरोसितम से होती रही हर जगह पुकार ॥
गूंजा सदाय ख़ल्क़ से यह गुम्बदें फ़लक ।
पहुंचा न तेरे कानमें पर शोर आज तक ॥ १० ॥
इस नींद में टटोला गया आर्य्यों का घर ।
खोले गये क़हर से बड़े मंदिरों के दर ॥
सख्ती हज़ार करके अमीरो ग़रीब पर ।
अम्बारों से उठाये गये सीम और ज़र ॥
इस नींद ही में लूट हुई नगरकोट की ।
इस नींद ही में जाता रहा सोमनाथ भी ॥ ११ ॥
इस नींद ही में ज़र का यहां ख़ातमा हुआ ।
चांदी का रेज़ा देखने तक को नहीं रहा ॥
सोने का इस जहां से निशां तक चला गया ।
इल्मास और अक़ीक़ का अब कुछ नहीं पता ॥

फैलाये घोर पाप यहां मुसल्मीन ने ।
बारिश फ़लक ने रोकली दौलत ज़मीन ने ॥ १२ ॥
इस नींद ने बिगाड़ के नस्लें हज़ारहा ।
तोड़ी भरी उमंग से आसें हज़ारहा ॥
कीं मुनक़ता इसी ने उमैदें हज़ारहा ।
बेसूद करके समझ की चालें हज़ारहा ॥
इस नींद ही में राय पिथौरा क़तल हुये ।
संगासे शूरबीर जेदा जहद में मुये ॥१३॥
इस नींद ही में दर्द से यां सीने फट चुके ।
अफ़सोस बन्दगान ख़ुदा कितने कट चुके ॥
या क़ैदहो गुलाम बनें और बट चुके ।
दुनियां में सब से बढ़के भी हम कितने घट चुके ॥
पद्मावती की राख भी अब सर्द होचुकी ।
प्रताप जैसे मर्द भी सारे तो खोचुकी ॥ १४ ॥
इस नींद ही में क़ौमों की इज्ज़त तबाह हुई ।

और राजपूत कितने की हुर्मत तबाह हुई ॥
लाखों पतिव्रताओं की अज़्मत तबाह हुई ।
लाखों की अपने जीने से रग़बत तबाह हुई ॥
बे वेतन कोई मर मिटीं बग़दाद में पड़ी ।
कितनी ही जलती आगके शोलों में जापड़ीं ॥१५॥
इस नींदही में ग़ज़ब रहा इस दयार पर ।
मज़्लूम कितने होगये क़ुर्बा कटार पर ॥
कितनों ने सीने रखदिये ख़ंजर की धार पर ।
कितनों ने काटे अपने गले पहली हार पर ॥
कितने यहां पैयासमें हीरे चबा गये ।
कितने ग़रीब चुपके से बस ज़हर खागये ॥१६॥
इस नींदही में तल्ख़ हुई ज़िन्दगानियां ।
माओंकी गोद से छिने बच्चे बहुत यहां ॥
रोती अलहैदा की गईं पतियों से बीवियां ।
बहनें पुकारती रहीं भाई गये कहां ॥

आंखे यहां पै कितनी मुर्दीं आंसुओं से तर ।
दम रुक गये सराप थे जिस्दम ज़बान पर ॥१७॥
इस नींद ही में जाने गईं यां खड़े २ ।
कितनी ही औरतें मरीं पानी में कूदके ॥
कितनी कटीं पिता पती भाई के हाथसे ।
तुर्कों के सख्त पंजे से बचने के वास्ते ॥
इस नींद ही में कितनी पड़ीं वहशियों के हाथ ।
ग़ज़नी में कितनी उम्रें कटीं सख्त दुखके साथ।१८।
इस नींद ही ने ऐसी मचाई है खलबलीं ।
कल वालों को भी सुन इसे होती है बेकली ॥
बच्चे बना यतीम रुलाये गली गली ।
दर २ फिराईं कुल्क में विधवायें दिल जली ॥
बूढ़े सफ़ेद रीश हज़ारों फ़िदा हुये ।
मासूम सर भी तन से हज़ारों जुदा हुये ॥ १९ ॥
इस नींद ही में मारे गये बीर दिल चले ।

भारत के हाले ज़ारपै जिन २ के दिल जले ॥
कितने ही मुंहमें मौत के बेडर बढ़े चले ।
जा जा जमाई गर्दने फ़ौलाद के तले ॥
सारा शरीर अपने लहूसे भिगो दिया ।
पर बुज़दिली के दाग़ से माथा बचा लिया ॥२०॥
इस नींद ही में ग़म से भरी कुल ये सरज़मीं ।
मातिम में झोंपड़ी से महल तक है क्या नहीं ॥
आंखें जहां उठाते हैं मिलता है दुख वहीं ।
मुमकिन नहीं कि सुखमें मिले एक घर कहीं ॥
आंसू बहा रही हैं हिमालय की चोटियां ।
दिलसे निकल रहा है समुन्दर के भी धुआं ॥२१॥
इस नींद ही में हमने बुलाया तुझे बहुत ।
आहों से बेकसों ने जगाया तुझे बहुत ॥
नालों से ग़मज़दों ने हिलाया तुझे बहुत ।
नारों से दिलजलोंने उठाया तुझे बहुत ॥
अब तो उठो कि नींद में सादियां गुज़र गईं ।
देखो कि सोते २ ही वर्षें किधर गईं ॥ २२ ॥

अन्य भाषा के कठिन शब्दों का कोष

सदियां—शतब्दियां—१०० वर्षकी एकशताब्दी
साअत-घड़ी।
रफ्तार-चाल ढाल।
ज़ेरोज़बर-नीचे ऊपर अर्थात् तबाह।
गेती—संसार।
सफ़ह- धरातल।
सीना-छाती।
जंगेजिदल-संग्राम।
इन्क़लाब-परिवर्त्तन।
जहान-संसार।
निशान-चिन्ह।
बयानात-वर्णन वाकहावतें।
बियाबान-बन।
बिरान-उजाड़।
ज़र्ख़ेज़-उपजाऊ।
क़ता-टुकड़ा।
राहत-हर्ष-खुशी।
ग़ज़नवी— नाम एक अत्याचारी अफ़गान का जिसने भारत पर १७ आक्रमण किये-पूरा नाम महमूद ग़ज़नवी- अर्थात ग़ज़नवी का रहने हारा।
गुलामेगुलामान—गुलामों के गुलाम।
क़वी-ज़बरदस्त।

बे पनाह-असहाय।
वाली-मालिक।
नस्ल-वंश।
तुर्कीनज़ाद-तुर्कवंशी।
खुरासान वसफ़ाहान-नगरों के नाम जो फ़ारसमें हैं।
धक्कर- एक जाति का नाम जो अधिक मुसलमान हुई।
ग़रज़-मतलब।
मख़मूर—मदमस्त।
बेशुमार-अगणित।
तेगेक़हर-क्रोधका खड्ग-
पारसा- पवित्र- नेक।
मक़ामदीना- नगरों के नाम जो अरब देशमें हैं- औरमुसलमानों के तीर्थ-स्थान।
मज़ार-क़ब्र।
शहरियार-राजा।
ज़ोरोसितम-अत्याचार।
सदा-आवाज़-शब्द।
ख़ल्क-संसार।
फ़लक-आकाश।
सीमोज़र-धन सम्पति।
ख़ात्मा-अन्त।
इल्मास-हीरा।
अक़ीक़-लाल।
बारिश-वर्षा।
मुनक़ताकर्ना-काट-

डालना-ताड़देना ।
बेसूद-बेफ़ायदा ।
जद्दोजिहद-उद्योग-कोशिश।
हुर्मत-प्रतिष्ठा अज़्मत ।
पाकदामनी- पवित्रता
रग़बत-इच्छा ।
वतन- घर ।
बग़दाद- नाम नगर-
जो एशियाई रूममें है ।
शोला-लपट ।
दयार- देश ।
कुर्बान- बलिदान वा-
निछावर- प्यारा । ख़ंजर-
बिछुआ दोधारा छुरा ।
यास-निराश ।
वहशी-वन्यअसभ्य ।
यतीम-अनाथ ।
क़लक़-रंज-शोक ।
रीश- दाढ़ी ।
मासूम-भोले बालक
हालेज़ार-दुर्गति ।
बुज़दिली-कायरता-
मातिम-शोक ।
बेकस-दीन नाला व नारा-
शोक पूरित उच्चशब्द ।
ग़मज़दा-खेदित ।

ओ३म् तंत्सत् परमात्मने नमः

श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज का पद्यमें संक्षिप्त जीवन चरित

॥ दोहा ॥

धनि जीवन उन नरनको, जो परहित में देत ।
तन मन धन जग सम्पदा, जोजग सुखके हेत ।

श्रीयुत पण्डित बलभद्र मिश्र कृत

पुस्तक संख्या– २३.

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित
वैदिक पुस्तकप्रचारक फण्डद्वारा प्रकाशित
आर्य्य संवत् १९७२९४९९९९
सेपटेम्बर सन् १८९७ ई०
प्रथम बार टाइप में २००० } मूल्य ।।
लाइटनिङ्ग प्रेस शहर मेरठ

॥ भूमिका-॥

इन महात्मा के जीवन तथा उनके शास्त्रार्थों का समाचार जो विधिवत् लिखा जाय तो बड़े बड़े ग्रन्थ बन जायं और उनके लिखने के लिये बहुत अवकाश चाहिये जिसके अभाव से हम इस स्थल में उन महा पुरुष के जीवन की मुख्य २ बातों का वर्णन इस स्थल में भविष्य में स्मरण रहने के लिये अति संक्षेप से यहां लिखे देते हैं यदि अवकाश और सुभीता होगा तो यथोचित पीछे से लिखेंगे-

•बलभद्र मिश्र

"भारतोद्धारक" वैदिक पुस्तक प्रचारक फण्डका मासिक पत्र वार्षिक सर्व साधारण से १)अग्रिम डाक व्यय सहित जो अगष्ट मास से सदर बजार मेरठ उक्त फण्ड द्वारा हर मास में प्रकाशित होता है. जिसमें पं० ज्वाला प्रसाद मुरादाबादी कृत दयानन्द तिमिर भास्कर का उत्तर पं० तुलसीराम स्वामी कृत तथा पं० लेखरामजी पुस्तकों का अनुवाद और अन्यविषय छपतेहैं रायल तीनफार्मका निकलता है जो महाशय ग्राहक होना चाहे शीघ्र पत्र से सूचना देवें ॥

॥ ओ३म् ॥

श्रीमत् परिव्राजकाचार्य्य श्री १०८ स्वर्गवासी स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का संक्षिप्त जीवन चरित्र

॥ छन्द शिखरिणी ॥

सदानन्दो नित्यः शुचि अजित तेजो मय प्रभो
अलख निर्गुण देवः श्रुति लहैन भेव गुण निधे
चराचर को धारे माया पसारे जग पते
सृजक पालक पोषक पुनिलय करे पूर्व वपुमें ॥१॥
भनत लीला तेरी श्रुति कहि थके पार न लह्यो
अतुल शक्ति तेरी अतुल विद्या ज्ञान तुझ में
सकल भौतिक मध्ये विलसत सदा एक रसमें
नमो पूर्णानन्द घन विमल सत्य व्रतपते ॥१॥

॥ दोहा ॥

धनि यह दिन मम भाग धनि धनि यह भवन समाज
नगर नगर से आय जहं मित्र बिराजत आज ॥
धारा प्रेमप्रवाह की उमड़ि घुमड़ि हहलात ।
सुख सम्पदा सु आजकी कासों वरणी जात ॥
विद्यासिन्धु समस्तप्रिय सुजन मित्र के बीच ।
तुच्छबुद्धि मेरी तहां है सबही विधि नीच ॥
पर आनन्द हुलसत हिये बनै न रोकलू सोय ।
तातें कछु वर्णन करों क्षमिय जो अनुचित होय ॥

॥ सोरठा ॥

जेहिं माली यह बाग सेई सुफलित सकल दिशि ।
वन्दि सु चरणपराग तासु चरित वर्णन करों ॥

॥ दोहा ॥

देश काठियावाड़ में मोर्वी राज्य के बीच ।
दयानन्द रवि उदय भे कुल ब्राह्मण अवदीच ॥

॥ चौपाई ॥

संवत् अठारह सौ इक्यासी । जन्मत भे विद्यागुणरासी
पञ्चम वर्ष मध्य जब गयेऊ । देवनागरी प्रारम्भ करेऊ
अष्टम वर्ष उपनयन भयेऊ । नित्य कर्म सर्वाङ्कित पढेऊ
पिता शैव व्रतचारी जासू । चह्यो सिखावन उनको तासू
दियो विविध उपदेश अपारा । पर न जंचो मनमें एकछारा
षोडश वर्ष आयु जब भयऊ । लघुभगिनीसुरपुरकोगयऊ
तबसे जगसों भयऊ विरागी । इच्छा युक्त सुखों की त्यागी
निजमनमें निश्चय यहआनी । देहनश्यु क्षण भंगुर जानी
यातें परमारथ मन दीजे । मनुज देहको फल लैलीजे

॥ सोरठा ॥

यह निश्चय उरधारि विद्या निशि वासर पढ़ै ।
मुक्ति किं ओर निहारि गृहसुख तृणसमवारिये ।

॥ दोहा ॥

उन्निसवर्ष की आयुमें जब में चचा महान् ।

विद्यानिधि मन प्रेमरत जंगसों कियो पयान॥
प्रथम वियोग तो भगनिका दूजो यह अवलोक।
बनजारे का खेल जग यह मन बादयो शोक॥
देख बार अनेक मैं निजविज्ञान प्रकाश।
क्षण भंगुर जग सम्पदा क्षण में होवे नाश॥

॥ सोरठा ॥

तिनसों जोरे नेह सुख सपनेहू दुर्लभ।
यामें नहिं सन्देह तातें प्रेम न कीजिये॥
कही विरतिकी बात जब मित्रन से भूल से।
जानिलियो पितु मात तिनसों मेरा मर्म यह॥

॥ चौपाई ॥

जब यह बात पिताने जाना। कीये चाहें कर न पयाना
गृह सुख पाश पांव बंधवैये। याहि का सब वैराग नसैये
शीघ्र व्याह दीजै करवाई। पिता के मनमें यही समाई
तबमें कीन्हो विविध निहोरा। एक वर्ष अवधी हो औरा

सो पितु मातु मानि यहलीन्हा। एक वर्ष का औसर दीन्हा
काशी पढ़न मनोरथ मेरा। जहं विद्या का अधिक बसेरा
पितुसों विनय कीन्ह करजोरी॥परउन विनयकीन्ह नहिं पूरी

॥ दोहा ॥

विद्या बहु इतहूं बसै काशी में नहिं काम।
मातु कह्यो जनि जाइयो तजिकर अपना धाम॥
थोड़े दिन हैं व्याह के वामें होइहै हानि।
तातें कहूं न जाइये मानों मेरी बानि॥

॥ छन्द ॥

कीन्हों विनय बहु भांति पितु सों मोहि काशी भेजिये।
जहं जाय विद्या पाय पूरी आनन्द मंगल हूजिये॥
पितु मातु कह्यो न जानदेहैं व्याह आतुर ही करैं।
गृहभार तुमपर लादि देहैं बात यह निज मन धरैं॥

॥ चौपाई ॥

बहु विधि कीन्ह विनय पितु पाहीं॥परउन एक न मोरसराहीं

یافت وارجن مل کہ از خلفائے بواسطہ اوست چوں تمیز آنرا دریافت
از اکل حیوانی مانع آمد و گفت این عمل مرضی نانک نیست"

फारसी–नानक क़ायल व तौहीद बारी बूद व तनासुख़ नीज ईमां दास्त व ख़मरो गोस्त व ख़ोकराहराम समर्दा तर्क हैवानी कर्दा व बइस्तना ब आज़ार हैवां अम्र मीफ़रमूद व गोस्त खुरदन बाद अज़ व दर मुरीदानश शोहरत याफ्त व अर्जुनमल कि अज़ ख़लफ़ाय बवास्ता ओस्त चूं क़बह आरां दरियाफ्त अज़ अक्ले हैवाने मानः आमद व गुफ्त ईं अमल मरज़ी नानकनेस्त".

(दबिस्तान मज़ाहब तालीम दोयम सफा २२३)

अर्थ—नानक ईश्वर को अद्वितीय मानता था, और आवागमन के सिद्धान्त का विश्वासी था व मांस तथा सूअर को अमक्ष्य समझ कर पशुओं को छोड़, कर पशुओं को दुःख देने से बचने की आज्ञा देता था। और मांस खाने का प्रचार उनके शिष्यों में पीछे से पड़ा। और अर्जुनदेव ने जिस के

साथ खलीफों का कुछ सम्बन्ध है जब इस बुराई का अन्वेषण किया तो स्वार्थपरायण बुद्धि इस की रुकावट हुई। तथा कहा कि यह व्यवहार नानक की अभिलाषा के अनुसार नहीं है (देखो दबिस्ताने मज़ाहब तालीम दोयम पृष्ट २२३)

शुद्धि का ठीक २ नियम वही है जिस नियम से बाबा नानक ने मरदाने को शुद्ध किया अर्थात् परमेश्वर की भक्ति वैदिक रीति अनुसार सिखलाकर, न कि सुअर आदिका मांस खिला कर। और सबसे अधिक भूलकर हमारे भाईयोंकी यह है कि वे ईसाईयों को भी इसी भ्रम युक्त रीति से शुद्ध करते हैं अर्थात् सुअर का मांस खिला कर। शायद उन्हें ज्ञात नहीं है, कि ईसाई मत सुअर को अभक्ष नहीं मानते वरन् वे लोग अच्छी प्रकार इसको खाते हैं । व सुअर ही मात्र क्या ! इन के मत में तो सारे पशु भक्ष हैं ॥

अतः ठीक व यथार्थ पतित पावन या पतितउद्धारन की रीति वही है जो सच्छास्त्रों में लिखी है जिस के अनुसार सनातन धर्म (पवित्र वेद) अनुयायीयों का कर्तव्य है, कि वह सारे अन्य मतों में पतित मनुष्यों को शुद्ध कर के सत्य सनातन आर्य्य धर्म के अनुयायी बनावें ॥

शुद्धि व्यवस्था ॥

१-जन्म से पतितों के लिये प्रायश्चित ।

उनको प्रथम अच्छी प्रकार कई दिनों तक सद्धर्म का तत्व बतला कर अन्य धर्मों का रङ्ग उन के हृदय रूपी दर्पण पर से पृथक् कर देना चाहिये, जब अच्छी प्रकार उस के चित्त में निश्चय हो जावे तो उसे सन्ध्या गायत्री अर्थ सहित सिखला कर व वैदिक रीति से उसका नाम करण संस्कार कराके यदि वह यज्ञोपवीत संस्कार के योग्य भी हो तो यज्ञोपवीत करा के सब रीतियें समझाने के पश्चात् सभा में शुद्ध कर देना चाहिये अर्थात् गुण कर्म्मानुसार किसी वर्ण में मिला देना चाहिये ॥

२-बलात्कार व (जबरदस्ती) लाचारीसे भ्रष्ट हुए लोगों का प्रायश्चित ॥

जब अच्छे प्रकार निश्चय हो जाय कि वह परवश में पड़ बलात्कार व किसी अनुचित दबाव से अन्य मत (मजहब) में प्रवेश हो गया था तो उसे बिना रोक टोक अति हर्ष पूर्वक सत्कार पूर्वक मिला लेना चाहिये । उस के

निमित्त केवल उसका आ जाना ही पुष्कल है । किसी और प्रायश्चित या दण्ड की आवश्यकता नहीं ॥

३-अपनी प्रसन्नतासे धन स्त्री के प्रेम या पुस्तकों के अवलोकन से पतित होनेवाले का प्रायश्चित

जितने वर्षों तक अन्य मत में रहा हो उतने सप्ताह व जितने महीने रहा हो उतने दिन व जितने दिन रहा हो उतने घण्टे उसकी परीक्षा करके जब अच्छी प्रकार निश्चय हो जावे कि वह फिर पतित नहीं होगा व उसकी श्रद्धा भी अधिक ज्ञात हो व सम्बन्ध भी टूट गया हो या पतित करने वाली स्त्री भी उस के साथ ही वापस आना चाहती हो, तो एक सप्ताह साधारण व्रत रखवा कर शिखा रखवाने व नाम बदलवाने के पश्चात् सब उपस्थित सज्जनों की विनय व प्रार्थना करानेके पश्चात् उसमतके दोष व सद्धर्म का गौरव अच्छी प्रकार समझा कर हवन कराके उसे मिला लेना चाहिये व उसके सहचारिणी को भी यदि वह किसी वेश्या के प्रेम में पतित हुआ हो तो उस से यथाशक्ति कुछ दण्ड लेना चाहिये नहीं तो किसी धार्मिक सोसायटी (सभा) अर्थात् आर्यसमाज आदि में उससे योग्य सेवा लेनी चाहिये

और यदि कोई मनुष्य एक वार प्रायश्चित् कराने पर फिर भी दैवयोग से किसी कुसंग में पड़ कर पतित हो जावे तो दोबारा उस से दुगुना दण्ड लिया जाय और दुगनी सावधानि की आवश्यकता है ॥

नोट—शुद्धिपत्र से पूर्व उस से पतित होने के विषयमें विस्तार पूर्वक समाचारों सहित प्रार्थनापत्र लिया जावे और फिर शुद्ध करके उसकी एक शुद्धिपत्रिका निम्न प्रकार की दी जावे जिसकी एक नकल समाजमें स्मरणार्थ रक्खी रहे ॥

॥ ओ३म् ॥

शुद्धिपत्रका ।

आज तिथि···मास···शुदि या वदि...संवत् विक्रमी या ता०···मास...सन्···ई० को सब वृतान्त अच्छी प्रकार जांच लेने के पश्चात् नाम·········पिता का नाम·········जाति···निवास स्थान···········आयु···वाले को धर्मशास्त्र मनु व मिताचरा अध्याय·········श्लोक·········के अनुसार शुद्ध कर के आर्य धर्ममें संमिलित किया गया है, हमें अब इस से घृणा (परहेज़) नहीं रही, यह सब प्रकार से हम में संमिलित है इस से कोई घृणा न करे, इसने सब के सामने

·········मत से घृणा प्रगट करके उस से पश्चाताप किया इस कारण सारे उपस्थित निम्न लिखित महाशयों के सामने शुद्ध किया गया है ।

ह० मन्त्री·····················ह० प्रधान···············

बाहर की विक्रियार्थ आई पुस्तकें ।

भास्कर प्रताश अर्थात् दयानन्द तिमरभाष्कर का उत्तर प्रथम भाग ।⁄) द्वितीय भाग ॥) चतुर्थ भागा ॥) विदुरनीती भाषा टीका ।⁄) श्वेताश्वतरोपनिद् ।⁄) चित्रविद्या अर्थात् फोटोग्राफी १) उर्दू में दो भाग १) पांचसौव्यापार १) उर्दू में १) चिकित्सासिन्धु २) विश्वकर्मा प्रकाश म् १।) हारमोनियमगाईड १भाग ।⁄) दूसराभाग ।⁄) उर्दूमें ॥) वीरेन्द्र वीर अथवा कटोरा भर खून ॥⁄) जया ॥) खेतीविद्या के मुख्य सिद्धाना ॥⁄) श्रीछत्रपतिशिवजी महाराज का जीवन चरित्र ।) स्वधर्मरचा ।) आर्यसमाज परिचय ।) वदांतप्रदीप ।) स्त्री धर्मनीति १) बुद्धिमती ।⁄) भामनी भूषण ।) आर्यसंगीत-पुष्पावली जिल्द वाली ॥) उर्दू ॥) सभाप्रश्न ।) उर्दू ⁄)॥ बहारेनरंग १ भाग ⁄) तीव्रिय भाग ।) सत्यहरिश्चन्द्र नाटक ।⁄) नीलदेवी नाटक ⁄)

ईसा ॥≠) मीला ॥≠) फलित ज्योतिष परीक्षा /) बाईबल की पोल /) ब्रह्मकीर्तन)॥ कर्म वर्णन)॥ धर्म्मप्रचार)॥ शिक्षावली)॥ शिक्षाध्याय)॥। संस्कृत प्रथम श्रेणी: /) आर्यभाषा की प्रथम पुस्तक ≠) द्वितीय ≠)॥ तृतीय।) शान्तिसरोवर /)। ब्रह्मयज्ञ ॥) नारीभूषण।≢) संस्कृतभाषा की प्रथम पुस्तक)॥ द्वितीय /)। तृतीय ≠)॥ चतुर्थ ॥) वैदिक देव पूजा /) ईश्वर और उसकी प्राप्ति /) मुक्ति और पुनर्जन्म /)॥ सत्यार्थप्रकाश संग्रह ≢) चाणक्यनीति संग्रह /)। सांख्यदर्शन भाषा टीका ॥।) वैशेषिकदर्शन भाषा टीका १।) नारायणीशिक्षा दोनों भाग १।) वीर्यरक्षा ≠)॥ गर्भाधान विधि ≠)॥ सत्यनारायण की प्राचीन कथा ≠) ओ३म् पीतल के ≠) गिलट ≢) गायत्री मन्त्र अर्थ सहित)॥

हमारे पास श्री स्वामी दयानन्द महाराज जी कृत, पं० लेखराम जी कृत, पं० भीमसेन जी कृत, पं० तुलसीराम जी कृत; आदि महाशयों की भी पुस्तकें हैं ॥

ब्रह्मानन्द सरस्वती-प्रबन्ध कर्त्ता वैदिक पुस्तक प्रचारक हाल लाहौर गुमटी बाजार ॥

शिवलिङ्गपूजाविधान

शिवपुराणके अनुसार

पुस्तक सं० १८

पं० रामविलास मिश्र मन्त्री आर्य्यसमाज
शाहाबाद ज़ि० हरदोई अनुवादित.

॥ दोहा ॥

पूजा शिवके लिङ्गकी, जेहि विधि भई प्रचार ।
यहि पुस्तकमें सो लिखी, शिवपुराण अनुसार ॥

श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वती स्थापित
"वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड" द्वारा
प्रकाशित
पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक वेदप्रकाश
के प्रबन्धसे उनके स्वामियन्त्रालय
मेरठमें मुद्रित
आर्य्य संवत् १९७२९४८९९९ एप्रिल ९७ ई०
प्रथम वार २०००] [मूल्य)। एक पैसा

ओ३म्

शिवलिङ्गपूजाविधान।

कालचक्रने ऐसा पलटा खाया है और अविद्याने वह दिवस दिखाया है कि लोगोंको शत्रु मित्रका भी ज्ञान न रहा, जो कुछ स्वार्थीजनोंने धर्मकी आड़में उनसे कहा, वह उसीको ईश्वरवाक्य मान बैठे। चाहो वह उनकी प्रतिष्ठा खोदे, दीन ईमान बिगाड़दे और उनको संसारमें मुख दिखाने योग्य न रक्खै। पवित्र वेद जैसे सब संसारमें सच्चे व सबसे प्राचीन धर्मको भूल शत्रुओंके बनाये हुये कल्पित और गबरगंडसे भरे हुये गप्प १८ पुराणों को अपना धर्म मान लिया, इतना ही नहीं किन्तु उनकी प्रतिष्ठा व मान उससे भी अधिक कर दिया। इससे अधिक खेदकी और क्या बात होगी॥

"शिव" जो ईश्वरका पवित्र नाम है, उसके लिये व्यभिचारियोंने वह २ किस्से कहानी जोड़ दिये हैं कि जिनका वर्णन करते लज्जा आती है, लिखते हुये लेखनी थर्राती है परन्तु आजकल थोड़ेसे कुबुद्धि मुफ्तखोर अपनी रोटी जाती देख इस प्रकाशके समयमें भी इस अखण्डखण्ड को स्थिर रखना चाहते हैं; केवल यही नहीं किन्तु वेदा-

नुयायियोंको कलङ्की व अधर्मी बताते हैं, अतः सर्वसाधारणकी जानकारीके लिये हम शिवपुराणके श्लोक अनुवाद सहित पाठकोंकी भेंट करते हैं इसलिये कि सत्य और असत्यको परखें, और ऐसे गपोड़ोंको छोड़ें॥

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ४२

पुरा दारुवने जातं यद्वृत्तन्तु द्विजन्मनाम्।
तदेव श्रूयतां सम्यक् कथयामि यथाश्रुतम्।५।
दारु नाम वनं श्रेष्ठं तत्रासन्नृषिसत्तमाः।
शिवभक्ताः सदा नित्यं शिवध्यानपरायणाः।६।
त्रिकालं शिवपूजाञ्च कुर्व्वन्ति स्म निरन्तरम्।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्देवं मन्त्रैर्वा ऋषिसत्तमाः।७॥
एवं सेवां प्रकुर्व्वन्तो ध्यानमार्गपरायणाः।
ते कदाचिद्वने याताः समिदाहरणाय च।८।
एतस्मिन्नन्तरे साक्षाच्छङ्करो नीललोहितः।
विरूपश्च समास्थाय परीक्षार्थं समागतः॥९॥
दिगम्बरोऽतितेजस्वी भूतिभूषणभूषितः।

चेष्टाश्चैव कटाक्षश्च हस्ते लिङ्गञ्च धारयन् ।१०।
मनांसि मोहयन् स्त्रीणामाजगाम हरःस्वयम् ।
तं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्यस्ताः परं त्रासमुपागताः।११।

अर्थ–प्राचीन कालमें दारु वनमें द्विजोंका जो वृत्तान्त हुवा उसे हमने जैसा सुना है वर्णन करते हैं ॥५॥ एक दारु नाम सुन्दर वन था तहां ऋषियोंका वास था वे शिवके बड़े भक्त थे सदा उसीके ध्यानमें रहते ॥६॥ नाना भांतिके स्तोत्रों व मन्त्रोंसे त्रिकाल शिवजीका पूजन किया करते और ध्यानमें लगे रहते थे ॥७॥ एक दिन ऋषिजन वनमें लकड़ियां लेनेको गये ॥८॥ तब शिवजी परीक्षा के अर्थ नीलवर्णमिलित रक्तके सदृश शरीर किये, बुरा रूप बनाये ॥९॥ नङ्गे, तेजधारण किये हुये, *लिङ्ग हाथ में लिये ॥१०॥ स्त्रियोंके हृदयको लुभाते हुये उस वनमें आये जहां ऋषि रहते थे, उनको देख ऋषिपत्नियां भयभीत हुईं ॥११॥

*क्या इससे बढ़के निर्लज्जताका कोई काम हो सक्ता है, ऐसा काम तो अघोरी किया करते हैं।

नोट–प्रिय पाठक गण! देखा कि जिस वर्णनका नाम इन्होंने ज्ञानसंहिता रक्खा है वह महाअज्ञानसंहिता है, क्या इससे भी अधिक कोई बुराईकी बात हो सक्ती है कि परमात्मा जो महान् पवित्र है और काम क्रोधादि दुर्गुणोंसे रहित है, वह ऐसा असभ्य स्वांग भर अपने उन भक्तोंकी स्त्रियोंके सङ्ग (जो उसे मानते थे, मानते ही नहीं किन्तु रात्रि दिवस उसे पूजते थे) ऐसी अनुचित कार्य्यवाही करे, जो एक वन्यपुरुष भी नहीं कर सक्ता। अतः हमारी सन्ततिमें यह सारा कलङ्क वाममार्गियोंका है, जिन्होंने निज पातकोंका उत्तर बनानेके अर्थ शिवजीके माथे यह दोष लगाया, और वैसा ही उनका स्वरूप वर्णन किया। हम कदापि विश्वास नहीं कर सक्ते कि व्यास, जिनकी बुद्धि वेदान्तादि पुस्तकोंसे झलकती है ऐसी निर्लज्ज पुस्तक बनायें। जैसे इस समय होलीके भड़ुवे महात्मा कबीरका नाम धर बहुत सी व्यर्थ बातें बना लेते हैं, वैसे ही वेदधर्मके शत्रुओंने महर्षि व्यासका नाम रख शिवपुराणादि रच लिये हैं। ऐसा कौन सपूत भारत सन्तान होगा, जिसको अपने पिता शिव पर यह कलङ्क

देख लज्जा न आयेगी ॥

विह्वला विस्मिताश्चैव समाजग्मुस्तथा पुनः ।
आलिलिङ्गुस्तदा चान्याः करं धृत्वा तथापराः॥१२
परस्परन्तु संहर्षाद्गतश्चैव द्विजन्मनाम् ।
एतस्मिन्नेव समये ऋषिवर्य्याः समागमन् ॥१३॥
विरुद्धं वृत्तकं दृष्ट्वा दुःखिताः क्रोधमूर्च्छिताः ।
तदा दुःखमनु प्राप्ताः कोऽयं कोऽयं तथाऽब्रुवन्१४
यदा च नोक्तवान् किञ्चित् तदा ते परमर्षयः ।
ऊचुस्तं पुरुषं ते वै विरुद्धं क्रियते त्वया ॥१५॥
त्वदीयश्चैव लिङ्गञ्च पततां पृथिवीतले ।
इत्युक्ते तु तदा तैस्तु लिङ्गश्च पतितं क्षणात् ॥१६॥

अर्थ—वे स्त्रियां घबराईं व आश्चर्यित हुईं परन्तु फिर आये पुरुषको देख हर्षसे वह ऋषियोंकी स्त्रियां हाथमें हाथ मिला आपुसमें *आलिङ्गन करने लगीं ॥१२॥ इतने

*विचारे ऋषियोंकी स्त्रियों पर भी कलङ्क लगा दिया क्या ऋषिपत्नियां ऐसी ही होती हैं ? ।

में ऋषि लोग आगये ॥१३॥ और महादेवजीके अनुचित व्यवहारको देख दुःखी हुये, क्रोधसे विक्षिप्त हो कहने लगे "यह कौन है,, ॥१४॥ जब शिवजी कुछ न बोले, तब ऋषियोंने शाप दिया कि "तुमने बुरा कर्म किया ॥१५॥ तुम्हारा लिङ्ग कटके गिर पड़े,, इतना कहते ही तुरंत पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥

नोट—हमें इसपर नोट लगाते लज्जा आती है न्यायप्रिय पाठक स्वयम् समझ लें। हे पौराणिक भाइयो ! क्या आप ऐसे गपोड़ोंको वेदोंका ज्ञान बताते हैं, आपकी व आपके चेलोंकी बुद्धि प्रशंसनीय है ॥

तल्लिङ्गञ्चाग्निवत् सर्व्व ददाह यत् पुरःस्थितम् ।
यत्र यत्र च तद्याति तत्र तत्र दहेत् पुनः ॥१७॥
पाताले च गतं तच्च स्वर्गे चापि तथैव च ।
भूमौ सर्वत्र तद्भ्रान्तं कुत्रापि तत् स्थितं न हि १८
लोकाश्च व्याकुला जाता ऋषयस्तेऽपि दुःखिताः ।
न शर्म्म लेभिरे क्वापि देवाश्च ऋषयस्तथा॥१९॥
ते सर्व्वे च तदा देवा ऋषयो ये च दुःखिताः ।

न ज्ञातश्च शिवो यैस्तु ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥२०॥
तत्र गत्वा तु तत् सर्वं कथितं ब्रह्मणे तदा ।
ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा प्रोवाच ऋषिसत्तमान् ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

ज्ञातारश्च भवन्तो वै कुर्व्वन्ति गर्हितं पुनः ।
अज्ञातारो यदा कुर्य्युः किं पुनः कथ्यते तदा ॥२२॥
विरुध्यैव शिवं देवाः कुशलं कः समीहते ।
गृहे समागतं दूरादतिथिं यः परामृषेत् ॥२३॥
तस्यैव सुकृतं नीत्वा स्वीयञ्च दुष्कृतं पुनः ।
संस्थाप्य चातिथिर्याति किं पुनःशिवएव च २४
यावल्लिङ्गं स्थिरं नैव जगतां त्रितये शुभम् ।
जायते न तदा क्वापि सत्यमेतद्वदाम्यहम् ।२५।
भवद्भिश्च तथा कार्य्यं यथा स्वास्थ्यं भवेदिह ।
इत्युक्तास्ते प्रणम्योचुः किं कार्य्यं तत् समादिश ॥
इत्युक्तश्च तदा ब्रह्मा तान् प्रोवाच तदा स्वयम् ।

आराध्य गिरिजां देवीं प्रार्थयध्वं शुभां तदा ।२७।
योनिरूपं भवेच्चेद्वै तदा तत् स्थिरतां भजेत् ।
तदा प्रसन्नां तां दृष्ट्वा तदेवं कुरुते पुनः ॥२८॥

अर्थ–उस लिङ्गने उन सब पदार्थोंको जो उसके सन्मुख थे, * अग्निकी नाईं भस्म कर दिया । जहां २ वह लिङ्ग गया वहां २ वैसे ही जलाता चला गया ॥१७॥ पाताल स्वर्ग पृथ्वी आदि सब स्थान जलाता, †उछलता, कूदता किसी स्थान पर स्थित न हुआ ॥१८॥ तब सब जन विकल होगये, और वे ऋषि भी दुःखी हुये, कहीं पर ऋषियों व देवताओंको सुख न मिला ॥१९॥ तब वे देवता व ऋषि जो दुःखी होरहे थे, और जिन्होंने शिवजी को नहीं §पहचाना था, सब ब्रह्माके पास गये ॥ २० ॥ और सब हाल ब्रह्मासे कहा । ब्रह्मा उनके वचन सुनके

* शिवलिङ्ग क्या था बला था ।
† इसने तो ·················· को भी मात किया ।
§पौराणिक भाइयो ! तुम तो देवताओंको अन्तर्यामी बताते हो और तुम्हारा पुराण ना समझे ?

बोला कि ॥२१॥ तुमने जानें बूझके *दुष्कर्म किया, अब जो †अज्ञानसे कुकार्य्य करै, उसको क्या कहा जावे ॥२२॥ हे देवताओ ! शिवजीको क्रोधित करके कौन सुखी रह सकता है ॥ २३ ॥ जो दूरसे आये हुयेका अतिथिसत्कार नहीं करता, उसके जितने सुकर्म हैं, उनको तो वह ले-जाता है, और अपने किये दुष्कर्मोंको छोड़ जाता है । तिसपर शिवजीसे अतिथिका अपमान करना थोड़ी बात नहीं ॥२४॥ देखो जबलों यह लिङ्ग स्थिर न होगा, तबलौं जगत्में कहीं पर सुख न होगा । यह मैं सत्य कहता हूं ॥२५॥ अब तुमको ऐसा करना चाहिये, जिससे यह लिङ्ग स्थिर हो । यह ब्रह्माने उनसे कहा, तब वह ऋषिगण ब्रह्माको दण्डवत् कर बोले कि अब हमें क्या करना चाहिये, आप बताइये ॥२६॥ तब ब्रह्मा बोले कि तुम पार्वतीका भजन

* वाह २ अपनी स्त्रियोंका धर्म बचाना दुष्कर्म हुआ क्या वे उनको भ्रष्ट होने देते ।

† पहले तो सिखा जानते बूझते, और अब कहा अज्ञानसे । भूलेको स्मरण शक्ति नहीं होती ।

करके उसकी स्तुति करो ॥२७॥ जब पार्वती योनिके सदृश होजाय तब तुम इस लिङ्गको उसमें डाल देना ॥२८॥

नोट—उक्त श्लोकोंमें जैसी कुछ अश्लील व सभ्यताविरुद्ध बातें लिखी हुई हैं, वह सब पर प्रकाशित हैं, हम अधिक नोट चढ़ाना नहीं चाहते, और धर्मसभाके सहायकों और महामण्डल वालोंका ध्यान आकर्षित करते हैं कि लज्जित होवो ॥

एवं कृते च स्वास्थ्यं वै भविष्यति न संशयः
इत्युक्तास्ते तदा देवाः प्रणिपत्य पितामहम्।३७।
शिवस्य शरणं गत्वा प्रार्थितः शङ्करस्तदा ।
पूजितः परया भक्त्या प्रसन्नः शङ्करस्तदा।३८।
पार्व्वतीञ्च विना न्यान्या लिङ्गं धारयितुं क्षमा ।
तया धृतञ्च शान्तिञ्च गमिष्यति न संशयः।३९।
गृहीत्वा चैव ब्रह्माणं गिरिजा प्रार्थिता तदा ।
प्रसन्नां गिरिजां कृत्वा वृषभध्वजमेव च।४०।

पूर्वोक्तञ्च विधिं कृत्वा स्थापितं लिङ्गमुत्तमम् ।
मन्त्रोक्तेन विधानेन देवैश्च ऋषिभिस्तदा ।४१।

अर्थ—प्रथम उसे प्रसन्न करो, ऐसा करने से अवश्य यह लिङ्ग स्थिर होजायगा, और जगत्में स्वस्थता हो जायगी । जब ब्रह्माने ऐसा कहा, तो वे ऋषिजन उसको प्रणाम करके ॥३७॥ शिव जी के पास गये । बड़ी भक्तिसे प्रार्थना की और पूजन किया। जब शिव जी प्रसन्न हुये ॥३८॥ तो बोले, कि पार्वतीके अतिरिक्त इस लिङ्गके धारनेकी शक्ति अन्य किसीमें नहीं है जब वह इसे धारण करेगी तो यह शान्त हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं ॥३९॥ तब उन ऋषियोंने ब्रह्माको सङ्ग ले पार्वतीके निकट जाके प्रार्थना की और शिवको भी प्रसन्न करके ॥ ४० ॥ विधिपूर्वक देवता व ऋषिओंने मन्त्र पढ़के उस उत्तम लिङ्ग को पार्वतीमें स्थापित किया (तबसे ही लिङ्गपूजा चली) ॥

नोट—यह श्लोक ऐसे अश्लील हैं कि हमें नोट लगाते लज्जा आती है, पर इतना अवश्य लिखे देते हैं कि संसार

में ऐसा कोई मत नहीं है कि जिसने ऐसी व्यर्थ बातों को उचित रक्खा हो । हबशी जो सबसे मूर्ख गिने जाते हैं, वह भी कदापि निज माता पिताके लिये ऐसी कहावत नहीं मानते, जैसी कि शिवपुराण वालोंने अपनी माता पार्वती व पिता शिवके अर्थ गढ़ी हैं । प्यारे हिन्दुओ ! तनिक न्याय दृष्टिसे देखो, कि ऐसी सभ्यताविरुद्ध अश्लील बातोंको मानके क्या आप अन्य सभ्य तावलम्बियोंको अपना मुख दिखा सक्ते हैं ? कदापि नहीं। प्यारो ! अब तो चेतो और इन निरर्थक बातोंको त्यागो । इसी कारण सहस्त्रों हिन्दू ईसाई व मुसलमान होगये व होजायंगे जो आप कामी व भोजनभट्टोंकी बातें मानेंगे । प्रियवरो ! आप केवल वैदिक धर्मको मानो और इनको त्यागो । लोग तुम्हें बहुत बहकायंगे, फुसलायंगे, तुम्हारी हंसी उड़ायंगे पर याद रक्खो कि सत्य सत्य ही है और इनका कहना केवल रोटीके अर्थ है, न धर्मके निमित्त । हम ऐसेश धूर्तपनकी और भी धूलि उड़ावेंगे ॥

शिवके ठीक २ अर्थ लीजिये "शिवु, कल्याणे" इस धातुसे शिव शब्द सिद्ध होता है ।

"बहुलमेतन्निदर्शनम्" इससे शिव धातु माना जाता है। जो कल्याणस्वरूप और कल्याण करनेवाला है उसी को शिव कहते हैं। और यह गुण एक परमात्मा ही के हैं, अतः शिव नाम उस निर्विकार ज्योतिःस्वरूपका है॥

फल—परमानन्द व मुक्ति चाहनेवाले ऐसे कामी और ऐसेकुरूपकी उपासना व ध्यान करना तो एक ओर उसे देखना भी नहीं चाहते। यह तो होलीके होलियारोंके योग्य है। धन्य हैं वे, जो सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्माके ध्यानमें निमग्न रह सदा कल्याणके भागी होते हैं॥

लिङ्गपुराणसे पूर्व बुद्धदेव हो चुके थे, जिसको प्रायः लोग बौद्धावतार कहते हैं, (शिवपुराण पूर्वार्द्धखण्ड अध्याय ५ श्लोक ३ से ९ तक)

परन्तु इतिहासवेत्ताओंने जयस्तम्भ अथवा स्तूतों और बौद्ध मन्दिरों और आर्य्यावर्त्त, लङ्का, ब्रह्मा, चीन और तिब्बतकी पुस्तकों और अजायबघरकी मूर्त्तियोंसे सिद्ध किया है कि बुद्ध विक्रमीय संवत् से ६१४ वर्ष पूर्व हुये थे और ८८ वर्षकी आयुमें उनका देहान्त हो गया था जिसको सं० १९५१ विक्र० तक २५६५ वर्ष होते हैं और व्यासजीको

५९५४ वर्ष हुये हैं अर्थात् बुद्ध ४२९ वर्ष व्यासजीसे पीछे हुये हैं अतएव व्यासजी पुराणोंके कर्त्ता नहीं हो सकते।

२—रामानुज विक्रमकी १२ वीं शताब्दीमें हुये थे, इस में सब इतिहासवेत्ताओंकी सम्मति है, और रामानुजने वैष्णवमत चलाकर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मसे लोगोंको चक्राङ्कित बनाया, परन्तु वैष्णवमतका खण्डन लिङ्गपुराण में है।

शङ्खचक्रे तापयित्वा यस्य देहः प्रदह्यते।
सजीवन्कुणपस्त्याज्यः सर्वधर्मबहिष्कृतः।१।

अर्थ—जिसके शरीर पर तपाकर शङ्ख, चक्रकी छापें लगाई गई हैं वह जीतेजी मुर्दा और सर्व धर्मोंसे पतित के समान त्यागने योग्य है।

इससे स्पष्ट है कि रामानुजके मतके पीछे उसका खण्डन लिङ्गपुराणमें हुआ "प्राप्तौ सत्यां निषेधः" अर्थात् जो वस्तु है, उसका ही निषेध होता है, और लिङ्गपुराणका नाम १८ पुराणोंमें है, रामानुज विक्रमकी १२ वीं शताब्दीमें हुये थे अर्थात् आज तक उनको हुये ७५१ वर्ष

होते हैं और व्यासजी का जैसा ऊपर कहा है ४९९४ वर्ष हुये हैं अतएव व्याससे रामानुज ४२४६ वर्ष पीछे भये, इस लिये व्यास लिङ्गपुराणके कर्त्ता नहीं हो सक्ते हैं। (और लिङ्गपुराण शिवपुराणसे भिन्न नहीं)। इति ॥

—※—

वैदिकपु० प्र० फण्डसे छपी पुस्तकोंका सूचीपत्र॥

पुरुषसूक्त" अर्थसहित)॥ ईसाईमत संसारमें कैसे फैला)॥ महाशङ्कावली)। नीतिशिक्षावली)। रामायणका आह्ला)। सुशीलादेवी)। ईसाईमतलीला)। ईसाईमतखण्डन)। १ला भाग)। दूसराभाग)। नित्यकर्मविधिः)। श्रीरामजीकादर्शन, कलियुगलीला और काशीमहात्म्य)। स्वामीशङ्करानन्दके अनमोल उपदेश, पुराणकिसने बनाये, अमेरिकानिवासी मि० डेविसके आर्य्यसमाज और स्वामीदया० सरस्वती महाराज पर विचार, ये पुस्तकें आधे २ पैसे की हैं।

विना गुरुके संस्कृत सिखाने वाले पुस्तक—संस्कृतकी प्रथम पुस्तक)॥। द्वितीय -)। तृतीय =)॥। नालिकाविष्कार)॥। शास्त्रार्थ [illegible]राणा =) प्रश्नोत्तररत्नमाला -)

पता—स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामी प्रेस मेरठ

ओ३म् परमात्मने नमः

मनुष्यजन्मकी सफलता

श्रीमान् ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी महाराजका एक व्याख्यान जो ता० १५।७।९४ को बम्बईमें दिया था उसे एक आर्य्यपथिकने गुजरातीसे अनुवाद किया।

पुस्तक सं० १९

श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वती स्थापित "वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड" द्वारा प्रकाशित

पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक वेदप्रकाश के प्रबन्धसे उनके स्वामियन्त्रालय मेरठमें मुद्रित

आर्य्य संवत् १९७२९४९९९। [illegible] ९७ ई०

प्रथम वार २०००] [मूल्य)॥ दो पैसा

सीताचरित्र हिन्दी प्रथम भाग ॥।) इस पुस्तक में पर स्पर स्त्रियोंकी बात चीतमें स्त्रीधर्म्म तथा शिक्षाका उपदेश है पुस्तक बड़ा उत्तम है।

प्रेमोदयभजनावली मू० ≡) यह पुस्तक बा० रामकिशोरजीकी बनाई है। इसमें जो २ ग़ज़ल ठुमरी आदि वेश्या गाती हैं उसी ध्वनि पर भक्ति वैराग्य आदिके भजन हैं।

भजनामृतसरोवर =) सङ्गीतरत्नाकर =) ये पुस्तक बलदेवसिंह सवारने बड़े २ उत्तम राग, भक्ति, वैराग्य, देशोन्नति के बनाये हैं पुस्तक बड़ी उत्तम हैं दूसरी बार छपी हैं।

लेखदीपिका मू० ।) इसमें नीति, धर्म, शिक्षा आदि के बड़े उत्तम ९ लेख हैं जो मिडिलके विद्यार्थियोंको लेख लिखने को बड़ी उपयोगी है।

दमयन्तीस्वयंवरनाटक मू० ≡) यह नाटक हिन्दीप्रदीप के एडीटरने नैषध काव्य से बनाया है। नाटककी भाषा बड़ी उत्तम है।

श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती महाराजकृत पुस्तकें सत्यार्थप्रकाश जिल्द वाला २।) इत्यादि अन्य पुस्तक भी मिलें गे। धर्म्मवीर पं० लेखरामजीकृत—सबूततनासुख १।) तकज़ीबबुराहि एहमदिया १।) आदि और भी।

पता—स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्वामि प्रेस मेरठ

ओ३म् तत्सत् परमात्मने नमः।

मनुष्यजन्मकी सफलता।

ता० १५ जुलाई सन् १८९४ ईसवी के दिन फरामजी कावसजी इन्स्टीट्यूट में रावबहादुर आनरेबल जस्टिस महादेव गोविन्द रानडेके सभापतित्व में ब्रह्मचारी नित्यानन्दजी महाराजने "मनुष्यजन्मकी सफलता" पर एक व्याख्यान दिया, वह निम्नलिखित है॥

आजका मेरा विषय "मनुष्य जन्मकी सफलता" है। यह सफलता मनुष्यको किस रीतिसे प्राप्त होवे इस विषयमें मुझे आज विवेचन करना है। मनुष्यकी प्रकृति अनेक प्रकारकी हैं, परन्तु इस जगत्में सर्व मनुष्यजाति का विद्वान् और अविद्वान् ऐसे दो भागमें समावेश हो सकता है। अविद्वान् लोग रेलवेके इंजनकी गति अनुसार चलने वाले हैं, उनमें सारासार विचारका अभाव होता है। इञ्जन केवल चलना ही जानता है, अमुक स्थान पर कौनसा निश्चित स्थान है यह लखनऊ है या बरेली, इस विषयका उसको लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है। तद्वत् अविचारी मनुष्योंका वर्ताव होता है, वे "गतानुगति-

कता " के अनुसार खान पानमें निमग्न रहकर अपना सब आयु निरर्थक व्यतीत करते हैं। "हमारा क्या कर्त्तव्य है अथवा हमारा जन्मलाभ क्या है " इस विषयमें उन को यत्किञ्चित् ज्ञान या भान नहीं होता। अपना क्या कर्तव्य है यह मनुष्यमात्रको जानना चाहिये। अथर्व वेद में लिखा है कि "यथा अहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथर्तव ऋतुभिर्यन्ति साकम् " जैसे दिवस रात्री वैसे ऋतु एकके पश्चात् दूसरी अनुक्रमसे आती हैं तद्वत्! हे मनुष्य तू अपना कर्तव्य कर, तुम अपना कर्तव्य अहर्निश नियत समय पर करो। जैसे स्कूलके विद्वान् शिक्षक एशियाखण्ड की भूगोलकी शिक्षा देते समय प्रथम अपने शिष्योंको उसका सामान्यज्ञान देते हैं, उसके पश्चात् प्रत्येक देश और उसका विशेष ज्ञानका बोध कराते हैं और उसका उत्तम रीतिसे ज्ञान उसके मनमें बैठाने के लिये जैसे नक्शेकी सहायता लेते हैं क्योंकि पुस्तक द्वारा उत्तम ज्ञान होना सम्भव नहीं है तद्वत् वेदरूपी पुस्तक और सृष्टिरूपी नक्शाके आधारसे मनुष्यका कर्तव्य क्या है यह परम कृपालु परमेश्वरने हम सबोंको बताया है वह आप

महाशयोंके समक्ष आज मैं यथाशक्ति निवेदन करता हूं ॥

जिस पृथ्वी पर हम लोग निवास करते हैं वह अपना कर्तव्य करनेमें कभी चूकती नहीं है। प्रति दिवस चौबीस घण्टेमें वह एक बेर अपने आस पास फिरती है और प्रति वर्षमें एक बेर सूर्यकी प्रदक्षिणा करती है। अप्, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र इत्यादि भी अपने कार्य्यसे च्युत नहीं होते। जड़ वस्तुके विषय पर कुछ न कह कर हिलने चलने वाले प्राणीके प्रति लक्ष्य देवेंगे तो ज्ञात होजायगा कि वे भी अपना २ कर्तव्य योग्य रीत्यनुसार कर रहे हैं तद्वत् हमारी इन्द्रियां भी अपना कर्तव्य यथानियम पालन करती हैं। इस ब्रह्माण्डमें ऐसी एक भी वस्तु दृष्टिपथमें नहीं आती है कि जो अपना कर्तव्य न करती होवे, तब सर्वमें श्रेष्ठ और ज्ञानी ऐसा जो मनुष्य, वह जो अपना कर्तव्य भूल, व्यर्थ भाररूप हो जावे तो वह कितना दुःखद और संतापजनक होवे ? ॥

"कर्तव्य" यह विषय बड़ा विस्तृत है। हमारा कर्तव्य अनेकधा है; परन्तु आत्मरक्षण, जीविका, सन्तान रक्षण, समाजसंस्था, मनोरञ्जन, और धर्म व ईश्वरोपासना,

ऐसे उसका छः भागमें समावेश होता है। इस विषयमें आप महाशयोंके आगे सूक्ष्म रीतिसे विवेचन करता हूं, कारण आप सर्व बहुश्रुत और विद्वान् हैं ॥

हमारे ऋषिवर्य्य अत्रि महाराजने चरक नाम ग्रन्थमें दिखाया है कि " प्राणैषणा धनैषणा परलोकैषणेति आसान्तु खल्वैषणानां प्राणैषणा तावत् पूर्वतरमापद्यते कस्मात्प्राणपरित्यागे हि सर्व परित्यागः "

अर्थ-प्रत्येक मनुष्यको प्राणकी, धनकी, और परलोककी ऐसी तीन प्रकारकी इच्छा होती है; इनमें से प्राणैषणा मुख्य है क्योंकि प्राणके त्याग पर सबका त्याग होजाता है। प्राणका रक्षण करना यह मनुष्यका प्रथम कर्त्तव्य है। धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष इन चारोंकी प्राप्ति ही मनुष्यजन्मकी सफलता है वह केवल प्राणको अवलम्बन कर रही है। जो शारीरिक प्रकृति ठीक न होवे तो इसमें का कोई भी बन नहीं पड़ता इसी लिये आत्मरक्षण मनुष्यका प्रथम कर्त्तव्यकर्म है। प्रत्येक मनुष्यको शारीरिक प्रकृति तीरोग रखने के लिये आरोग्य सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है, परन्तु इस प्रकारका ज्ञान

प्राप्त करके तदनुसार अपने शरीरका रक्षण करने वाले इस देशमें सम्प्रति कितने मिलेंगे ? उष्णकालमें जब अतिशय तृषा लगती है उसे मिटानेके लिये सारासारका विचार किये विना गट २ बहुत पानी पीके शरीर बिगाड़नेवाले हमारे देशमें थोड़े न मिलेंगे। नियम विरुद्ध चलकर अपना आरोग्य विगाड़नेवालोंके अनेक उदाहरण मिल जायेंगे ॥

इस देशमें मंजूरी कर दीनतासे, अति दुःखसे अपना और अपने कुटुम्बका यथायोग्य संरक्षण न करने वाले कुछ न्यून नहीं है। दिनमें मेहनत मंजूरी करके दो तीन आने पैदा करनेवाले अपने बाल बच्चोंका और अपना पोषण जब यथोचित नहीं कर सक्ते तब वे दुःखी जीव एक मन भर अन्न तीन कोस लेजानेकी शक्ति न हो तथापि उदरनिमित्त दो मन अन्न छः कोस ले जाके अपनी प्रकृति बिगाड़ते हैं और शीघ्र मृत्युके पंजेमें फंस जाते हैं॥

अब मध्यम श्रेणीके मनुष्योंकी स्थिति देखिये। इनको प्रातःकाल नव बजे नौकरी पर हाज़िर रहना पड़ता है दस २ बारह २ घण्टे तक काम करना पड़ता है

तब उन्हें निर्वाहयोग्य दस पन्द्रह रुपैयेका वेतन मिलता है। काम कर २ के बीमार होते हैं परन्तु वे बिचारे क्या करें? खानेको तो प्रति दिन प्रातः और सायङ्कालको चाहिये ही। इस प्रकारके मध्यम श्रेणीके मनुष्योंकी दुःखात्मक स्थिति है। बड़े विद्वानोंकी स्थिति तो और ही प्रकारकी है बी० ए०, एम० ए०, एल० एल० बी० इत्यादि उपाधि प्राप्त करनेको उनको अतिश्रम करना पड़ता है पश्चात् उनको उत्तम नौकरी या रोज़गार प्राप्त होता है, परन्तु शरीरसे विचारे क्षीण होजाते हैं अतएव उनसे विशेष परिश्रम हो नहीं सक्ता। खाली लोगोंको आडम्बर दिखानेके लिये वे गाड़ी घोड़े पर सवार होके फिरते हैं और आनन्द प्राप्त करते हैं। उनको देखके स्कूलके विद्यार्थी ऐसी लालसा करते हैं कि हम भी बी० ए०, एम० ए० होवें तो ऐसा सुख और चैन हमें भी प्राप्त होवे इसलिये वे अतिश्रम करके और शारीरिक आरोग्य का रक्षण किये विद्याध्ययन करते हैं और इसके अतिरिक्त स्कूल और कालेजमें फ़िलासफ़ी आदि गहन विषय सीखनेके लिये मस्तिष्क ख़ाली करना पड़-

ता है तब वह ध्यानमें रख सक्ता है। और घरकी पीड़ा तो अलग ही रही। स्वतः तो दुर्बल और घरमें सोलह सतरह वर्षकी उनकी स्त्री होती है वहां भी घर संसार संभालना चाहिये, वह भी एक दुःखमें दुःख बढ़ाने वाला होजाता है। बड़े परिश्रमसे एकाध परीक्षा पारङ्गत हुये पश्चात् नौकरी प्राप्त करनेकी उत्सुकता, उसमें भी सबध पर निष्फलता प्राप्त होती है। अब शरीरका क्या दोष? मन बिगड़ता है, आंखें भीतर घुस जाती हैं और अन्न भी ठीक पाचन नहीं होता। अन्तमें वे बिचारे जलदी यमदेवके शरण पहुच जाते हैं। मनुष्यकी जन्म मृत्युकी रिपोर्टसे ज्ञात हुआ है कि दूसरे मनुष्योंसे ग़रीब बिचारे प्रायेण जलदी मरते हैं। वे जलदी मृत्युको प्राप्त होवें ऐसी ईश्वरकी उनपर कुछ अकृपा है क्या? ऐसे होने का कारण यही है कि उनके ऊपर शिक्षण आदिका बड़ा भारी बोझ आगिरता है॥

अपने शरीरकी प्रकृति नीरोग रखने के लिये बहुत न्यून मनुष्य इस विषय पर विचार करते हैं, हरेक मनुष्य को वैद्यक सम्बन्धी थोड़ा बहुत ज्ञान होना चाहिये। आ-

श्विनमें करेले खानेसे पित्तकी वृद्धि होती है और कार्त्तिक में दही खानेसे ज्वरादि प्राप्त होते हैं, इस लिये अमुक ऋतुमें अमुक वस्तु सेवन करने से प्रकृति नीरोगी रहे ये तत्सम्बन्धी ज्ञान प्रत्येक मनुष्यको होना चाहिये। विशेष करके व्याधि उपाधिका मूल हमारा प्रमाद ही है। व्याधि-ग्रस्त हुए पश्चात् औषधोपचार करने को कितनी हानि होती है? अत्यन्त प्यारे पुत्र कलत्र वे अच्छे नहीं प्रतीत होते, वैर्य्यकी भ्रंशता, उपयोगी समयका नाश, औषधोपचार सम्बन्धी व्यय, घरकी सर्वमण्डलीकी चिन्तातुर दशा, डाक्टर लोगोंकी खुशामद इत्यादि ऐसी २ अनेक आपत्ति आ पड़ती हैं कि एक बेर प्रकृति बिगड़ी वह पूर्ववत् कालत्रयमें नहीं होती। पतञ्जलि ऋषिने योग-शास्त्र में लिखा है कि "हेयं दुःखमनागतम्" अर्थात् प्रत्येक मनष्यको ऐसा प्रयत्न करना योग्य है कि भविष्य में दुःख न हो जावे। सबसे प्रथम कर्त्तव्य शरीर संरक्षण है। व्याधि होनेसे पूर्व ही सर्व महाशयोंको सावधान रहना चाहिये, हमेशा अन्न कैसा होना चाहिये इस विषयमें हमारे भाइयोंको कुछ भी बोध नहीं है यह क्या थोड़ी

लज्जाकी बात है?।

मनुष्यकी साधारण आयुर्मर्यादा १०० वर्षकी है "शतं जीवेम शरदः शतम्" ऐसा वेदमें वर्णन किया है और "आयुषं जमदग्नेः" इत्यादि प्रमाण है। योगाभ्यासके बलसे ३०० वर्ष पर्य्यन्त मनुष्य जी सक्ते हैं, परन्तु साम्प्रत कालमें १००० में १० मनुष्य बड़े भाग्यसे १०० वर्ष तक जीते मिलेंगे। इसका मुख्य कारण यह है कि हमलोग ब्रह्मचर्य्य, आचरण, खान, पान प्रत्येक पर सर्वथा (बिलकुल) लक्ष्य नहीं देते। मनुष्य "आत्मरक्षण क्या है" इसे यथार्थ जानते होवें और शास्त्राधारसे चलें तो सौ वर्ष पर्य्यन्त सहज में जी सकें॥

हमारा दूसरा कर्त्तव्य "जीविका" है। शरीरका पोषण करने के लिये मनुष्यको कुछ न कुछ उद्यम करना चाहिये, उद्यम विना किसी का भी निर्वाह नहीं होता। सर्व मनुष्य उद्योग करते हैं परन्तु यह योग्य है या नहीं इस विषयमें बहुत दीर्घदृष्टि लक्ष्य देते हैं। बहुत से प्रारब्ध को पकड़ के बैठने वाले होते हैं। हिन्दू, ईसाई और मुसलमान इत्यादि विजातीय लोगोंके प्रारब्धको मानने

में मतभेद है, हम लोग अपने पूर्वजन्मोपार्जित कर्म्मको प्रारब्ध समझते हैं और वे लोग खुदाकी (ईश्वर की) इच्छाको प्रारब्ध मानते हैं। जो २ फलप्राप्ति हमको होती है वह सर्व पूर्वजन्मकर्म्मानुसार है ऐसा हमारा मानना है। परन्तु विना उद्यम प्रारब्धमात्रसे ही फलप्राप्ति नहीं होती। महाभारत शान्ति पर्व अ०३२१ श्लोक ३२ में लिखा है कि:-

यथा क्षेत्रं मृदूभूतमद्भिरासावितं तथा।
जनयत्यङ्कुरं कर्म नृणां तद्वत्पुनर्भवः॥

पूर्वजन्मका फल बीज रूप है उस बीजको उद्यम रूपी भूमिमें बोया न होवे किन्तु सन्दूकमें बांध रखा होवे तो क्या उसके फल प्राप्त होंगे? उसको योग्य स्थानमें बोया होवे, उत्तम खात डाला होवे, जल सिञ्चन किया होवे तो पश्चात् फलकी आशा रखी जावे। प्रकाश और दृष्टि इस उभयके संयोगसें वस्तु दृष्टिगोचर हो सक्ती है, केवल प्रकाश या केवल दृष्टिसे ईप्सित फलप्राप्ति नहीं होती। तद्वत् उद्योग और प्रारब्धके संयोगसे फलप्राप्ति समझनी। केवल प्रारब्धसे कोई फल नहीं मिलता।

उद्योगको विशेष प्राधान्य दिया है महाभारतके वनपर्व अ० ३२ में व्यास मुनिने कहा है कि:-

यश्च दिष्टपरो लोके यश्चापि हठवादिकः।
उभावपि शठावेतौ कर्म्मबुद्धिः प्रशस्यते॥
यो हि दिष्टमुपासीनो निर्विचेष्टः सुखं शयेत्।
अवसीदेत्स दुर्बुद्धिरामे घट इवोदकम्॥२॥

अर्थ-जो पुरुष प्रारब्ध पर सर्व विश्वास रख उद्योग नहीं करता और स्वस्थ बैठा रहना है उसका नाश होता है। संसारमें प्रारब्धको अवलम्बन करके बैठनेवाले और "यद्भावि तद्भवति" ऐसा कहनेवाले मूर्ख होते हैं। उद्योगके सिवाय सर्व व्यर्थ है। उद्योग विषय बुद्धि रखने वाले पुरुष श्रेष्ठ होते हैं। इस प्रसंग पर जिस मकान में एकत्र हुये हैं वह कुछ स्वतः प्रारब्धसे निर्माण नहीं हुवा है, अब अनेक पुरुषोंने अनेक प्रकारका उद्योग किया तब यह मन्दिर अस्तित्वमें आया है। उद्योगसे क्या कार्य्य होता है और प्रारब्ध पर विश्वास रखनेसे मनुष्य

कैसी स्थितिको पहुंचता है? यह इंग्लैण्ड और हमारे इस आर्य्यावर्त्त देशकी स्थिति देखनेसे सहजमें ज्ञात होजायगा। देखो शुक्रनीतिमें कहा है कि :-

धीमन्तो वन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरुषं महत्।
अशक्ताः पौरुषं कर्त्तुं क्लीबा दैवमुपासते ॥

अर्थ-जिनका चरित्र वन्दनीय है ऐसे महात्मा उद्योग को ही श्रेष्ठ मानते हैं उद्योगको न माननेवाले ऐसे जो नपुंसक वे प्रारब्धको चिल्लाते हैं और उद्योगको नहीं करते। विष्णुशर्माने पञ्चतन्त्रमें कहा है :-

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीर्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति। दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्रदोषः ॥

अर्थ-सिंहके सदृश जो उद्योगी पुरुष होता है उसीको लक्ष्मी अर्थात् धन मिलता है और जो कायर पुरुष होते हैं वे केवल प्रारब्ध २ ही पुकारा करते हैं उनके हाथ कुछ भी नहीं आता, वे आजन्म दरिद्र ही बने रहते हैं।

उद्योग करे पश्चात् "यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः" ऐसा ग्रन्थकर्त्ताका वचन है इसका अर्थ हमारे बड़े २ उपाधि धारण करनेवाले ऐसा करते हैं कि यत्न करे पश्चात् जब कार्य्यसिद्धि नहीं होती तब उसमें हमारा क्या दोष? जितना हमसे भया उतना किया, अब हमारा कुछ दोष नहीं है। परन्तु ऐसा अर्थ करने में ये लोग बड़ी भूल करते हैं। कविका कथन इन लोगोंके कथनानुसार नहीं है किन्तु "कोऽत्र दोषः" अर्थात् "यत्ने को दोषः" अर्थात् यत्नमें क्या न्यूनता रही है जिससे कार्य्यसिद्धि नहीं होती। हमारे लिये क्या सर्वशक्तिमान् ईश्वरको उद्योग करना चाहिये? हमको जिस रोटीकी सदा आवश्यकता है क्या उसे ईश्वर बना देगा? ईश्वरका कार्य्य पृथ्वी आदि सृष्टि की सर्व वस्तु सृजनेका है और वह उसने किया है, करता भी है। जीवका कार्य्य जीवको ही करना चाहिये। ईश्वर देगा तो हम खायंगे यह कहना कैसा भूल भरा हुवा है। उद्योग अनेक प्रकार का है जिसको जैसा अच्छा लगे वैसा करना। संक्षेपसे शरीरका जिससे संरक्षण होवे ऐसा उद्योग सर्व मनुष्योंको करना चाहिये ॥

प्रत्येक मनुष्यको ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करके कमसे कम २५ वर्ष पर्य्यन्त विद्याध्ययन करना। पश्चात् धनोपार्जन करके स्वसम्पादित द्रव्यसे विवाह करना। ऐसी प्राचीन कालकी पद्धति थी। साम्प्रत समयमें बहुत जेंन्टिलमैन धर्म्म छोड़ द्रव्योपार्जन करने लगे हैं। धर्म्म त्याग कर अधिक धन मिलता होवे तो भी वह कर्म्म सहसा न करना चाहिये। जिस धर्म्मसे परिणाममें दुःख प्राप्त हो वह सत्यधर्म ही नहीं। ऐसे धर्मका त्याग ही करना चाहिये। जिस धर्म्मसे अपना हित होवे उसीको धर्म्म कहना और वास्तविक रीतिसे वही धर्म्म है। सम्प्रति सात २ आठ २ वर्षके अज्ञान बालकोंका, जो लग्न क्या है? वह किस उपयोगमें आता है, इस विषयका विचार भी नहीं कर सकते वैसोंका विवाह कर देते हैं यह कितना खेदकारक है?।

राजपुतानामें एक उत्तम गृहस्थके घर लग्न समारंभ था, वह मैंने स्वतः देखा है। लग्नमें वर पांच छः वर्षकी वयका था। लग्नका मुहूर्त रात्रीको था उससे वर कन्याको निद्रा आने लगी, इससे उनको एक तरफ़ सुला

दिया। फेरे फिरनेके पूर्वकी सर्व विधि पुरोहित महाराजने पूर्ण की थी। अब फेरा तो वरको ही फिरना चाहिये तब वरका पिता वरके पास आ उसे उठाने लगा और कहा कि भाई! उठ, अब फेरे खानेका समय आया है। परन्तु उस विचारेको फेरा कैसे खाये जाते हैं क्या ख़बर! उस लड़केके मनमें ऐसा आया कि मेरा पिता फेरा अर्थात् पेड़ा खानेको मुझे उठाता है। वह बोला पिताजी! मुझे नींद आती है, मुझे पेड़े नहीं खाने, मुझे भूख नहीं लगी॥ वरका एक चार पांच वर्षका छोटा भाई जो पास सोया था वह बोला, पिताजी! चलो मैं आता हूं, मुझे भूख लगी है, मुझे पेड़ा खाना है। तात्पर्य्य इतना है कि लग्न जैसी उत्तम विधिका यथायोग्य पालन नहीं होता॥

मैं तेरे सिवा कुछ भी नहीं करूंगी। तेरे सिवाय अन्यपतिमें चित्ताकर्षण नहीं होने दूंगी। इत्यादि प्रतिज्ञा वधूको लग्न समय करनी पड़ती है, तद्वत्–तेरी सम्मति बिना "धर्मे च अर्थे च कामे च नातिचरामि,, इत्यादि प्रतिज्ञा वरको करनी पड़ती है। अथर्व वेदके १४वें काण्ड में लग्न सम्बन्धी विषय पूर्ण रीतिसे वर्णन किया है।

सम्प्रति जितनी प्रतिज्ञा करनी होती है उसे केवल पुरोहित गुनगुना जाते हैं। वरको या वधूको तत्सम्बन्धी लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता। उनका लग्न बाल्यावस्था में होनेसे वे प्रौढ़ हुवे पश्चात् दोनों लग्न अस्वीकार करें और पुरोहितको पूछें कि हमारी प्रतिज्ञा हमने कब की है? और करी होवे तो हमें बताओ? तब वह पुरोहित महाराज क्या उत्तर देंगे? प्राचीन कालमें वधू वर की इच्छानुसार विवाहकी विधि थी। सुभद्रा का अर्जुनके साथ किस रीतिसे विवाह हुवा उसे सर्व कोई जानते हैं। उसको लेके भाग जाने पर बलभद्र जब अर्जुन पर अतिक्रोधाविष्ट हुये तब श्रीकृष्ण महाराजने उनका समाधान किया और बोले कि:—

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत् को न मन्यते।
विक्रयं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात् पुरुषो भुवि॥

अर्थ—उनका विवाह उभय सम्मतिसे हुआ है। कन्याकी इच्छाके विरुद्ध उसको पशुके तुल्य बेचना यह कुछ योग्य नहीं। इसी रीत्यनुसार कुन्ती, सीता, द्रौपदी इत्यादि अनेक राजकन्यायें प्रौढ़ावस्थामें स्वयंवरकी विधि

से विवाहित हुई थीं। कोई कहे कि राजकन्याओंके ही इस रीत्यनुसार विवाह हुये थे। परन्तु ऐसा नहीं है। ब्राह्मण लोगोंकी कन्याओंके भी (जैसे कि शुक्राचार्य्यकी कन्या देवयानी) स्वयंवरसे विवाह हुये थे, और इच्छानुसार योग्य वर न प्राप्त होनेसे ब्रह्मचर्य्यव्रत पालन करके आजन्म अविवाहित रहीं ऐसी बहुत स्त्रियोंके वृत्तान्त उपस्थित हैं। गार्गी, सुलभा इत्यादि स्त्रियोंके चरित्रसे आप लोग जान लेंगे। इस विषयको अधिक जाननेकी इच्छा होवे तो मेरा बनाया "पुरुषार्थ प्रकाश" देखिये तो ज्ञात होजावेगा। स्त्रियोंके सदृश अनेक पुरुष जैसे कि भीष्म पितामह, हनुमान्, परशुराम इत्यादि ब्रह्मचर्य्य व्रतका पालन करके अपने पराक्रमका महत्व जगत्प्रसिद्ध कर गये हैं। इन लोगोंका पुरुषार्थ और सांप्रत हमारे लोगोंका पुरुषार्थ कैसा है उसे सर्व कोई जानते हैं। कुन्तीके पुत्रोंका पराक्रम कैसा था, और अब छोटेसे लड़के और लड़कीके लग्नसे उत्पन्न हुये मनुष्योंका पुरुषार्थ कैसा होगा। छोटी डब्बीमें क्या एक बड़ा भारी हाथी रह सकता है? बाल्यावस्थामें विवाह करने

में अनेक हानि होती हैं। पूर्ण वय प्राप्त हुये पश्चात् विवाह करना चाहिये। इसके अनुसार न करने वाले पापके भागी होते हैं। पूर्ण अवस्थामें विवाह होनेसे भविष्यकी प्रजा अत्यन्त अशक्त उत्पन्न होती है। जब माता पिता स्वतः बहुत न्यून अवस्थाके होवें तो उनको अपने बालकका संरक्षण किस प्रकारसे करना इसका विचार कहांसे होगा? और अपने बालककी रक्षाकी सावधानी का कार्य्य कैसे उनको आसक्ता है। वे अप्रौढ़ माता पिता लड़के को खेलने भी नहीं जाने देते क्योंकि उनको कसरत (व्यायाम) से होने वाले लाभसे वे अज्ञात हैं। जब वे अपने बालकोंके खाने पीनेकी यथायोग्य सावधानी रख नहीं सक्ते तब ऐसे अज्ञान माता पिताके बालक चोरी करके हदसे बाहर खाना सीखते हैं, जिनसे उनको अनेक व्याधिके भोग होजाते हैं। पेट फूलता है, हाथ पांव रस्सी जैसे पतले होजाते हैं, उनको घड़ीमें सरदी और घड़ीमें कुछ ऐसे अनेक व्याधिमें आगिरते हैं। अज्ञान माता पिताको केवल प्रजा उत्पन्न करनी आती है परन्तु उतनी वयमें उनको संरक्षण करनेकी बुद्धि नहीं आती॥

शारीरिक विषय अलग रखके विद्याकी ओर लक्षय देवेंगे तो वहां भी यही व्यवस्था ऊपर दरशाये कारणों से दिखाई देगी। साम्प्रत मनुष्य अपनी संस्कृत भाषा सीखनेको छोड़ अंग्रेज़ी पढ़नेके पीछे पड़े हैं। इतिहास सिखानेमें राम जनक इत्यादिके चरित्र न सिखाके आलमगीर जैसेका जन्मवृत्तान्त पढ़ानेमें आता है जो पढ़नेसे बालकोंके मनमें बुरा असर होता है। अपने सगे भाइयोंको राज्यपद प्राप्तिके लिये कैसे मार डालना, ऐसी कला भी सीखते हैं। श्रीरामचन्द्रजी जैसे महात्माओंके इतिहास सिखानेसे बन्धुप्रीति, पूज्यबुद्धि, माता पिताकी आज्ञाका पालन, सत्य बोलना तथा करना, पतिका पत्नी प्रति प्रेम, राजकीय कुशलता, प्रजा संरक्षण, एकपत्नीव्रत, ऐसे २ अनेक सद्गुण शिष्य सीखते हैं और वे पूज्यबुद्धिवाले होते हैं। और स्वयं उसके अनुसार वर्ताव करना सीखते हैं॥

बड़े २ विद्वान् होवें, बी० ए०, एम० ए० इत्यादि उपाधि प्राप्त करें तथापि वैदिक धर्म विषय कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं करते! वैदिक धर्म क्या है? उसमें क्या तत्त्व है?

इसे भी जाननेके लिये प्रयत्न नहीं करते। और जब जानते नहीं तब वे अपनेंको बड़ा पण्डित माननेवाले, अपने परिवारको तो ऐसी विद्याका कहांसे बोध करासकेंगे? मुसलमान भाई अपने बालकको प्रारम्भसे कुरान शरीफ पढ़ाते हैं परन्तु हमारे आर्य लोग अपने बालकको वेदका दर्शनमात्र भी नहीं कराते हैं। क्रिश्चियन लोगों का अभ्युदय, केवल उनके धर्म्म पर प्रीति ही है। ग्लाडस्टून जैसे महान् विद्याभूषण, धर्म शिक्षणके विना उत्पन्न हो नहीं सके ॥

तमाकूके व्यसनसे आयुष्यमें पांच वर्ष कमती होते हैं। ऐसे कहने वाले डाक्टर स्वयं एक पश्चात् दूसरी चुरट फूंकते रहते हैं। ऐसे उपदेशकोंके उपदेशका परिणाम उनकी प्रजाके प्रति कैसे होवे? तमाकू नहीं पीना ऐसा कहनेमें कुशल परन्तु स्वयं वे पीवें, तब उसमें क्या होगा इस जिज्ञासासे पिता बाहर गये कि लड़के उसका स्वाद निकाल कर देख लेते हैं। हम अपने आचरण तथा व्यवहार सुधारे विना अन्यको उपदेश करें यह मूर्खता है। बालकोंमें अनुकरण करनेकी शक्ति विशेष होती है,

इससे उनके समक्ष नीतिविरुद्ध कुछ भी बोलना अथवा आचरण करना न चाहिये। थोड़ा समय हुवा मुझे एक एम० ए० पास विद्वान् मिला था, उसने एक शङ्का की थी कि "भूत पिशाच नहीं हैं ऐसा हमको कालजमें प्रोफ़ेसरोंने सिखाया है और हमको भी ऐसा ही प्रतीत होता है। परन्तु रात्रिमें जब हम अकेले स्मशान जैसे एकान्तवास या उस स्थान पर जाते हैं तब हमको भूत पिशाचोंका भय क्यों लगता है?" मैंने उनसे पूंछा कि "तुम्हारी बाल्यावस्थामें भूत प्रेतकी बातें तुम्हारे आगे किसीने करी थीं? उसने कहा हां, जब मैं बालक था तब मेरी माता कहती थी कि "रात्रिको बाहर मत जाना वहां भूत प्रेत होंगे वह तुम्हें चिपटें गे," तब हमको भय लगता था। तब मैंने उसके प्रत्युत्तरमें कहा कि तुम्हारी माता ही एक बड़ा भारी भूत है और उसी भूतने तुम को आज तक घेर रक्खा है ॥ महाभारतः—

नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातृसमो गुरुः ॥

वेदसे परम दूसरा कोई शास्त्र नहीं है और माताके समान दूसरा कोई गुरु नहीं है। जब देशका अभ्युदय

विद्यासम्पन्न स्त्रियों पर आधार रखता है, तब स्त्रियों को अवश्य शिक्षा देनी चाहिये। जिस तरहसे पुत्रोंको विद्याभ्यास करवाया जाता है उसी तरहसे पुत्रियोंको भी विद्याभ्यास करवाना चाहिये ॥

दृष्टान्त लो कि एक लड़का अपने पिताके साथ उपवनमें फिरते पूंछने लगा कि पिता जी ! यह पुष्प काहे का है ? इस प्रश्न पर लक्ष्य न देके उसका पिता आगे चलने लगा जिज्ञासुभावसे बालकने पूंछा तो उसके मनकी शङ्काका समाधान पिताको करना था। मुख्य शिक्षण बालकोंको माता पिता से ही मिलना चाहिये। अपने चार पांच भाई लश्करी (रेजिमेन्ट) मनुष्यके सदृश एकसी रीति पर चल न सकेंगे। अपने पांव टेढ़े मेढ़े पड़ेंगे क्योंकि उस विद्याको हम नहीं सीखे। शिक्षाके उत्तरदाता माता पिता हैं परन्तु उनको प्रथम अपना व्यवहार सुधार कर अपने बालकोंको शिक्षा देनी चाहिये और उन का रक्षण करना चाहिये। यह तीसरा कर्त्तव्य है ॥

"समाज" यह चौथा कर्त्तव्य है। जिस विषयको मैं अभी विवेचन नहीं करूंगा। पांचवां कर्त्तव्य "मनोरञ्जन"

है। मनोरञ्जन करने के लिये धर्म्ममें बाधा न आवे ऐसी रीतिसे मनको विश्रान्ति देनी चाहिये। मनोरञ्जन विविध प्रकारसे हो सक्ता है। इसलिये जो मार्ग युक्त या इष्ट होवे उसीको करना चाहिये ॥

छठा और अन्तका कर्तव्य "धर्म और ईश्वरोपासना" है। जब तक मनुष्य ईश्वरका अस्तित्व नहीं मानता वहां तक उसमें मनुष्यत्व नहीं है ऐसा कहना चाहिये। सांप्रत ईश्वरका अस्तित्व यथार्थ रीतिसे मान्य करनेवाले न्यून ही होते हैं। आफ़िसमें ज़ोरसे बोलते डर लगता है कि कदाचित् साहब गुस्से होंगे। परन्तु परमेश्वर, साहबसे चाहे जितना बड़ा है तो भी उसका भय नहीं होता। इसको प्रसन्न रखनेके लिये उसकी आज्ञाके अनुसार वर्त्ताव करना यह सर्व प्राणिमात्रका कर्तव्य है। सर्व शक्तिमान् प्रभुका भय रखके उसके भक्त हुये विना मनुष्य पापाचरणसे निवृत नहीं होसकता। पापों का त्याग किये विना लोक व परलोक नहीं सध सक्ते। इससे आप महाशयोंसे विनती पूर्वक निवेदन करता हूं कि अपने ईश्वरके परमभक्त हो के इस लोक वा परलोकका हित कर लेना यह श्रेयस्कर है। इत्याशास्महे। इति ॥

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित वैदिक-पुस्तकप्रचारकफण्डके कार्य्यालयके विक्रेय पुस्तकोंका सूचीपत्र ॥

पुरुषसूक्त अर्थ सहित)॥ ईसाईमत संसारमें कैसे फैला (पं० लेखराम जी कृत))॥ महाशङ्कावली)। रामायण-का आल्हा)। नीतिशिक्षावली)। सुशीलादेवी)। ईसा-ईमतलीला)। ईसाईमतखण्डन १ भाग)। दूसरा)। शि-वलिङ्गपूजनविधान)। श्रीरामजीकादर्शन, कलियुगलीला, काशीमहात्म्य)। नित्यकर्मविधिः)। पुराणकिसनेबनाये, श्रीस्वामीशङ्करानन्दके अनमोल उपदेश, अमेरिकानिवासी मि० डेविसके आर्य्यसमाज और स्वामी जी पर विचार, ईसाईलीला, ये पुस्तकें आधे २ पैसेकी हैं।

श्रीछत्रपति शिवाजीमहाराजका जीवनचरित्र।)

ऐसा कौन द्विज है जो शिवाजीका जीवनचरित्र प-ढ़कर प्रसन्न न हो ? इनका साहस उद्योग और वीरता का स्वाद औरङ्गज़ेबसे बढ़कर और किसीको नहीं मिला, उस समयमें, मुसलमानोंको पराजित कर आर्य्यधर्म्मका गौरव रखना इन्हीं का काम था।

(२)–हारमोनियमगाइड मू०।=) विना उस्तादके हारमोनियम बाजा बजाना सीखली, जिसमें होली, ग़ज़ल, ठुमरी, लावनी आदि सा. रे. ग. म की रीतिसे दी हैं। आज तक हिन्दीमें ऐसी पुस्तक नहीं छपी है जिसकी सैंकड़ों प्रति विक गईं, अब थोड़ी बाकी हैं।

(३)–धर्म्माधर्म्मविचार मू० ।) ईसाईधर्म्मकी पुस्तकोंको अच्छी तरहसे पढ़के इसमें उसकी बड़ी २ पोलें और भूलें सर्वसाधारणको ज्ञात हो जायं और ईसाइयोंके जालमें न फंसे इस लिये नये ढंगसे बनाई है। पुस्तक पढ़ने योग्य है।

(४)–खेतीविद्याके मुख्य सिद्धान्त मू० ॥=) यह पुस्तक किसानोंके लिये बड़ा उपयोगी है। इसमें खेती करनेके सिद्धान्त अच्छी तरहसे दिखाये हैं।

(५)–गीता भाषाटीका सहित मू० २।) यह पुस्तक पं० भीमसेनजीने बड़े परिश्रमसे बनाई है यथार्थमें गीताका आशय ज्ञात होता है। सर्व आर्योंको रखने योग्य है।

(६)–श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजीका चित्र मू०॥।) यह चित्र पूनाके चित्रशालामें बहुत उत्तम रंगोंसे बनाया

[illegible] स्वामीजी महाराज आसन लगाये [illegible] चित्रके नीचे संक्षेपसे जीवनचरित्र भी [illegible] १९×१० इञ्चका है । सर्व महाशयोंको चाहिये कि [illegible] हितैषी महात्माका चित्र रखकर घरकी शोभा [illegible] । शीशा लेथोमें छपा हुवा सादा -) रङ्गीन -)॥ [illegible] जी एम० ए० विद्यार्थीका सादा -) रङ्गीन-)॥

(७)–[illegible]धर्म्मप्रकाश मू० १) यह पुस्तक श्रीस्वामी रा[illegible] सरस्वती महाराजने मुमुक्षुके प्रश्नोत्तरसे शास्त्रों के प्रमाण सहित धर्म्म, नीति, शिक्षा और शास्त्रोंके सिद्धान्त दिखाये हैं । पहिले मू० १॥) था अब १) कर दिया है । बम्बई टाईपमें छपा है ।

(८)–बहारेनयरङ्ग १ भाग =) दूसरा भाग ।) इसमें देशोन्नतिके तथा शिक्षाके उत्तम २ भजन हैं जिनके पढ़ने से बड़ा आनन्द आता है ।

(९)–संस्कृतकी प्रथम पुस्तक)॥ द्वितीय -)॥ तृतीय =)॥ विना गुरुके संस्कृत सीखनी इनसे व्याकरण तथा लिखने पढ़नेका उत्तम बोध होजाता है । ये पुस्तक पं० तुलसीराम स्वामी भूतपूर्व उपदेशक आर्य्यप्र०नि०सभा पश्चिमोत्तर व अवध के बनाये हुये हैं ।

मन्द पड़ जाने पर दृश्य के पृथक २ भागों में एक लगावसा उत्पन्न होजाता है जिस से उस को और शोभा मिलजाती है उस समय कुछ देर से मैं प्रकृति के रूप को देखने में निज को भी भूल गया था जब कि एक यात्रियों का समूह मेरे पास से निकला जिस में लौट जाने की बात चीत होरही थी और जिस ने मुझे स्मरण कराया कि मुझे भी अधिक काल लौं इस सुख में ठहरना नहीं है किन्तु १ या २ दिवस में लौट जाना है ॥

इतने में सूर्य्य अस्त हुआ और चन्द्रोदय हुआ चन्द्रमा का प्रकाश थोड़ा तो होता ही है उस समय कुछ छोटे २ बद्दल उसके सम्मुख आये हुये थे जिन्होंने उसको और भी घटा दिया- सुहावने दृश्य का कोई भाग उत्तम प्रकार देख पड़ता था शेष सब दृष्टि से छिप गये थे और केवल स्मरण द्वारा देखे

जासक्ते थे यह दशा ठीक गति काल की भांति थी इसी सम्बन्ध ने मेरे ध्यान को उसकी ओर खींचा पर जब एक बार उस ओर ध्यान पड़ा तो समस्त इतिहास मेरे सन्मुख प्रकट होगया— इन विचारों का एक भाग प्रकट करने का मैंने उद्योग किया है— मुझे निश्चय है कि हमारे मुसलमान भाई भी बुरा न मानेंगे- क्योंकि अब इस बात में सन्देह को किंचित् स्थान नहीं कि अरब और अफ़ग़ान आक्रमणकारियों ने जो अत्याचार भारत वर्ष में किये हैं- वह इतिहास पर बहुत बुरे धब्बे हैं ॥

आपका हितेषी
एक यात्री

॥※॥ पद्य ॥※॥ ४

गङ्गा की नींद

गंगा उठो कि नींद में सदियां गुज़र गईं ।
देखो कि सोते २ ही बरसें किधर गईं ॥
औरों को जो जगाके ख़बरदार कर गईं ।
अन गिनत सायतें वह यहां बेख़बर गईं ॥
आंखें तो खोल देखो ज़रा हाल है ये क्या ।
रफ़्तार पहले कैसी थी अब चाल है ये क्या ? ॥
इस नींद ने ज़माना पै ज़ेरोज़बर किया ।
गेती का एक दम से सफ़ह ही पलट दिया ॥
फाड़ा किसी का सीना किसी का जिगर सिया ।
पटकाया एक दूसरा सर पर उठा लिया ॥

इस नींद ही में सैकड़ों जंगो जिदल हुये ।
इस नींद ही में सैकड़ों रद्दोबदल हुये ॥ २ ॥
इस नींद में बहुतेरे हुये इंक़लाब यां ।
तबदील होगया है हरेक तौरसे जहां ॥
इस नींद में बहुतेरे मिटे नाम और निशां ।
भारत की आज बाक़ी हैं मुशकिल से हड्डियां ॥
नगरी के पांडवों की बयानात रहगये ।
मिथिला अयोध्या के निशानात रहगये ॥ ३ ॥
इस नींद ही में शहर बियाबान होगये ।
आबाद देश उजड़ के वीरान होगये ॥
ज़रखेज़ जो क़ताथे वो सुनसान होगये ।
राहत जहां थी रंज के सामान होगये ॥
तलवार ग़ज़नवी की इसी नींद में चली ।
तातारियों की आग यहां मुद्दतों जली ॥ ४ ॥
इस नींद ही में राज घराने तबाह हुये ।

राजे मरे गुलामे गुलामान शाह हुये ॥
निर्बल बने बलीन क़वी बे पनाह हुये ।
उजले कंवल से जो थे वो जलकर सियाह हुये ॥
जो ख़ान्दान तख़्त के वाली सदा से थे ।
इस नींद ही में आज वह मिट्टी में मिलगये ॥ ५ ॥
इस नींद ही में क्षत्री मुसल्मान बन गये ।
आधी सदी में हिन्दु से अफ़ग़ान बनगये ॥
तुर्कीनज़ादों नस्ले ख़ुरासान बन गये ।
बाक़ी रहे कुछ अहले सफ़ाहान बन गये ॥
चक्कर ज़रासी बदल के अबके गुहर बने ।
गर और कुछ न शेखतो सब बेख़तर बने ॥ ६ ॥
इस नींद ही में भाई से भाई जुदा हुआ ।
बेटे का बैरी बाप हुआ ख़ूब बर्मला ॥
चेले गुरु का जोड़ फ़क़त ग़र्ज़ का हुआ ।
राहत का साथ बाक़ी न यां रंजका रहा ॥

हर एक ख़ुदी में अपनी हीं मख़मूर होगया।
हर एक इसी नशे में पड़ा चूर होगया ॥ ७ ॥
इस नींद ही में धर्मपै चोटें हुई हज़ार।
तुर्कों की फ़ौज छाती पै उसके हुई सवार ॥
साधू ब्राह्मण उसने किये तंग और ख्वार।
मंदिर जो बेमिसल थे गिराये वह बेशुमार ॥
सेवक नतेगे क़हर से छूटे न देवता।
पापी बचे न ज़ुल्मसे उसके न पारसा ॥ ८ ॥
इस नींदही में हिन्द में नींवें नई पड़ीं।
ईटे यहां पै मक्के मदीने की आलगीं ॥
क़बरें मज़ारें ईदगाहें बहुत बन गईं।
रसमें अरब की जो थीं यहां पर वह आजमीं ॥
काशी में मंदिरों की जगह मस्जिदें बनीं।
तुर्कों की धर्ती बनगई प्रयाग की ज़मीं ॥ ९ ॥
इस नींद ही में होगया हिंदोस्तां शिकार।

एक एक करके कट गये शाह और शहरे यार ॥
चारों दिशा में मचगई घर २ में लूटमार।
ज़ोरोसितम से होती रही हर जगह पुकार ॥
गूंजा सदाय ख़ल्क़ से यह गुम्बदें फ़लक।
पहुंचा न तेरे कानमें पर शोर आज तक ॥ १० ॥
इस नींद में टटोला गया आर्य्यों का घर।
खोले गये क़हर से बड़े मंदिरों के दर ॥
सरुती हज़ार करके अमीरो ग़रीब पर।
अम्बारों से उठाये गये सीम और ज़र ॥
इस नींद ही में लूट हुई नगरकोट की।
इस नींद ही में जाता रहा सोमनाथ भी ॥ ११ ॥
इस नींद ही में ज़र का यहां ख़ातमा हुआ।
चांदी का रेज़ा देर तक को नहीं रहा ॥
सोने का इस जहां से निशां तक चला गया।
इल्मास और अक़ीक़ का अब कुछ नहीं पता ॥

फैलाये घोर पाप यहां मुस्लमीन ने ।
बारिश फ़लक ने रोकली दौलत ज़मीन ने ॥ १२ ॥
इस नींद ने बिगाड़ के नस्लें हज़ारहा ।
तोड़ी भरी उमंग से आसें हज़ारहा ॥
कीं मुनक़ता इसी ने उमैदें हज़ारहा ।
बेसुद करके समझ की चालैं हज़ारहा ॥
इस नींद ही में राय पिथैारा क़तल हुये ।
संगसे शूरवीर जेदा जहद में मुये ॥१३॥
इस नींद ही में दर्द से यां सीने फट चुके ।
अफ़सोस बन्दगान ख़ुदा कितने कट चुके ॥
या क़ैदहो गुलाम बनें और बट चुके ।
दुनियां में सब से बढ़के भी हम कितने घट चुके ॥
पद्मावती की राख भी अब सर्द होचुकी ।
प्रताप जैसे मर्द भी सारे तो खोचुकी ॥ १४ ॥
इस नींद ही में क़ौमों की इज्ज़त तबाह हुई ।

और राजपूत कितने की हुर्मत तबाह हुई ॥
लाखों पतिव्रताओं की अज़्मत तबाह हुई ।
लाखों की अपने जीने से रग़बत तबाह हुई ॥
बे वेतन कोई मर मिटीं बग़दाद में पड़ी ।
कितनी ही जलती आगके शोलों में जापड़ीं ॥१५॥
इस नींदही में ग़ज़ब रहा इस दयार पर ।
मज़्लूम कितने होगये क़ुर्बां कटार पर ॥
कितनों ने सीने रखदिये ख़ंजर की धार पर ।
कितनों ने काटे अपने गले पहली हार पर ॥
कितने यहां पैयासमें हीरे चबा गये ।
कितने ग़रीब चुपके से बस ज़हर खागये ॥१६॥
इस नींदही में तल्ख़ हुई ज़िन्दगानियां ।
माओंकी गोद से छिने बच्चे बहुत यहां ॥
रोती अलहेदा की गई पतिओं से बीवियां ।
बहनें पुकारती रहीं भाई गये कहां ॥

आंखे यहां पै कितनी मुर्दी आंसुओं से तर ।
दम रुक गये सराप थे जिस्दम ज़बान पर ॥१७॥
इस नींद ही में जाने गईं यां खड़े २ ।
कितनी ही औरतें मरीं पानी में कूदके ॥
कितनी कटीं पिता पती भाई के हाथसे ।
तुर्कों के सख्त पंजे से बचने के वास्ते ॥
इस नींद ही में कितनी पड़ीं वहशियों के हाथ ।
ग़ज़नी में कितनी उम्रें कटीं सख्त दुखके साथ।१८।
इस नींद ही ने ऐसी मचाई है खलबली ।
कल वालों को भी सुन इसे होती है बेकली ॥
बच्चे बना यतीम रुलाये गली गली ।
दर २ फिराई क़ल्क में विधवायें दिल जली ॥
बूढ़े सफ़ेद रीश हज़ारों फ़िदा हुये ।
मासूम सर भी तन से हज़ारों जुदा हुये ॥ १९ ॥
इस नींद ही में मारे गये बीर दिल चले ।

भारत के हाले ज़ारपै जिन २ के दिल ॥
कितने ही मुंहमें मौत के बेडर बढ़े चले
जा जा जमाई गर्दने फ़ौलाद के तले ॥
सारा शरीर अपने लहूसे भिगो दिया ।
पर बुज़दिली के दाग़ से माथा बचा लिया ॥२०॥
इस नींद ही में ग़म से भरी कुल ये सरज़मीं ।
मातिम में झोंपड़ी से महल तक है क्या नहीं ॥
आंखें जहां उठाते हैं मिलता है दुख वहीं ।
मुमकिन नहीं कि सुखमें मिले एक घर कहीं ॥
आंसू बहा रही हैं हिमालय की चोटियां ।
दिलसे निकल रहा है समुन्दर के भी धुआं ॥२१॥
इस नींद ही में हमने बुलाया तुझे बहुत ।
आहों से बेकसों ने जगाया तुझे बहुत ॥
नालों से ग़मज़दों ने हिलाया तुझे बहुत ।
नारों से दिलजलोंने उठाया तुझे बहुत ॥
अब तो उठो कि नींद में सादियां गुज़र गईं ।
देखो कि सोते २ ही वर्षें किधर गईं ॥ २२ ॥

अन्य भाषा के क़ठिन शब्दों का कोष

सदियां—शताब्दियां—१०० वर्षकी एकशताब्दी
साअत-घड़ी।
रफ्तार-चाल ढाल।
ज़ेरोज़बर-नीचे ऊपर अर्थात् तबाह।
गेती—संसार।
सफ़ह-धरातल।
सीना-छाती।
जंगोजिदल-संग्राम।
इन्क़लाब-परिवर्त्तन।
जहान-संसार।
निशान-चिन्ह।
बयानात-वर्णन वाकहावतें।
बियाबान-बन।
बिरान-उजाड़।
ज़र्ख़ेज़-उपजाऊ।
क़ता-टुकड़ा।
राहत-हर्ष-खुशी।
ग़ज़नवी—नाम एक अत्याचारी अफ़ग़ान का जिसने भारत पर १७ आक्रमण किये-पूरा नाम महमूद ग़ज़नवी- अर्थात ग़ज़नवी का रहने हारा।
गुलामेगुलामान—गुलामों के गुलाम।
क़वी-ज़बरदस्त।

बे पनाह-असहाय।
वाली-मालिक।
नस्ल-वंश।
तुर्कीनज़ाद-तुर्कवंशी।
ख़ुरासान वसफ़ाहान-नगरों के नाम जो फ़ारसमें हैं।
धक्कर- एक जाति का नाम जो अधिक मुसलमान हुई।
ग़रज़-मतलब।
मख़मूर—मदमस्त।
बेशुमार-अगणित।
तेग़क़हर-क्रोधका खड्ग-
पारसा- पवित्र- नेक।
मक़ामदीना- नगरों के नाम जो अरब देशमें हैं- औरमुसलमानों के तीर्थ-स्थान।
मज़ार-क़ब्र।
शहरियार-राजा।
ज़ोरोसितम-अत्याचार।
सदा-आवाज़-शब्द।
ख़ल्क-संसार।
फ़लक-आकाश।
सीमोज़र-धन सम्पति।
ख़ात्मा-अन्त।
इल्मास-हीरा।
अक़ीक़-लाल।
बारिश-वर्षा।
मुनक़ताकर्ना-काट-

डालना-ताड़देना ।
बेसूद-बेफ़ायदा ।
जद्दोजिहद-उद्योग-कोशिश।
हुर्मत-प्रतिष्ठा अज़्मत।
पाकदामनी- पवित्रता
रग़बत-इच्छा ।
वतन- घर ।
बग़दाद- नाम नगर-
जो एशियाई रूममें है ।
शोला-लपट ।
दयार- देश ।
कुर्बान- बलिदान वा-
निछावर- पारा । ख़ंजर-
बिछुआ दोधारा छुरा ।
पास-निराश ।
वहशी-वन्यअसभ्य ।
यतीम-अनाथ ।
क़लक़-रंज-शोक ।
रीश- दाढ़ी ।
मासूम-भोले बालक
हालेज़ार-दुर्गति ।
बुज़दिली-कायरता-
मातिम-शोक ।
बेकस-दीन नाला व नारा-
शोक पूरित उच्चशब्द ।
ग़मज़दा-खेदित ।

ओ३म् तत्सत् परमात्मने नमः

श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज का पद्यमें संक्षिप्त जीवन चरित

॥ दोहा ॥

धनि जीवन उन नरनको, जो पराहित में देत ।
तन मन धन जग सम्पदा, जोजग सुखके हेत ।

श्रीयुत पण्डित बलभद्र मिश्र कृत

पुस्तक संख्या- २३.

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित
वैदिक पुस्तक प्रचारक फण्डद्वारा प्रकाशित
आर्य्य संवत् १२७२२५८९९९
सेप्टेम्बर सन् १८९७ ई०
प्रथम बार टाईप में २००० } मूल्य ॥
लाइटनिङ्ग प्रेस शहर मेरठ

॥ भूमिका ॥

इन महात्मा के जीवन तथा उनके शास्त्रार्थों का समाचार जो विधिवत् लिखा जाय तो बड़े बड़े ग्रन्थ बन जायं और उनके लिखने के लिये बहुत अवकाश चाहिये जिसके अभाव से हम इस स्थल में उन महा पुरुष के जीवन की मुख्य २ बातों का वर्णन इस स्थल में भविष्य में स्मरण रहने के लिये अति संक्षेप से यहां लिखे देते हैं यदि अवकाश और सुभीता होगा तो यथोचित पीछे से लिखेंगे-

•बलभद्र मिश्र

"भारतोद्धारक" वैदिक पुस्तक प्रचारक फण्डका मासिक पत्र वार्षिक सर्व साधारण से १)अग्रिम डाक व्यय सहित जो अगष्ट मास से सदर बजार मेरठ उक्त फण्ड द्वारा हर मास में प्रकाशित होता है. जिसमें पं० ज्वाला प्रसाद मुरादाबादी कृत दयानन्द तिमिर भास्कर का उत्तर पं० तुलसीराम स्वामी कृत तथा पं० लेखरामजी पुस्तकों का अनुवाद और अन्यविषय छपतेहैं रायल तीनफार्मका निकलता है जो महाशय ग्राहक होना चाहे शीघ्र पत्र से सूचना देवें ॥

॥ ओ३म् ॥

श्रीमत् परिव्राजकाचार्य्य श्री १०८ स्वर्गवासी स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का संक्षिप्त जीवन चरित्र

॥ छन्द शिखरिणी ॥

सदानन्दो नित्यः शुचि अजित तेजो मय प्रभो
अलख निर्गुण देवः श्रुति लहैन भेव गुण निधे
चराचर को धारे माया पसारे जग पते
सृजक पालक पोषक पुनिलय करे पूर्व वपुमें ॥१॥
अनत लीला तेरी श्रुति कहि थके पार न लह्यो
अतुल शक्ति तेरी अतुल विद्या ज्ञान तुझ में
सकल भौतिक मध्ये विलसत सदा एक रसमें
नमो पूर्णानन्द घन विमल सत्य व्रतपते ॥२॥

॥ दोहा ॥

धनि यह दिन मम भाग धनि धनि यह भवन समाज
नगर नगर से आय जहं मित्र विराजत आज ॥
धारा प्रेमप्रवाह की उमड़ि घुमड़ि हहलात ।
सुख सम्पदा सु आजकी कासों वरणी जात ॥
विद्यासिन्धु समस्तप्रिय सुजन मित्र के बीच ।
गुणग्राहि भरी तहां है सबही विधि नीच ॥
पर आनन्द हुलसत हिये बनै न रोकत सोय ।
तातें कछु वर्णन करों क्षमिय जो अनुचित होय ॥

॥ सोरठा ॥

जिहि माली यह बाग सेई सुफालित सकल दिशि ।
वन्दि सु चरणपराग तासु चरित वर्णन करों ॥

॥ दोहा ॥

देश कठियांवाड़ में मोर्वी राज्य के बीच ।
दयानन्द रवि उदय भे कुल ब्राह्मण अवदीच ॥

॥ चौपाई ॥

संवत् अठारह सौ इक्यासी । जन्मत भे विद्यागुणरासी
पञ्चम वर्ष मध्य जब गयेऊ । देवनागरी प्रारम्भ करेऊ
अष्टम वर्ष उपनयन भयेऊ । नित्य कर्म सर्वाङ्गित पढेऊ
पिता शैव व्रतचारी जासू । चह्यो सिखावन उनको तासू
दियो विविध उपदेश अपारा । पर न जच्यो मनमें एकछारा
षोडश वर्ष आयु जब भयऊ । लघुभगिनीसुरपुरकोगयऊ
तबसे जगसों भयऊ विरागी । इच्छा युक्त सुखों की त्यागी
निजमनमें निश्चय यहआनी । देहनश्वर क्षण भंगुर जानी
यातें परमारथ मन दीजे । मनुज देहको फल लैलीजै

॥ सोरठा ॥

यह निश्चय उरधारि विद्या निशि वासर पढ़ूं ।
मुक्ति किं ओर निहारि गृहसुख तृण समवारिये।

॥ दोहा ॥

उन्निसवर्ष की आयुमें जब में चचा महान ।

विद्यानिधि मन प्रेमरत जगसों कियो पयान॥
प्रथम वियोग ती भगनिका, दूजो यह अवलोक।
बनजारे का खेल जग यह मन बाढ़यो शोक॥
देख बार अनेक मैं निजविज्ञान प्रकाश।
क्षण भंगुर जग सम्पदा क्षण में होवि नाश॥

॥ सोरठा ॥

तिनसों जोरे नेह सुख सपनेहू दुर्लभ।
यामें नहिं सन्देह तातें प्रेम न कीजिये॥
कही विरतिकी बात जब मित्रन से भूल से।
जानिलियो पितु मात तिनसों मेरा मर्म यह॥

॥ चौपाई ॥

जब यह बात पिताने जाना। कीये चाहैं कर न पयाना।
गृह सुख पाश पांव बंधवैये। याहि का सब वैराग नसैये
शीघ्र ब्याह दीजै करवाई। पिता के मनमें यही समाई
तबमैं कीन्हो विविध निहोरा। एक वर्ष अवधी हो औरा

सो पितु मातु मानि यहलीन्हा। एक वर्ष का औसर दीन्हा
काशी पढ़न मनोरथ मेरा। जहं विद्या का अधिक बसेरा
पितुसों विनय कीन्ह करजोरी। परउन विनयकीन्ह नहिं पूरी

॥ दोहा ॥

विद्या बहु इतहू बसै काशी में नहिं काम।
मातु कह्यो जनि जाइयो तजिकर अपना धाम॥
थोड़े दिन हैं ब्याह के वामें होइहै हानि।
तातें कहूं न जाइये मानों मेरी बानि॥

॥ छन्द ॥

कीन्हों विनय बहु भांति पितु सों मोहि काशी भेजिये।
जहं जाय विद्या पाय पूरी आनन्द मंगल हूजिये॥
पितु मातु कह्यो न जानदेहैं ब्याह आतुर ही करैं।
गृहभार तुमपर लादि देहैं बात यह निज मन धरैं॥

॥ चौपाई ॥

बहु विधि कीन्ह विनय पितु पाहीं। परउन एक न मोरसराहीं

ब्याह साजसमाज आरम्भेउ। तबमें बचब न मनमेंठम्भेउ
संवत् उनइस सो अरुतीना। चुपसे गमन भवनसे कीन्हा
निजमनमेंव्रतयहनितकीन्हा।बहुरिनगृहआवहुंमनदीन्हा
सो रजनी भक गांव बिताई। अष्टमील गृह जातु दुराई
भोर पीछले प्रहर कूचकर। पहुंचे मील तीस दूरीपर
पिदिन मांग झालापुर मोड़े। पहिचानके सबही बिधिछोड़े
यह शुचियुक्तिफलितमोहिभयऊ।तीनदिवसअन्तरयहसुनऊ
बहुत सिपाही बहुत सवारा। ढूंढ़त फिरत सुतरुण कुमारा
यह सुन आगे पांव बढ़ावा। भिखमङ्गनका दल लखिपावा
तिन हमको यह बात सिखाई। जो देहौ सो पैहौ भाई
वस्त्राभूषण लियो छुड़ाई। संग सम्पदा सकल गंवाई
श्याहि ग्राम का मारग कीन्हा। लालाभगत मिलनमनदीन्हा
जब मैं श्याही ग्रामहि गयऊ। ब्रह्मचारीसोंसमागमभयऊ
तिन आडम्बर जाल बिछावा। अपने मतमें तुर्त मिलावा
शुद्ध चैतन्य नाममोहि दीन्हा। अम्बर गेरुआ रंगके दीन्हा

॥ दोहा ॥

अम्बर गेरुहाये पहन तहं ते कियो पयान।
निकट अहमदाबाद के कोटक गढ़ नियरान॥
मिल्यो बिरागी एक तहं जो गृह निकट रहात।
जो मेरे घर बार की जानत था सब बात॥
होत समागम दुहुन को पुलकावली सुहात।
धिक् गृह त्यागन हेत दै पूंछेव कितको जात॥
ताकी गाढ़ी प्रीति लखि कही सत्य यह बात।
कार्तिक मेला सिद्धपुर ताहि बिलोकन जात॥
यह कहि तुरत पयान करि पहुंचे सिद्धपुर जाय।
नीलकंठ मन्दिर विषे आसन दियो लगाय॥

॥ चौपाई ॥

तहां ब्रह्मचारी बहु रहहीं। उर आनी कछु दिन उत बसहीं
इहौ प्रसंग रहा इक थानी। अब आगे की सुनहु कहानी
जो बैरागी सिद्धपुर मिलेऊ। तेहिं मेरे गृह पत्री पठेऊ

गेरुहा वस्त्र व्यवस्था लिखेऊ। जेहिंपढ़ततहिंपितुसिद्धपुरचलेऊ
मेला सबही ओर मंझावा । विद्वानन से पता लगावा
तिन मम आसन दीन्ह बताई। तब मेरे ढ़िग पहुंचे जाई

॥ दोहा ॥

अरुण नयन भृकुटी कुटिल धरि जनु कोप शरीर
कृशतनु दुःखित वियोग से नैन बहावत नीर ॥

॥ सोरठा ॥

कैसे धीरज होय जिन खोये ऐसे सुवन
नूतन वय में जोय देश अविद्या जेहि हरी ॥
गद्गद भयो शरीर दोउ दृग जलधारा बहै
कल्पत परम अधीर जो मुख आयो मोहिं कह्यो
तब दोऊ कर जोरि चरण वन्दि ठाढ़ो भयों ।
विनती कीन्ह बहोरि मैं अब चलिहौं साथ तव ॥
कुत्सित शिक्षालाय घर तजि मैं आया इहां ।
अब तुम चलहु लिवाय क्षमिय सकल अपराधमम

॥ चौपाई ॥

यद्यपि विनय कियो बहुभांती।तदीपनहियकीज्वालबुझाती
गेरुहा कुरता जोमें धारे । ताके टूकर करि डारे
तुम्बा मेरा दिया चलाई। विविध भांति की बातसुनाई
गृह चलिहौं यद्यपि मैं कहऊ । परनशान्तितिनकेउरभयऊ
कह्यो सिपाहिन सों समुझाई । सजगरह्योकहुंचलेनजाई
मात पिता घाती यहि काही । हवालात में राखहु याही
मैं कर्त्तव्य अहह नहिं कीन्हा । भागिजान्बतमनमेंदीन्हा
पिछले पहर रैनि के माहीं । सोय सिपाहीं गयेतेहिंअहीं

॥ दोहा ॥

जब सोवत देखों उनहिं तोम्बा लियो उठाय
धीमें पग महिं में धरत गयेउं मील दुरिपाय ॥
जगे प्रहरुआ तेहि समै जबनहिं देख्यो मोहिं।
बिखन वदन बिलखत सकल जहिंलखिदुखरहोय

॥ चौपाई ॥

चले जात बट दियो दिखाई । शाखा शिव मंडप लपटाई
तेहिं तरु चढ़िमण्डपचढ़िगयऊं।पातन मध्य तहांछिपिरहेऊं
निजमनमें यह बात विचारा । लखे ईश क्या करनेहारा
तहं ते दीख सुनी सब बाता । ढूंढ़त मोहिंसकलबिलखाता
मन्दिर महं ढूंढ़ेउ बहु भांती । आगे बड़ी सिपाहिनपांती
तेहिं दिन छिपो तहांई रहेऊं । सायंकालबहुरिचलिगयऊं
प्रात होत तहं ते चलि भयऊं । श्रमसोंअहमदबादहिंगयऊं
तुरत तहां ते पुनि चल दीन्हा । बड़ौदे की मारग लीन्हा
तहां पहुंचि चेतनमठ गयऊं । ब्रह्मानन्दके दर्शनभयऊं

॥ दोहा ॥

बहु संन्यासी साधु बिच रम्योंतहां कछुकाल
वेदशास्त्र चर्चा रही निशिदिन परम रसाल॥
तिन निश्चय मोमन धरो जीव ब्रह्म है एक ।
भ्रम वश मेरेहु मन जची मनते गयो विवेक॥

॥ चोपाई ॥

काशी वास एक तिय रहेऊ । तेहिं मोसों यह वार्ताकहेऊ
अमुक नगर विद्वान् सभा है । मैं पूंछेउं वह ग्राम कहां है
तेहि सब पता दियौ बतलाई । तबतिहिदिशिकोचल्योंपराई
परमहंस मोहि इकतहं मिलेऊ।सच्चिदानन्दनामजेहिकहेऊ
तिन मोकहं यह दियो उछाहू । चांदूरा कल्याणी जाहू
बड़े बड़े योगी समुदाई । प्रायःतहां विराजहिआई
तहां पहुंचि अश्वत्थ उपरीता । जहां नर्मदा बहै पुनीता
सच्चे साधु तहां लखिपावा । शास्त्र अर्थ बहुरिमनभावा
परमानन्द सुसाधु बखाना । तिनसोंषड़नमंत्रमनमाना
कछुक मास तहंकीन्हीनिवासू । पढ़ीबहुतपुस्तकमनजासू

॥ दोहा ॥

पुनि सोची यह बात मन पाक करन के माहिं
बहुत काल व्यर्थहि वहै तातें त्यागिह याहिं॥
संन्यासी यदि होहुं मैं तो सुधरे सब बात ।
नगर ग्राम के जनन सों सब विधि छूटे नात॥

गुरुसों मैं संन्यासहित कियों विनय बहुवार ।
परउन तरुण विलोकि मोहिं कियो न अङ्गीकार ॥
कछुक दिवस ऐसेहि गये, एक महा विद्वान् ।
श्रङ्गी से द्वारावती जिनका रहो पयान ॥
चांडूरा दो मीलपर गह्वर वन में आय ।
एक भवन सुपुनीत में आसन दियो लगाय ॥
पूर्णानन्द सरस्वती यह जिनका शुचि नाम ।
विद्या अरु सद्गुणन के मानहु पूरण धाम ॥
निज कांक्षा संन्यास की तिनसों कहि करजोरि ।
असमंजस में आइकरि मान्यो विनती मोरि ॥

॥ चौपाई ॥

तिन मोहिं दीक्षादंड गहायो । दयानन्द यहनामकहायो
दैउपदेश गुरु, चलि गयऊ । मैं चांडूरा में ही रहेऊ
योगानन्द वृक्षाश्रम वासी । विद्यायोगसकलगुणराशी
योगपट्टन को तिनको चलेऊं।बहु पुस्तक पढ़िचितौड़ गयऊं

तहां कृष्णशास्त्री इक रहेऊ । मैं व्याकरण तहां बहुपढेऊ
पुनि चांडूरा को चलि गयऊं । जहं बहुयोगी देखत भयऊं
साध्यों तहां योग विधिनाना । अहमदवादकोकियोंपयाना
क्लिष्ट योग विद्या तहं जानी । गुरुकी कृपा न जाय बखानी

॥ दोहा ॥

आबू पर्वत शिखर पर योगी रहैं गुणवान्
सुनतहि हर्षित हृदय सों तिनको कियो पयान
तहां योग कछु साध कर सुनि मेला हरिद्वार
योगि मिलन की आशसों पहुंचों लगी न वार

॥ चौपाई ॥

बहुत भांति के योगिन देखा । हृषीकेश को मारग पेखा
तहां पहुंचि टिहरी को गयऊं ।जहंबहुपण्डितदेखतभयऊं
पण्डित एक निमंत्रेसि मोहीं । निजगृहमांहिबुलायसिजेहीं
पण्डित तहां दीख यक जाई । मांस काट कर रहा पकाई
त्यागि निमंत्रण बाहरआयऊं ।बहुतन मांस काटते पायऊं

टिहरीकरिकछु दिवसनिवासू। निर्दयता लखि त्यागातासू
तब श्री नगर पुरी को गयऊं। केदारघाट पर ठहरत भयऊं
तंत्रिन मत बहु खंडन कीन्हा। गंगागिरि सों मैत्री कीन्हा
रुद्र प्रयाग नगर बहु हेरे। अगस्त समाधिहिं गये सवेरे

॥ दोहा ॥

शिपुरी गिरि के शिखरपर मास बिताये चार।
गुप्तकाशि पहुंच्यों बहुरि जहां रहेउ कछुवार॥
गौरि कुण्ड भिम गुफाहै त्रिगिप नरायनदेख।
बहुरि केदार सुघाट को लौटि गयों सब पेख॥
कुर्वजशार पहाड़ कों अवलोकन मन दीन।
गह्वर हिम सों जो रहत ढको मुनिन मन लीन॥
निज मन यह धारण कियो रहै देह-चहो जाय।
बिन सच्चे योगी लखे हिये तपन न बुझाय॥
बीस दिवस खोजत फिरेउं पर नहिं पावा राह।
तब निराश ह्वै लौटऊं परम शोक मन मांह॥

तुंगनाथ की शिखट पर लंख्यों पुजारी वृन्द।
पुनि गह्वर वनको गयों मार्ग जाल जहं फन्द॥
पगदण्डी न लखात जहं राह न परत लखात।
ह्वै निराश लौट्यों बहुरि कंटक चुभि२जात॥
सकल वस्त्र तनके फटे फटिगयो सकल शरीर।
शोणितधारा बहि चली बढ़ी हिये अति पीर॥
विविध भांति के दुःख सहि फिरे पाछली ओर।
तब निराश मन आनिकर पहुंचे पहिले ठौर॥
गुप्तकाशी अवलोककर पहुंचे ऋषिमठ जाय।
बड़ा पुजारी जहांका कहत मोहिं समझाय॥
मेरे चेला होहु जो गद्दी देहों तोहि।
तेहि का उत्तर मैं दियो धनका लोभ न मोहि॥
जोधन प्रिय होता मुझे पितुधन क्यों तजि देत।
विद्या तुममें लखाति नहिं मेरी शिक्षा हेत॥
जड़ धन वैभव से मुझे स्वपनेहुं प्रीति न होय।

मैं तो प्रेमी योग का जेहि व्याजि चहौं न कोय॥
प्रात होत मैं कूंचकर जोशीमठ नियरान।
महाराष्ट्र साधून संग रहेउ जहां सन मान॥

॥ चौपाई ॥

योग साधना कुछदिन कीन्हा। बद्रिकाश्रमकामारगलीन्हा
रावल जो महन्त तहं रहेऊ। तिनसोंशास्त्रबातबहुभयऊ
तिनसों योगी विषय चलावा। पर न किसीके दर्शनपावा
एकदिवसप्रातहिंचलिदीन्हा। योगीमिलनकोव्रतभलकीन्हा
गिरिके शिखर अनेकमझायो। अलक नदीके तटपरआयो
जब आगे को पैर बढ़ावा। घन हिम कण्टक बहु दुख पावा
न्यून वस्त्र मम संग हिम भारी। तातेंशीतनसक्यों सम्हारी
क्षुधातृषा तेहिक्षण दुख दीन्हा। हिमअहारमूनसामनकीन्हा
भूख न शांति भई कोइ भांती। शिथिलशरीरभयोआराती

॥ दोहा ॥

तब विचार मन यह कियों नदी पार ह्वै जांव।

दश बिलस्त चौड़ाव जेहि हिमकण फोरत पावं॥
रुधिर स्रवत युग पादसे कम्पित दुखित अधीर।
कछुक्षण मूर्च्छा सी भई जाना जात शरीर॥
बिविध भांति के दुःखसहि भयों नंदी के पार।
सकल वस्त्र तन काढ़िकर घुटनन राख्यों भार॥
कछुक काल जब चेतभा बद्रिकाश्रम चलिदीन।
रावलजी अरु अपर सों बहुरि समागम कीन॥

॥ चौपाई ॥

कछुक दिवस तेहिठौरबिताये। बहुरिरामपुरओरसिधाये
योगी तहां रामगिरि मिलेऊ। तेहि ते बहुत बार्ता रहेऊ
पुनि मैं काशीपुर में आई। शरद ऋतू सब तहां बिताई
संभर मुरादाबाद बिलोकी। गढ़मुक्तेश्वर मारगछोकी
सुरसरि तीरको लियो दबाई। फरुखाबादहिं पहुंचे जाई
चारि मास तेहि नगर बिताई। बहुरि कानपुर पहुंचआई
तेरह दिवस तहांपर रहेऊं। बहुरिप्रयागराजकोगयऊं

तहां कछुक दिन कियोंनिवासू। पुनि मिर्जापुर लियोंसुपासू
तीनमास तेहि नगर विताये । तववाराणसिदिशिकोधाये
चारिमास मारग में लाई । सघन नर्मदा तट में जाई
तहां अरण्य अनेक निहारी । पुनि पूरबकीदिशाबिचारी
नगर नगर व्याख्यानसुनाई । सत्य धर्म्म की प्रथाचलाई
करि पर्य्यटन देश बहु वारा । पोपनकोंबहुबिधिफटकारा
सतयुग अब भारत में छयऊ । वेद धर्म्म को गौरवभयऊ

॥ दोहा ॥

सम्वत उनइस सौछीस बिक्रमि मंगल वार।
कार्तिक शुक्ला द्वादशी वाराणसि दरबार ॥

॥ चौपाई ॥

बिचरत बिचरत पहुंचे काशी । जहांवसतपण्डितसंन्याशी
आनन्द बाग में उतरे जाई । विज्ञापनंयहादियोदिलाइ
प्रतिमा पूजन माला छाला । वेदविमुखयावतकुछजाला
वैष्णव शैवशक्त मतखण्डन । करिहोंसकेकरैसोमण्डन

धूमधाम यह सब दिशि छयऊ। पण्डितबस्ताखोलतभयऊ
वेदशास्त्र सब गये मझाई । पर यह बात कहूंनहिं पाई
मगहर पति काशी के राजा । तवजोरेउ पण्डितनसमाजा
पूंछेउ अब क्या करियें उपाई । बोलेतवपण्डितसमुदाई

॥ सोरठा ॥

कीजिअ कोइ उपाय जामें रह प्रचलित प्रथा।
शास्त्रार्थ कराय हमहिं दयानन्द सरस्वतिहिं॥
यह निश्चय उर धारि काशीपति पण्डितन लै।
पहुंचे तहं पर जाय लागि गई सुन्दर सभा॥

॥ चौपाई ॥

स्वामी ने राजा से कहेऊ। वेद ग्रन्थ राउर संग लयऊ
राजा प्रत्युत्तर यह दयऊ। सबपण्डितनकण्ठश्रुतिधरेऊ
भिनपुस्तकप्रकरणभ्रमहोई । पूर्वापर यथार्थ न होई ॥
वेदन सही विषय क्या होई। करैं विचार परस्परजोई ॥
प्रतिमापूजनकरहुतुमखंडन ।विदुषनकह्योकरवहममंडन

स्वामी कह्यो भली यह बाता। जोतुम सबमें हो विख्याता
जोतुम सब सम्मति बरहोई। मोहिं संगकरै बिचार सुसोई
कोतवाल रघुनाथ प्रसादा। बांधेउ एही विधि मर्य्यादा

॥ दोहा ॥

नैयायिक तारा चरण सन्मुख बैठे आय।
शास्त्र बात होने लगी सभा जमी जेहिलाय

॥ चौपाई ॥

स्वामी तब पूंछेउ पण्डितसों। प्रतिमा विधिसिधि करौ वेदसों
पण्डित प्रत्युत्तर यह दयऊ। यदि न वेद बहु ग्रंथन कहेऊ
प्रथम वेद पर करिय बाता। अन्य ग्रन्थ पीछे श्रुतिपाता
प्रथम प्रमाण वेद की होई। पुनिसम्मति युतपुस्तकजोई
एह विधि भयो बहुतसंवादा। मूलरहितजोहिंकियोबिवादा
निर्णय तत्व न एकौ भयऊ। तर्क वितर्क बहुत चिरभयऊ
निज निज गृह गवने सबभाई। निर्णय एकौ बात न पाई

सोरठा ॥

जहां बसत हठराज निर्णय कैसे होयतहं।
यद्यपि धनी समाज पर निश्चय नहिं कछुभयो॥

॥ चौपाई ॥

संवत् उनइस सौ उन तीसा। कलकत्ते की मारगदीसा
पुनि हुगली को गयो दवाई। ताराचरणबसतजहंन्याई
बृन्दावन बाबू फूलवाई। चन्द्रबाग में उतरेजाई
धनी समाज जमी तहं जाई। ताराचरण न्यायि तहंआई
कियोविविधिविधिवाद अपारा। प्रतिमापूजनविषयविचारा
यहां बात निश्चय यह पाई। प्रतिमापूजन श्रुतिनहिंगाई

॥ दोहा ॥

संवत् उनइस सौछीतिस गुरुदिन श्रीयुत राज
विजय नगर महाराजकी आनन्द बाग विराज॥
विज्ञापन तेहि नगर महं यह दीन्हो दिलवाय।
वेद विमुख यावत् मत सब असत्य दर्शाय॥

करिहौं मैं खण्डन तिन्हें मण्डन करै जो कोय ।
करै वाद तो आय कर जेहि की इच्छा होय ॥
पर न किसी ने आयकर शास्त्र वाद मन दीन ।
कछुक दिवस तहं वासकर आगे मारग लीन ॥
मेला ब्रह्म विचार हित चान्दापुर सुनिकान ।
मुन्शी प्यारे लाल ने कियो बड़ा सामान ॥
प्रान्त प्रान्त के विदुषगण मुसल्मान कृष्टान ।
सत्य धर्मके खोज हित मेला जुरो महान् ॥
मुहमद क़ासिम आदिक पांच यवन इकओर ।
स्काट साहब आदिक पांच दूसरी छोर ॥
स्वामि दयानन्द इन्द्रमणि ये दो आर्यन केर ।
सब पण्डित ज्ञाता सुजन विकट वाद झक झेर ॥
ब्रह्म निरूपण विषय पर कियो वाद बहुभांति ।
जाकी गाथा अकथ है वर्णि न मोपै जाति ॥
स्वामी जीका पक्ष ही सब विदुषन मन भाव ।

दो दिन तक मेला रह्यो सुख बर्द्धक अरु चाव ॥
पुनि सब निज निज गृह गये स्वामीगे पन्जाब ।
जैनिन कोलाहल कियो जाको नहिं हिसाब ॥
नालिश करने के लिये कीन्ह्यो अति बकवाद ।
जल्पि जल्पि हिय हारिगे सब विधि भे बरबाद ॥

॥ चौपाई ॥

तहं ते विचरि गये अजमेरा । ग्रे पादरी से भा भट भेरा ।
बहुप्रमाणसे श्रुतिकियोमंडन।पुनिबाइबिलकोबहुथलखंडन
जहं तहं भये अनेक विवादा ।जीतिउ हिये न हर्ष विषादा
करि पाखण्ड विविधविधि खंडन।कीन्ह्यो वेदपंथ भलमंडन
धूर्त पखंडि रहे खिसियाई।बाज झपट जनु लवा छिपाई
करि पर्यटन देश बहु वारा। पोपनको सब विधि फटकारा
विद्वानन भलि भांति बिचारा। यही सनातन धर्म हमारा
मिलि २ जुत्थ २ गुण वाना। नगर नगर महं कियो समाना
वेद पुरान धर्म जिन जान्यो ।सभा वेदपथकी तिन ठान्यो

आर्य समाज नाम सबदीन्हा। वेद मण्डली चहुंदिशि कीन्हा

॥ दोहा ॥

वेद सनातन धर्म की बनी मण्डली चारु ।
वेद ध्वनि चहुं दिशि छयो सतयुग मनहुं प्रचार ॥

॥ छन्द ॥

लागे सकल दिशि होन मख सन्ध्यादि बन्दन सब करैं ।
विद्या प्रदान सुगान वैदिक प्रति नगर श्रवणन परैं ॥
व्याकरण वेद सुशास्त्र मुद्रित होंहि भाषा अर्थ में ।
अवलोकि लघु विद्या विभूषित भाव जानै अल्प में ॥
रोवत अविद्या फिरहि चहुं दिशि हाय अब कहं जाइये ।
विद्वान् आरज शत्रु हुइगे कित गये सुख पाइये ॥
स्वामीके देखत प्राण सूखत आर्य देखत जिय डरै ।
अब किधर जाई जियन पाई दैव धौं कैसी करै ॥

॥ दोहा ॥

बहुत बार भारत विचरि कीन्ह विजय चहुं ओर ।

दश प्रकार के ये नियम प्रकट्यो श्रुतिकी छोर ॥

नियम दोहा

(१)सब सद्विद्या तासु जो जोपदार्थ कछु आहिं
तासु मूल परमेश्वर यामे संशय नाहिं ॥

सोरठा

(२)नित्य सच्चिदानन्द अजर अमर परमेश्वर ॥
सर्वाधार अजन्म निर्विकार अनुपम शुचि ॥
सम अरु न्याइ दयाल अन्तर्यामी सकलहिय
सृष्टि जहां लगिजाल ताकारक प्रभु अगमजो

॥ दोहा ॥

निराकार सर्वेश्वर सर्व शक्ति जेहि माहिं ।
सोई अनन्त सेवहु सकल परम प्रेम अवगाहिं

॥ चौपाई ॥

३-सद्विद्याकी पुस्तक वेदा । पढ़हु सकल सोई तजि२खेदा
४-तजहुअसत्यगहहुसबसत्या । उद्यतरहहु धर्म्मकोनित्या

५-प्रथम विचारहु धर्म अधर्मा। कीजे सत्य होय जो कर्मा
६-आर्यसामाजिक केवलधर्मा। परोपकारतनमनबचकर्मा
७-प्रीतिभावसोंसबसोंभाषण। यथाधर्मशुचिसभाप्रकाशण
८-विद्याबुद्धि अविद्यानाशन। आर्य्य जनका धर्मसनातन
९-निज२उन्नति जनिसन्तोषहु। परोपकारसोउन्नतिपेखहु
१०सामाजिकअरुसबहितकारी॥पालहुनियमतकलनरनारी

॥ दोहा ॥

इनमें रहहु परतन्त्र सब निज२रुचि अनुसार।
परस्वतन्त्र प्रत्येक हित करहु युक्त व्यवहार ॥

॥ छन्द ॥

सतयुग प्रचारत सकल भारत नगर पुर बिचरनाकियो
शुचि विमल धर्म पीयूष धारा सकल वीथिन सरासियो
दुर्भाग्य भारत लागि सो योगीश सुर पुर चल दियो
भारत अनाथ विहाय हमको अकथ दुख तन दैगयो
जो शोक उपजत हृदय में सों रक्त अश्रु बहावई ॥

यहि लागि यह संक्षेप जीवन चरित इतिश्री पार्वई॥

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का स्वर्गवास जो उस समय लिखा गया था

॥ छन्द शिखरिणी ॥

अहो अनरथ हुइगा भारत हितैसी चलिबसो
प्रभाकारी जग का श्रुतिपथ उधारक छिपिगयो॥
सकल नरनग चलिगो सतयुगप्रचारकउठिगयो॥
अहो हा हा हा हा स्वामी हमारो चलिगयो॥ १ ॥
महायोगी ध्यानी ज्ञानी बखानी हरि गयो ॥
पताका भारत का सुन्दर मुकुट मणिगिरि गयो॥
सकल जग हितकारी सुरपुर बिहारी हुइ गयो॥
अरेस्वामी हमरे बुध गण बिमलबर चलिगयो॥
जगत् उन्नतिकारी पूरण ऋषीश्वर बुटि गयो॥
हमारे हिय तमका रविहाय अन्तर हित भयो ॥

महारात्री जड़ता जलनिधि उतारक डुबिगयो॥
अरे हा हा हा हा स्वामी हमारो उड़िगयो॥ ३॥
सकल प्राणीजगके तन बसन सम धारणकिये॥
धोवै टूटै फाटै यकदिन फटैं संशय नहीं ॥
समय पै जो फाटैं कोइ तेहि नसोचै दुखभरे॥
भरी वयमें स्वामी निजकृतपरित्यज्य भगिगो४॥
जोधपुर में जाकर श्रुति मत कथा बहुविधिकहीं॥
पढ़ायो भूपति को उत्तम प्रथा राजपदकी ॥
छिपे सारे पोप उड़गण यथाचन्द्र लखिकै ॥
सुनामी श्री स्वामी अमर पुर धामी उड़िगयो॥
सुनी ऐसी बाता प्रोहितन तिनको बिषादियो॥
खुली तिनकीजड़ता कल्पित प्रथा दर्श होइगये॥
लखीजिविका जाती दुर्मति अधर्म्मी करिग्रयो॥
दियोविष हा हा हा स्वामी हमारो चलिबसो॥ ६॥
व्यथित भेज वस्वामी आबू पहाड़हिं चढ़िगयो॥
न देखी जब स्वास्थी पुनि आय अजमेरहिंछयो॥
गरल दुस्सह पीरा दग्ध्यो शरीरा सब विधि॥

दिवाली की सन्ध्या बिकसित सुस्वामीतनुतज्यो॥ ७
शून्यश्रुति ग्रह इन्दु विक्रमि सुमङ्गल दिनरहो॥
तथातीस अक्टूबर सनगुण अठा अष्टशशिमें॥
सजे मङ्गल आरति सब नगर फेरैं मन मरे॥
मनावें ईश्वर को स्वामी किसिबिधि नहिंरह्यो॥ ८॥
नपूरियो श्रुति अर्थ गोदुख नमिट्यो मनचहो॥
रही कांक्षा चितमें जग जनक तिनको हरिलियो॥
तजत तन निजकार्या पूरण अखण्डहिं दैगयो॥
पुरै मनसा तेरी यह कहि सुस्वामी दुरिगयो॥ ९॥
लग्यों जे बृक्ष सींच्यो सुधा प्रेमरस सों ॥
बढ़ैं फूलैं पाकैं शुचिफल धरैं जगभल करैं॥
दृढ़ व्रत हौं श्रुति में कांक्षा मेरी केवल रही॥
करिय पूरणदेव मोक्षहि दयानन्द सुलह्यौ॥ १०॥

इन पूर्वोक्त श्री स्वामी दयानन्द जी का प्रथम नाम मूल शंकर था ये काठिया बाड़ देशमें मौर्वी राजमें सम्वत् १८८१में उत्पन्न हुए और सम्वत् १९४० तथा ता० ३० अक्टूबर १८८३ ई०में अजमेर नगरमें स्वर्गवासी हुए

भजन नम्बर १४४

रागनी जोगिया—ताल शूल

उपज्यो दएडी छिपे पाखएडी. डरेहैं धमएडी धूर्त अन्याई
विद्या पाकर निकला दिवाकर, तिमर हटाकर ज्योति दिखाई
आयेहैं स्वामी दयानन्द नामी, गर्ज सभा में सिंहकी न्याई
सत्यका मंडन दम्भका खंडन, कर पाउ तलककी धूल उड़ाई
डरे हैं प्रमादी अनीश्वर वादी, पौराणिक दें राम दुहाई
बड़े२ नास्तिक होकर आस्तिक, हाथ जोड़ आए शरणाई
कर शास्त्रार्थ रच सत्यार्थ, सत्योपदेशों की धूम मचाई
लोक लोकान्तर मत मतान्तर, कर नसका कोई उनसे लड़ाई
देश देशान्तर द्वीप द्वीपान्तर, मानचुके उनकी पाण्डिताई
वेदोंके बल से युक्ति प्रबल से, कलियुग की काया पलटाई
तप अखंएड से तेज प्रचंड से, रिपुअनकी छतियां धड़काई
योगीन्द्र महर्षि आत्मदर्शी, दिग्विजय जिन के हिस्से में आई
अमीचन्द ऐसा होना कठिन है, धर्म्म अवलम्बी वेद अनुयाई
कष्ट उठाये नहीं घबराये, धर्म्म न हारा यदि विष खाई

ओ३म् तत्सत् परमात्मने नमः

आर्य हिन्दू और नमस्ते का अन्वेषण ॥

पुस्तक संख्या २५

श्रीयुत स्वर्गवासी धर्मवीर पं० लेखराम जी आर्यपथिक कृत ।

श्रीयुत पं० रामविलास शर्मा मन्त्री आर्यसमाज शाहाबाद जिला हरदोई अनुवादित

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड " द्वारा प्रकाशित ॥

पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक "वेदप्रकाश" के प्रबन्ध से स्वामियन्त्रालय—मेरठ में छपाया ॥

आर्य संवत् १९७२९४८९९९ डिसम्बर सन् १८९७ ई०

प्रथमवार १०००

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित वैदिक-पुस्तकप्रचारकफण्डकार्य्यालय सदरमेरठ के विक्रेय पुस्तकों का सूचीपत्र ॥

पुरुषसूक्त अर्थ सहित)॥ ईसाईमत संसार में कैसे फैला (पं० लेखराम जी कृत))॥ महाशङ्कावली)। १ भाग दूसरा भाग)। आह्वा)। नीतिशिक्षावली)। सुशीलादेवी)। ईसाईमतखण्डन १ भाग)। दूसरा)। शिवलिङ्गपूजाविधान)। श्रीरामजीकादर्शन, कलियुगलीला, काशीमाहात्म्य)। नित्यकर्मविधिः)। पुराणकिसनेबनाये, श्रीस्वामीशङ्करानन्द के अनमोल उपदेश, अमेरिकानिवासी मि० डेविस के आर्य्यसमाज और स्वामी जी पर विचार, ईसाईलीला, ये पुस्तकें आधे २ पैसे की हैं ॥ क्यास्वामीदयानन्दमक्कारथा)॥ मनुष्यजन्म की सफलता)॥ मनुष्यसमाज)॥ श्रीस्वामी जी का जीवनचरित्र)॥ पं० रामचन्द्रवेदान्ती का उत्तर)। रामायण का आह्वा)। (अन्य) धर्मप्रचार)॥ नमस्ते)॥ वायुमण्डल)। आह्वाध्वनि धर्मसार १ भाग)। दूसरा)। हरियशविनय)। शिक्षावली)॥

पता-ब्रह्मानन्द सरस्वती सदर-मेरठ

ओ३म्

हिन्दू-आर्य्य और नमस्ते का अन्वेषण

धर्मवीर पं० लेखराम आर्यपथिक कृत तथा पं० रामविलास शर्मा अनुवादित

समय ऐसा पलट गया, और अविद्याने वह दिवस दिखाया, कि लोगों को अपने शुद्ध नाम आदि कहलाने का भी विवेक न रहा। समस्तसंसार में उत्तम, सभ्य और यथार्थ नाम भुला कर एक गुप्त, कल्पित, असभ्य व निकृष्ट कलङ्क से हमारे भ्राताओं को प्रेम हो गया, और सच्चे नाम की प्रतिष्ठा दूर होकर उसका जानना व मानना भी मिट गया, और अविद्या का यहां लौं बसेरा हुआ कि आर्य्य के स्थान पर हिन्दू और आर्य्यावर्त्त के स्थान पर हिन्दोस्तान कहवाने व कहने लगे, शोक ! ३। अतएव उचित जान पड़ा कि विस्तारपूर्वक इसका अन्वेषण करके सत्यासत्य का पूरा प्रकाश किया जावे, जिस से विरुद्धपक्षी पुरुषों को कुछ बोलने का स्थान न रहे। विदित हो कि हम आर्य्य लोग इस हिन्दोस्तान व हिन्दू नाम को कई कारणों से बुरा जानते हैं। देखोः-

(१) हमारी जाति का हिन्दू नाम किसी संस्कृत पुस्तक में नहीं लिखा, वेद शास्त्र व पुराणों से लेकर सत्यनारायण की कथा (जिसको बने थोड़ा समय हुआ) लौं में भी कहीं इस का चिह्न नहीं मिलता। अतः हमारा नाम हिन्दू नहीं ॥

(२) कभी किसी दैनिकस्मृति (डायरी) तिथिपत्र, रोज़नामचह, वही, जन्मपत्री, टेवा, आदि में भी हिन्दू या हिन्दी शब्द व हिन्दोस्तान आदि नाम नहीं लिखे गये, जिस से उत्तम प्रकार सिद्ध है कि हम हिन्दू नहीं हैं ॥

(३) हमारे यहां की भाषापुस्तकों में भी (जो मुसलमानी समय के प्रथम की रची हैं किन्तु इस्लामी समय की रचित पुस्तकों में भी) यह शब्द प्रयोग में नहीं आये, यहां लौं कि किसी धार्मिक वा जातीय रीति के समय अब तक हिन्दू आदि शब्द काव्य में नहीं लाये जाते हैं, अतएव किसी भांति स्वीकार नहीं कि हिन्दू नाम हमारा हो ॥

पादरी टाम्सहावल अपनी "तशरीह अस्माय हिन्दू आर्य्य" नाम पुस्तक में कहते हैं कि यह हिन्दू शब्द उस नदी के नाम से बना है, जो सिन्धु कहाती है, क्योंकि प्रायः शब्द जो संस्कृत से फ़ारसी में आगये हैं, वह इस

प्रकार बदले हुये पाये जाते हैं। जैसे सप्ताह से हफ़्तह, दशम से दहम, सहस्र से हज़ार, इसी भांति सिन्धु का हिन्दू हो गया, ऐसा जान पड़ता है। जिस से प्रयोजन है कि सिन्धु नदी के तट के निवासी ॥

उत्तर—पादरी साहेब इतना तो मानते हैं कि यह शब्द फ़ारसी का है, परन्तु संस्कृत से आया हुआ अर्थात् संस्कृत के सिन्धु से हिन्दू बना है, ऐसा कहते हैं। विदित हो कि यह भी अशुद्ध है, क्योंकि यूनानी लोग, रूम, ईरान, व अफ़ग़ानिस्तान के मार्ग से आर्य्यावर्त्त में आये और मार्ग में जैसा किसी देश का नाम सुना, वैसा ही प्रयोग किया, अक्षर "स, का "ह" से बदल जाना हम ने माना, परन्तु फ़ारसी में, संस्कृत में किसी भांति नहीं। हां संस्कृत में सिन्धु और सिन्धव (देखो निघण्टु १, १३ और उणादि कोष १,११) दोनों नदी को कहते हैं पर सिन्धु कदापि आर्य्यावर्त्तनिवासियों के लिये नहीं बर्त्ता गया, और न उचित है, लेकिन फ़ारसी लुग़ात (कोषों) के अनुसार जो इस शब्द के अर्थ हैं वह सहायक जान पड़ते हैं ॥

सिन्द—दर फ़ारसी बकसरे सीन व मानी—हरामज़ादा (जारज) बद (बुरा) शरीर (दुष्ट) क़ाफ़िया मायूब (बुरा क़ाफ़िया) देखो, कश्फ़, सिराज, मुंतख़िब व ग़यास, व

लतायफ़ुल्लोग़ात्। भारत की सीमा के निवासी विदेशियों को लूट लिया करते थे, इसलिये उन का नाम विदेशियों ने सिन्धु या हिन्दू रक्खा। और दोनों शब्द फ़ारसी में एक ही अर्थ रखते हैं, और इस देश की बोल चाल में भी नक़ब को सेंध कहते हैं, और अफ़ग़ानीभाषा में नदी को सेन कहते हैं जिस से सेंध लगाने वाले का नाम है, यह सिन्धु या हिन्दू सिद्ध होता है, किसी उत्तम पुरुष का नहीं फिर आर्य्यों का? अतः आप का यह कथन सब भांति अनुचित है॥

पादरी—सम्भव है कि यह हिन्दू नाम संस्कृत के शब्दों से बना हो। अर्थात् हीन और दोष से, जिस्के अर्थ निर्दोष के हैं। और सम्भव है कि अधिक प्रयोग में आने के कारण कुछ शब्द छूट भी गये हों, जैसा कि हिन्दू स्थान के स्थान पर हिन्दुस्तान बोला जाता है और बुद्धि भी स्वीकार करती है कि हिन्दुओं के पूर्व पुरुषों ने जो बुद्धिमान् थे, इसी नाम को जिस्के अर्थ निर्दोष के हैं अपनी जाति के लिये स्वीकरलिया हो॥

उत्तर—आप का कल्पित सम्भव संस्कृत के अनुसार महाअसम्भव है क्योंकि संस्कृत के किसी कोष या इतिहास में इस्का पता नहीं मिलता, अतएव हिन्दुओं के पुरुषाओं का प्रचरित किया हुआ यह नाम नहीं। किन्तु अन्य जातियों का आर्य्यों के विषय में कलङ्क है, और यह शब्द हिन्दूस्थान भी महाअसम्भव और बेजोड़ है क्योंकि एक फ़ारसी दूसरा संस्कृत है। हां—इस्के मानने से किसी को नाहीं नहीं कि जिस भांति और भाषायें संस्कृत से निकली हैं उसी भांति संस्कृत के स्थान से फ़ारसी का "सितां" बना है—परन्तु अरबिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, फ़िरंगिस्तान, इंगलिस्तान, जाबुलिस्तान, तुर्किस्तान, बिलोचिस्तान, गुलिस्तां, बोस्तां, दबिस्तां, ताकिस्तान, नख़लिस्तान चमनिस्तान की भांति हिन्दोस्तान भी है, कोई शब्द इस में से छूटा हुआ नहीं है। अतः यह आप का कथन अत्यन्त निर्मूल है कि यह हिन्दुओं की बनावट है। नहीं २ महाशय यह विदेशियों का लगाया कलङ्क है और सब से अधिक यह मुसलमानों के कारण काम में लाया जाता है जैसे कि इस्के प्रमाण में निम्न लिखित साक्षियां हैं॥

(१) हज़रत मासियः की माता का नाम हिंदिया था, क्यों कि वह श्यामवर्ण (कालेरंग) की थी। (मसालिब)॥

(२) "हिन्द, बिल्कस्र, नाम ज़ने कि क़ातिल अमीर हम्ज़ा-

बूदह अस्त" (मुंतख़िब)

अर्थ–हिंद एक स्त्री का नाम था जिस ने अमीर हम्ज़ा को वध किया (अनुवा०)

(३) "हिंदू–दर मुहावरे फ़ार्सियां व मानी दुज़्द व रहेज़न गुलाम मेआयद (ग़ायाबां–ग़यास)

अर्थ–हिंदू शब्द फ़ार्सियों के मुहाविरे में चोर, राहलूटने वाले व गुलाम अर्थ में आता है। (अनुवादक)

(४) हिंदूज़न–ज़नेसाहेरारागोयंद अर्थात् जादूगरनी स्त्री। (ग़यास–करीम)

(५) हिंदूया अर्थात् हिंदोस्तान, या दवातं (सियाही) "कश्फ"

(६) हिंदूयपीर–ज़ोहल कि दर आस्मान हफ़्तुम अस्त व पास्बान मुल्क अस्त व रंग सियाह दारद, अक्सर पासियान हिंद कि इशारा सादही गोयंद रंग सियाह मेबाशद (कश्फ़)

अर्थ–शनैश्चर जो सातवें आस्मान में है और देश का निगाहवान (रक्षक) है, रंग उसका काला है। अक्सर हिंदोस्तान के पासी जिन को सादही या साधी कहते हैं उन का रंग काला होता है। (अनुवादक)

(७) हिंदूय चर्ख़ हफ़्तुम, बिलकस्त्र यानी ज़ोहल कि नहस

व सियाह अस्त। (कश्फ़वुर्हान)

अर्थ–शनैश्चर जो अशुभ व काला है। (अनुवादक)

(८) हिंदूयबारीकबीं व हिंदूयसिपहेर हफ़्तुमी, व हिंदूयगुबदेगर्दी, ज़ोहल (शनैश्चर) (कश्फ़)

(९) हिंदूयतो, बिलकस्त्र गुलाम व बंदये तो (कश्फ़)

अर्थ–तेरा गुलाम, (अनुवा०)

(१०) हिंदू–बकस्त्र गुलाम, बंदह, काफ़िर व तेग़ (कश्फ़)

(११) चार हिंदू दरयके मस्जिद शुदंद, बहेरे ताअत राके ओ साजिद शुदंद।

अर्थ–चार हिंदू (गुलाम) एक मस्जिद में इबादत करने व सिजदा करने गये। (अनुवादक)

(१२) ज़ुल्फ़ दिल् बंदशसबारा बंदर गर्दन नहद बा हवादाराने रहेरो हीलये हिंदूबबीं ॥

अर्थ–उसकी यानी माशूक़ की दिलफ़रेब ज़ुल्फ़ हवा की गर्दन में भी गिरहें लगाती है। इस जादूगरनी के फ़रेब को देखो हवा की तरह राह चलने वालों के साथ क्या कर रही है। (अनुवादक)

(१३) अगर आंतुर्कशीराज़ीबदस्त आरद दिलेमारा, बख़ाले हिंदुअश बख़शम समरकंदोबुख़ारारा (हाफ़िज़)

अर्थ–अगर वह शीराज़ का सिपाही (माशूक़) मेरे दिल

को अपने कब्ज़े लावे तो मैं उसके स्याह तिल पर समरकन्द व बुखारा निछावर करदूं (अनुवा०)

(१४) ख्वाजयेरा बूद हिंदू बन्दये । पर्वरीदा कर्दा ओरा ज़िन्दये (मसनवीरूमी)

अर्थ—एक ख्वाजे का एक काफ़िर गुलाम था उस ने उस को पाला और जीवित किया। (अनुवादक)

(१५) दो हिंदू बर आयदज़ हिंदोस्तान । यके दुज़दबाशद यके पासबान (सादी)

अर्थ—जो हिन्द से दो हिंदू आवें तो एक उन में से चोर हो दूसरा चौकीदार (अ०वा०)

(१६) दो हिंदूये अज़पस संगे सरबर आवुर्दन्द (गुलिस्तां)

अर्थ—पत्थर की आड़ से दो चोर दिखाई दिये (अ०वा०)

(१७) हिन्दूयनफ्त अन्दाज़ी मे आंमोख्त—हकीमें गुफ्त तुरा कि ख़ाना नैईन अस्त—बाज़ी न ईन अस्त—(गुलिस्तां)

अर्थ—एक हिन्दू अग्नि वर्षाना सीखता था, एक बुद्धिमान् ने कहा कि तेरा घर बांस का है अर्थात् छप्पर है, यह खेल नहीं है। यहां हिंन्दू का अर्थ गंवार, झोंपड़े का रहने वारा, बिना सोचे काम करने वाला। अ० वा०

(१८) चे हिन्दू हिन्दुये काफ़िर। चे काफ़िर काफ़िरे रहेज़न। चे रहेज़न रहेज़ने ईमां। (चमने बेनज़ीर)

अर्थ—कैसा हिन्दू हिन्दूय काफ़िर। कैसा काफ़िर काफ़िरे रहज़न। कैसा रहज़न, ईमान का। (अनुवादक)

(१९) ख़ालेनबर आरिज़े आं शाहेद मस्त अस्त। हिन्दू बचा ईस्त कि ख़ुर्शेदपरस्त अस्त। (कुल्लियात)

अर्थ—माशूक़ के गाल पर तिल नहीं है। वह एक हिन्दू का लड़का है। जो सूर्य्य को पूज रहा है॥ (अ० वा०)

(२०) जहां हिन्दूस्त ता रख्त न गीरद। बगीरश मुस्त ता सख्त न गीरद (शीरींख़ुसरो)

अर्थ—दुनिया चोर या डाकू है। ऐसा न हो तेरा अस्वाब ले लेवे। तू उसके साथ सख्ती कर। ताकि वह तेरे साथ सख्ती न कर सके। (अ० वा०)

(२१) दोगे सूयश दो हिन्दूये रसनबाज़। ज़ेशमशादे सर अफराजश रसनसाज़ (ज़ुलेखा)

अर्थ—माशूक़ की जुल्फें दो नट हैं। जो उसके क़द (शरीर) पर खेल रहे हैं। वा कला कर रहे हैं (अ० वा०)

(२२) यके ख़ाले सियह जाकर्द बर कुंजे लबे लालश। तो गोई बर लबे आबेबक़ा बेनशिस्त हिन्दूये। (ज़हीर फ़ार्याबी)

अर्थ–माशूक़ के लाल होठों के निकट जो तिल है वह ऐसा जान पड़ता है कि अमृतकुण्ड के पास एक हिन्दू बैठा है (अ० वा०)

(२३) कुनद दर पेश पाये आंनिगांरी सिजदहाज़ुल-फ़श। बलेकारे बेह अज़ आतिशपरस्ती नेस्त हिंदूरा। (दीवानग़नी)

अर्थ–उस के रंगे हुये (महावर लगे) पावों पर जो उस की ज़ुल्फ़ लटकती है तो आश्चर्य्य क्या। हिंदू का काम ही अग्निपूजा है। (अनुवादक)

(२४) मन आं तुर्के सियह चश्मम् बरीं बाम। कि हिन्दूये सफ़ैदत शुद मरा नाम (शीरी खुसरो)

अर्थ–मैं इस अटारी पर ऐसा काली आंख वाला सिपाही हूं कि मेरा नाम सफ़ेद हिन्दू हुआ। और यही शब्द फ़ार्सी अर्बी इबरानी आदि भाषाओं में लगभग इन्हीं अर्थों में प्रयोग किया गया है। किन्तु ऐसी स्यात् ही कोई पुस्तक होगी जिस में यह शब्द इन अर्थों में न आया हो। जिस से सब भांति सिद्ध है कि यह हमारा नाम नहीं, सर्वथा त्याग करने योग्य है और शत्रुता व डाह से रक्खा गया है, जैसे कि हम ने उन के लिये यवन, म्लेछ आदि॥

(पादरी) फिर संस्कृत भाषा में राम आर्य्य वा फ़ार्सी में ईरानी दोनों ही एक मस्दर या धातु "आर" से निकले और आर्य्य व ईरानी के अस्ल अर्थ हल चला कर खेती करने वाले के हैं और वास्तव में यह नाम आर्य्य जाति के लोगों का उस समय था जब यह केवल खेती कर के हलवाही करने से रोटी कमाते थे॥

(उत्तर) खेद का स्थान है कि जिन को मस्दर या धातु का ज्ञान नहीं वह भी आक्षेप करने पर कटिबद्ध हो जाते हैं। हज़रत! "आर" धातु नहीं किन्तु "ऋ" है। जिस से संस्कृत में आर्य्य और अर्य्य नाम बने हैं। और इसी से फ़ार्सी पहलवी में ईरानी बना है परन्तु आर्य्य व अर्य्य भी एक नहीं वह और रीतियों से बना है और यह और से। पहला समस्त जाति (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र) का नाम है और दूसरा केवल वैश्य का। जैसा कि वैश्यों के (मनुस्मृति अध्याय १० श्लोक ९० में)–

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥

पशुओं की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार करना, ब्याज लेना, खेती करना, सात काम लिखे हैं। और पञ्जाबी मसल है–उत्तम खेती मध्य व्यापार। निषिद्ध

री भीख गमार,॥ आर्य्य के अर्थ संस्कृत के अनुसार हान् श्रेष्ठ विद्वान् धार्मिक व ईश्वरभक्त के हैं और ऐसा ही कथन मैक्समूलर साहब का भी है। (देखो सायन्स आफ़ दी लैंगवेज पृष्ठ २७५) कि "आर्य्य के अर्थ महान् विद्वान् देवता और सभ्य व शीलवान् देवताओं की प्रतिष्ठा करने वाला हैं। क्योंकि यह शब्द दस्युओं के विरुद्ध है"॥

और समस्त आर्य्य कभी खेती नहीं करते थे किन्तु आदि ही से वह चार भागों में विभाजित हैं जिस्की आज्ञा पवित्र वेद में भी है। मानो वही शिक्षा इस्की जड़ है अर्थात् विद्या का पढ़ना पढ़ाना यज्ञ करना कराना दान देना लेना जो मुख्यकर्म हैं उन का करने वाला ब्राह्मण। विद्या पढ़ना दान देना यज्ञ करना देश व जाति की रक्षा करना जो शारीरिक बलसम्बन्धी हों इन का कर्त्ता क्षत्री और उपरोक्त लेखानुसार देशाटन करके व्यापार करने हारा वैश्य। और महामूर्ख सेवक का नाम शूद्र है। परन्तु सदा आर्य्यजाति में से वैश्य कृषि करनेहारे रहे। या खेती करने हारा वैश्य नाम से प्रसिद्ध रहा। पर समस्त मनुष्यों का कार्य्य प्राकृतिक नियमानुसार खेती ही करना नहीं है। नहीं तो विद्या शूरता रक्षा देश की सेवा

परोपकार कौन करे। और इसी प्रकार ईरानी जाति भी विभक्त है। और पुस्तक " दबिस्ताने मज़ाहेब " और "ज़िन्दावस्ता " व "आबेहयात" से उत्तम प्रकार प्रमाणित है। और इसी की पुष्टि मैक्समूलर के यहां से भी प्रकट है। अर्थात् पार्सी जन आर्यावर्त्त से उठ कर ईरान में बसे (देखो सायंस आफ़ दी लैंगवेज पृष्ठ २८८) और इतिहास भी इस की साक्षी देता है कि प्राचीन यूनानी व रोम वाले व अंग्रेज़ व फ्रांसीसी व जर्मनी व फ़ार्सी आदि सब के पूर्व पुरुष आर्य थे (देखो तवारीख़हिन्द) अतएव उचित है कि आप इस भूल की भी दवा करें। और इस प्रकार के कल्पित वा मन गढ़ित दावों से हाथ उठावें॥

(पादरी) जैसे कि इस पञ्जाब में भी खेती करने वाले आरायं कहाते हैं॥

(उत्तर) जनाब ! अरायं शब्द संस्कृत का नहीं किंतु पंजाबी है। जहां लौं विचार पूर्वक दृष्टि की जाती है, अरायं नाम जाति मुसलमान ही हैं। हिंदू कोई नहीं। जिस से तात्पर्य्य यह निकलता है कि यह नाम उन का अरबी के राई से बिगड़ा हुआ है। और किंचित् परिवर्त्तन उच्चारण "ऐन " से (जो कुछ कंठ द्वारा बोलने में कठिन है) उस का रायें या अरायें बोलना किंचित् भी

कठिन नहीं। (राई-शबां-निगहबान) अर्थात् चौपावों का चराने वाला (ग़यास)। और यही आप का प्रयोजन है। अतःयह शब्द भी अर्बी से राई से बना है संस्कृत का नहीं ॥

(पादरी) और प्रायःइस पेशा के लोग पशुओं विशेष कर बैलों पर अत्याचार किया करते हैं और अनबोल पशुओं को अपनी छड़ी से जिस के सिरे पर एक लोहे की नोकदार कील लगी हुई होती है, चुभो चुभो के हांका करते हैं। और इस सबब से वह नोकदार कील "आर" कहाती है ॥

(उत्तर) हज़रत! यह उन निर्दयमूर्खों का महा अत्याचार है और धर्मशास्त्रानुसार ऐसे जन दण्ड पाने योग्य हैं। जैसा कि महाराजा जम्बू-कपूर्थला-नाभा-झींद-योधपुर आदि के राज्यों में कोई काम में नहीं लाता। जो लाता है, दण्ड पाता है। देखो (रणवीर दण्ड आदि) और बटाला में भी कुछ मुसलमान व हिंदू और ईसाई साहेबों के उद्योग से पशुक्लेशनिवारिणी सभा (अंजुमनहम्दर्दी हैवानात) बनी हुई है। और राजनियम भी ऐसे जनों के लिये प्रचरित है (देखो एक्ट ५ सन् ६९ दफ़अ ३४)। "आर" शब्द भी संस्कृत का नहीं किन्तु

फ़ार्सी का है। जैसा कि अर्रा-अर-काबुल अफ़गानिस्तान पेशावर में लकड़ी चीड़ने व जूती सीने वाले लोहे के औज़ार को कहते हैं। सम्भव प्रतीत होता है कि फ़ारसी के इन शब्दों से ही यह शब्द इन निर्दय मूर्खों ने सुन सुना कर प्रचरित किया हो तो आश्चर्य्य नहीं। किन्तु ऐसा निश्चय होता है ॥

(पादरी) अतःजब इस जाति ने धीरे २ विद्या शिल्प व वाणिज्य में उन्नति की तो आर्य्य नाम जो केवल कृषक के लिये था छोड़ दिया और आर्य्य नाम के स्थान पर हीनदोष को जो धीरे २ हिन्दू होगया है अपनी जाति पर प्रचरित कर लिया है। और यह "हिन्दू" "आर्य्य" नाम की अपेक्षा अधिक इस जाति में प्रसिद्ध होगया ॥

उत्तर—आप का यह आक्षेप भी अत्यन्त कच्चा है। कभी किसी संस्कृत के वा प्राकृत के विद्वान् ने यह नाम (हिन्दू) अपनी जाति का नहीं लिखा परन्तु परवशता से व हाकिम का हुक्म मृत्युसमान जान कर मुसलमानों के समय से फ़ारसी का प्रचार होने से कार्य्यालयों में यह नाम लिखा जाने लगा। और अन्त में सम्पूर्ण देश मुसलमानों का हिन्दु (गुलाम) हो गया। आप का यह कथन कि जब इस जाति ने विद्या शिल्प वाणिज्य में उन्नति की

तो आर्य्य नाम छोड़ दिया। महाव्यर्थ व असत्य है। किन्तु धोखा देना है। जब तक शिल्प विद्या वाणिज्य में उन्नति रही तब तक आर्य्य नाम रहा और जब से आलस्य व इन्द्रियारामता ने घेर लिया। विद्या शिल्प वाणिज्य व देशाटन से हाथ उठाया। हिन्दू काफ़िर गुलाम नीमव-हशी होगये। जैसा कि " तवारीख़ हिन्द " भी बताती है कि आर्य्य लोग सदा से फ़िलास्फ़ी के प्रेमी रहे और गणित व विज्ञान के प्रथम गुरु यही हैं। इसी कारण वह आर्य्य अर्थात् श्रेष्ठ कहाते थे। ईरान का "दारा" बादशाह भी आर्य्य होने को स्वीकार करता था कि मैं आर्य्य हूं और आर्य्यों की सन्तान से हूं। क्योंकि उसके प्रपितामह (पर्दादा) का नाम ऐर्य्यारेमना था (देखो सायंस आफ़ दी लैंगवेज मैक्समूलरकृत-पृष्ठ २८०)

पादरी—जो कहते हैं कि यह नाम हमारी जाति का हमारे शत्रुओं अर्थात् मुहम्मदियों ने रक्खा है। यह महा अशुद्ध ही नहीं किन्तु धोखा है ॥

उत्तर—यह नाम हमारी किसी पुस्तक धार्मिक ऐतिहासिक या विद्यासम्बन्धी में कहीं नहीं है। और विरोधियें व विदेशियों की किताबों में सैकड़ों स्थानों पर

है। जिस से नमूने के लिये थोड़े स्थान हम ने लिख दिये। अतएव इस दशा में हम आप के इस इन्कार को इस के अतिरिक्त कि आप जानते हुये भी नहीं मानते और क्या कहें। केवल इसलिये जिस से हिन्दू भाइयों को सत्य वेदोक्त धर्म से पृथक् रख के धोखा दे चापलूसी करके ईसाई बना लिया करें। और उन को आर्य्य नाम से घृणा हो जाय। पादरी साहब ने यह जाल फैला कर उन को मार्ग भुलाना चाहा और कुछ नहीं ॥

अतएव प्रत्येक बुद्धिमान् जान सक्ता है कि यह नाम जब हमारे विरोधियों की पुस्तकों में (चाहो वे ईरानी हों वा अफ़ग़ानी अथवा यूनानी ऐराबी वा रूमी) उपस्थित है। तो उन का दावा महान् असत्य है। जिस पर हमें कहना पड़ा कि पादरी ने धोखाबाज़ी से काम लिया और सत्य से मुख मोड़ा। हम उन को "चैलैंज" करते हैं कि वह या उन का कोई और इलाहमी मित्र या शेख-भोजी (मिर्ज़ा गुलाम अहमद आदि) हिन्दू नाम किसी संस्कृत पुस्तक में दिखादे। और सिद्ध व प्रमाणित करा। नहीं तो यह छल कपट का तौक़ क़यामत लों यहूदा*इ-

* यह ईसा मसीह का एक चेला था। जिस ने तीस

टी व †यज़ीद की भांति दग़ाबाज़ के गले में रहैगा ॥

पादरी—क्योंकि यह नाम उन किताबों में पाया जाता है जो मुहम्मद साहब की उत्पत्ति से बहुत पहिले लिखी गई थीं। जैसे—अस्तर की किताब जो हज़रत मुहम्मद की उत्पत्ति से एक सहस्र वर्ष प्रथम लिखी गई थी। उनके पहले बाब (अध्याय) की पहली आयत में "हिन्दोस्तान" है। इसी भांति "फ़लावेसज़ूस्फ़र" यहूदी इतिहासलेखक भी अपनी पुस्तक में "हिंदोस्तान" का नाम लिखता है। जो मुहम्मद साहेब की उत्पत्ति से ६०० वर्ष प्रथम हुआ है (देखो उस किताब की ८ बाब ५) अतः प्रकट है कि मुहम्मद साहब के बहुत पहले यह देश "हिंदोस्तान" के नाम से प्रसिद्ध था और इसके निवासी हिन्दू कहलाते थे ॥

(उत्तर) यह प्रमाण भी आप के विश्वास की दृढ़ता नहीं करता क्योंकि हमारा दावा यह है कि हमारी

रुपये के लोभ से अपने गुरु ईसा को पकड़ा दिया था (अनुवादक)

†यह भाविया का बेटा था। जिस के द्वारा इमाम हसन व हुसेन धोकेते बध किये गये—(अनुवादक)

पुस्तकों में हिन्दू नाम नहीं है और न संस्कृत का शब्द है शेष रहा अस्तर में या यहूदियों के इतिहास में होना—

प्रथम पुस्तक सिकन्दर के समय के निकट बनी हुई है (देखो अस्तर की किताब इबरानी बाइबिल पृष्ठ ११८७ छपीहुई सन् १८७८ ई० लंडन) मसीह से ५२१ वर्ष पहले ॥

और दूसरी मसीह के पीछे की है। और जहां तक अन्वेषण हो चुका है यही समय है—जब से यह बुरा नाम हमारे और हमारे देश के लिये विदेशियों ने प्रयोग करना आरम्भ किया। आपके कथन से भी यह नाम विदेशियों की पुस्तक में लिखा पाया जाता है हमारे देश की पुस्तकों में नहीं। अतः यह भी हमारे दावे का प्रमाण है और आप के लिये हानिकारक। क्योंकि हमारे यहां प्रसिद्ध है कि यह नाम यवन लोगों ने रक्खा है ॥

साधारण आक्षेप—हिंदू नाम इंदु से बना है। और इंदु कहते हैं चन्द्रमा को अर्थात् चंद्रवंशी ॥

उत्तर—हम मानते हैं कि इन्दु चन्द्रमा को कहते हैं परन्तु संस्कृत में यह कैसे बनगया। और इसके अतिरिक्त क्या समस्त हिन्दू चन्द्रवंशी हैं या सूर्य्यवंशी आ-

...ग वैश्य शूद्र नहीं है और इन्दु केवल चन्द्रमा को कहते हैं—वंशी कहां से आगया और किस के अर्थ हुये और क्यां यह नाम इस धातु से भी किसी संस्कृत पुस्तक में आज तक अङ्कित नहीं है और क्या चन्द्रवंशी के अतिरिक्त और लोग अपने आप को हिन्दू नहीं कहलाते हैं या सूर्यवंशी से कोई और नाम निकला है और क्या आप को छोड़कर संसारभर में किसी को यह बात मालूम नहीं। जबकि इन ऊपर लिखी हुई बातों में से कोई भी ठीक नहीं होसक्ती है अतः यह बात भी महान्निर्मूल है। क्योंकि अबलों चन्द्रवंशी सूर्य्यवंशी इत्यादि शतशः गोत्रों की जातियां आर्य्यावर्त्त में उपस्थित हैं परन्तु हिन्दू का चिन्ह भी नहीं। अब कुछ थोड़ा सा इस बात का भी प्रमाण दिया जाता है कि हमारा नाम आर्य्य किन २ पुस्तकों में लिखा है। अधिक दृढ़ प्रमाण के विचार से मूलपाठ प्रमाण सहित लिखे जांयगे ॥

(१) ऋ० मं० १ सू० १०३ मन्त्र ३—

सजातूर्भर्माश्रद्दधानओजः पुरोविभिन्दन्नचर-
द्विदासीः । विद्वान्वज्रिन्दस्यवेहेतिमस्यार्य्यं-
सहोवर्धयाद्युम्नमिन्द्र ॥

(२) ऋग्वेद मंडल १ सूक्त ५१ मंत्र ८—

विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवोबर्हिष्मते
रन्धयाशासदव्रतान् । शाकीभवयजमानस्य
चोदिताविश्वेत्तातेसधमादेषुचाकन ॥

(३) मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक २२ तक—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥

(४) मनुस्मृति अ० १० श्लो० ४५—

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ॥
म्लेच्छवाचश्चार्य्यवाचः सर्वे ते दस्यवःस्मृताः ॥

(५) न्यायदर्शन अ० १ सू० १० वात्स्यायनभाष्य ऋ-
ष्यार्य्य० इत्यादि ॥

(६) काशिका अ० ४ पाद १ सूत्र ३०—

केवलमामकभागधेयपापापरसमानार्य्यकृतसुमङ्गल-
भेषजाच्च ॥

(७) काशिका अ० ४ पाद १ सू० ४९—

इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुला-
चार्य्याणामानुक् ॥

इस का कारिकाकार का भाष्य—

आर्य्यक्षत्रियाभ्यां वा। आर्य्याणी आर्य्या॥

(८) गीता अध्याय २ श्लो० १०—

अनार्य्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥

(९) भारत उद्योगपर्व

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असंभिन्नार्य्यमर्यादः पण्डितारव्यां लभेत सः॥

(१०) पञ्चतन्त्र, हितोपदेश प्रथम अध्याय आर्य्य
(११) " द्वितीय अध्याय आर्य
(१२) " तृतीय अध्याय आर्य
(१३) " चतुर्थ अध्याय आर्य
(१४) " पञ्चम अध्याय आर्य

(१५) वाल्मी० रामायण बा० कां० सर्ग १० श्लोक १६ व ३५॥

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्रइव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥

(१६) गत्वा तु स महात्मानं रामं रामपराक्रमम्।
अयाचद्भ्रातरं तत्र आर्य्यभावपुरस्कृतः॥

(१७) वाल्मीकीय रा० य० किष्किन्धाकाण्ड सर्ग १९श्लो०२८—

सुसवे पुनरुत्थाय आर्य्यपुत्रेति वादिनी।
रुरोद सा प्रतिद्वन्द्वसंवीतं मृत्युदामभिः॥

डिक्शनरी कलां (बड़ी) संस्कृत व अंगरेज़ी छपी हुई कलकत्ता पृष्ठ १२४ सन् १८९४ ई०—

(१८) आर्य्य (१९) आर्य्यक (२०) आर्यगर्ग्य (२१) आर्यपुत्र (२२) आर्यप्राय (२३) आर्यरूप (२४) आर्यलिंगन (२५) आर्यावर्त्त (२६) आर्यदेश (२७) आर्यगीत (२८) " अहम् आर्यः" हेमकोष प्रथम कांड (२९) " देवार्यज्ञातनन्दनः" मृच्छकटिकानाटक। कोषशब्दार्थभानु से—पृष्ठ५० सन् १८९५ में छपी हुई लाहौर॥

(३०) आर्य्य (३१) आर्यक (३२) आर्यपुत्र (३३) आर्यमिश्र (३४) आर्यावर्त्त॥

(३५) आर्य से ही ईरान व आर्मेनिया यह शब्द भी निकलते हैं और " एरी " कि आर्य से बना है आर्मिनियनों के यहां उस के अर्थ शूर वीर के हैं (देखो साइंस आफ दी लैंगवेज पृ० २८१)॥

(३६) जो देश आर्यों के रहने का स्थान है उस का

(उसूलन) संस्कृत ही में ढूंढना सत्य व ठीक है। और संस्कृत की लुग़ात (कोषों) व धातु को त्याग कर दूसरी (आफ़्टरबौर्न डैलेक्टस़) भाषाओं में जो मूल के सम्मुख शाखा के तुल्य हैं, आर्य्यशब्द (जिस का अन्वेषण करना है) के धातु व उसके निकलने का स्थान ढूंढना ठीक ऐसा ही है जैसे "§जमैका" के सुवर्ण की खानि पर बैठ कर मोर पंख से सोना निकालने की चिन्ता में शीश मारना। अस्तु–पादरी साहेब तो क्या सम्पूर्ण धरामण्डल पर कोई भी ऐसा देश नहीं जहां के विद्वान् संस्कृत के गौरव व प्राचीनता को उत्तम प्रकार स्वीकार न करते हों और प्रमाण की ओर ध्यान दिलाने पर उस के सबभाषाओं की माता होने में संदेह करें। अतः पादरी साहब को यदि न मालूम हो तो अब जानलें कि आर्य्य शब्द का धातु प्रत्यय और अर्थ निम्न लिखित हैं॥

आर्य्य–पुंल्लिङ्ग। अर्तुं योग्यः अर्य्यते वा ऋगतौ ऋहलोर्ण्यत् इति स्वामिनि-गुरौ-सुहृदि-श्रेष्ठकुलोत्पन्ने-पूज्ये-श्रेष्ठे-संगते-नाट्योक्तौ-मान्ये-उदारचरिते-शान्तचित्ते-कर्तव्यमाचरन्कामकर्तव्यमनाचरन्। तिष्ठति प्राकृताचारे सतु आर्य्य इतिस्मृतः॥

---

§ एक टापू का नाम है–

यदि पादरी साहेब संस्कृत जैसी देववाणी के समझ... की शक्ति न रखने के कारण या हठधर्मी की ऐनक नेत्रों पर लगाने से केवल आफ़्टर बौर्न (पीछे से उत्पन्न) भाषाओं ही में उत्तम प्रकार विज्ञता रखते हों तो भी आर्य्य शब्द के अर्थ लग भग उन भाषाओं में भी इस कारण कि वह सब संस्कृत की शाखा हैं बड़े व प्रतिष्ठित के पाये जाते हैं जैसे–

१ आर–फ़, आराय=संवारने वाला
२ अर्ज़–फ़०=प्रतिष्ठा–पद। ३ अर्ज–अ०=ऊंचा।
४ आर्य्यन=नाम एक कवि का।

यद्यपि आर्य शब्द का शब्दसम्बन्धी अन्वेषण महोत्तम भाषा को त्यागके दूसरी भाषा में करना महामूर्खता है तो भी दो लाभ अवश्य हैं। प्रथम यह कि प्रत्येक भाषा में आर्य शब्द का लग भग एक अर्थ होने से संस्कृत का भाषाओं की माता होना सिद्ध हो सकता है। द्वितीय हमारे एक अमरीकन् भाई के हृदय में आर्य शब्द के अर्थ व प्रतिष्ठा किसी भांति या किसी भाषाद्वारा बैठ जाना। और जो मैंने अपने इस दावे का समर्थन न करके (कि आर्य शब्द का अन्वेषण हर प्रकार संस्कृत में ही होना ... है) जो कुछ एक अर्थ के शब्द अन्य भाषाओं के लि...

भाग स्वीकार करते हैं परन्तु छोटे से बड़े वा बड़े से छोटे के लिये नहीं पसंद करते किन्तु अनुचित जानते हैं अतः उचित जाना गया कि तीनों का क्रमानुसार प्रमाण देवें॥

(१) तैत्तिरीयउपनिषद्वाक्य—

ओ३म् शन्नोमित्रः शंवरुणः शन्नोभवत्वर्य्यमा।
शन्नइन्द्रोबृहस्पतिः शन्नोविष्णुरुरुक्रमः । न-
मोब्रह्मणेनमस्ते वायो त्वमेवप्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।
त्वामेवप्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि ऋतं वदिष्या-
मि सत्यंवदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु
अवतु माम् अवतु वक्तारम् ॥

(२)नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयि-
त्नवे। नमस्ते अस्त्वश्मने येनादूडाशे अस्यसि॥
अथर्ववेद अ० ३ प्र० १ काण्ड १३ मं० १।

(३) यजुर्वेद अध्याय १६ मं० १—

नमस्ते रुद्र मन्यवऽउतोतऽइषवे नमः बाहु-
भ्यामुत ते नमः ॥

(४) यजुर्वेद—

नमोस्तुरुद्रेभ्योयेदिवियेषांवर्षमिषवः। तेभ्यो
दशप्राचीर्दशदक्षिणादशप्रतीचीर्दशोदीचीर्दशो-
र्ध्वाः तेभ्यो नमोअस्तुतेनोवन्तुतेनोमृडयन्तु ते
यंद्विष्मोयश्चनोद्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥

(५) गीता अ० ११ श्लोक ३९

नमो नमस्तेस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्चभूयोपि नमो
नमस्ते॥

(६) विष्णुसहस्र ना० श्लोक १३३—

नमः कमलनाभायनमस्ते जलशायिने। नमस्ते केश-
वानन्त वासुदेव नमोस्तुते॥

(७) वि० स० ना० श्लो० १३४—

वासनावासुदेवस्य वासितंभुवनत्रयम्। सर्वभूतनि-
वासीनां वासुदेवनमोस्तुते॥

(८) वि० स० ना० श्लोक १३५—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धि-
ताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः॥

(९) चण्डीपाठ अ० ५ श्लोक ७ से ३४ लों—

(१०) शि० पु० उत्तर खण्ड अ० १४ श्लो० २८—

तवावबोधोभगवन्भूतानामुदयाय च। प्रलयायभ-
वेद्रात्रिर्नमस्तेकालरूपिणे ॥

(११) शि० पु० उ० ख० अ० १४ श्लो० २८–
जगदीशस्त्वमेवासित्वत्तोनान्यीवईश्वरः। जग-
दादिरनादिस्त्वं नमस्तेस्वात्मवेदिने ॥

(१२) शि० पु० उ० ख० अ० १४ श्लो० २९–
नमः समुद्ररूपायसंघातकठिनाय च। स्थूलायगुरुवे
तुभ्यंसूक्ष्मायलघवेनमः॥

(१३) सारस्वत सूत्र २८५-
नमस्ते भगवन्भूयो देहिमे मोक्षमव्ययम्। स्वामीवां
सजहासोच्चैर्दृष्ट्वानौदानयाचनाम् ॥

(१४) गुरु गोविन्दसिंह का जाप जी पौड़ी २ से लेकर २८ तक व ३४ से ५७ तक व ६५ से ७१ तक व १४४ व १८४ से १८७ तक व १९८ जाप जी ॥

(१५) कथा स० ना० अ० १ श्लोक ५२--
नमः सत्यनारायणायास्यकर्त्रे नमः शुद्धशाखायवि-
श्वस्यभर्त्रे। करालायकालात्मकायास्य हर्त्रे नमस्ते
जगन्मङ्गलायात्तमूर्त्ते ॥

(१६ (यजुर्वेद–

नमोज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजा-
चापरजाय च नमोमध्यमाय चापगल्भाय च०॥

(१७) मनुस्मृति अ० २ श्लोक १२७–

(१८–२०) मनुस्मृति अ० २ श्लोक १३६–१३८

(२१–२३) „ ३ „ ३।५५–५६

यह प्रमाण तीनों अवस्थाओं के प्रयोग के लिये पूर्ण है जिन के द्वारा बड़े समान व छोटे के लिये नमस्ते का बोलना ठीक है ॥

२४–२५–२६–मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ५७–५९

अन्यस्मृतियों में भी शतशः स्थानों पर छोटे बड़ों व बड़े छोटों का सत्कार करें। यह वर्णन है ॥

२७–वा०रा० वनकाण्ड में विश्वामित्र वसिष्ठ की विदा का वर्णन–"नमस्तेस्तु गमिष्यामि"

२८–नमस्य नमस्करणीय (स्त्री) (स्या) पूजा ताजीम (प्रतिष्ठा) के लायक (योग्य) नमस्ते झुकना-सलाम-शब्दार्थभानु पृष्ठ १८५

२९–सर्वानुक्रमसूत्रे नं० ८ वाक्य २५ में नमस्ते को याज्ञवल्क्यजी स्वतन्त्रता पूर्वक व साधारण बोल चाल में व-र्तते हैं। हठधर्मी की औषध तो धन्वन्तरि व *लुकमान

*यह यूनान में प्रसिद्ध हकीम हुआ है-

ध्यास भी नहीं। पर जो सुजन ध्यान देंगे उन पर उत्तम प्रकार विदित हो जायगा कि नमस्ते शब्द से उत्तम विस्तृत और अच्छे अर्थ वाला क्या कोई और ऊपर लिखे नामों में से है? जहां लौं विचार किया गया कोई नहीं। अतः आवश्यक है कि हम इस प्रेम ऐक्य व शील सिखाने हारे नाम का बर्ताव करें। जिस से जाति व देश की अवनति का ध्यान हो कर उस के उभार व उन्नति की ओर कटिबद्ध हों। और हिंदोस्तान को ईश्वर की कृपा व अनुग्रह से आर्यावर्त्त बनावें॥

पादरी साहेब ने नोट (टिप्पणी) में लिखा है कि यदि हिंदू नाम फ़ार्सी में बुरे होने के कारण त्यागने योग्य है तौ राम फ़ारसी में गुलाम को, इसी भांति आर्य अर्बी में कपटी जाति को, और वैद्य संस्कृत में हकीम को व फ़ार्सी में विना फल के वृक्ष (बेद) को, और अनादि जिस का अर्थ संस्कृत में "जिस का आरम्भ न हो" अरबी में शत्रुता (अनाद) को कहते हैं। वह भी त्यागना चाहिये। इसका उत्तर हमारी ओर से यह है कि राम आर्य वैद्य अनादि शब्द संस्कृत पुस्तकों में सैंकड़ों जगह हैं पर हिन्दू शब्द का चिन्ह लौं नहीं अतएव पहले नाम मानने योग्य और दूसरे सुधारने या बदलने योग्य हैं। यदि

हिंदू भी किसी आर्षग्रन्थ में होता तौ हमे मानने से कब्य- नाही थी पर विना प्रमाण (जैसा अबलौं हो चुका है) हम किसी प्रकार नहीं मानते। अतः प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि विचार कर के सत्य को ग्रहण करे और आर्य कहाने व नमस्ते बुलाने से किसी भांति की कदापि नाहीं न करे॥

पादरी—जब दयानन्द ने सुना कि फ़ारसी भाषा में असीर्बाद का अर्थ क़ैद होने का है तो इस कारण उन्हों ने संस्कृत आशीर्वाद को त्याग दिया और उसके स्थान पर नमस्ते ठहराया। परन्तु जो आशीर्वाद है वह संस्कृत में उत्तम अर्थ रखता है और बहुत पुराना शब्द है और मनुस्मृति व अन्य विश्वासयोग्य पुस्तकों में बहुत जगह पाया ही नहीं जाता बरु उस के लिये बहुत ही दृढ़ आज्ञा दी गई है। (म० स्मृ० अ० २ श्लो० १२६)

उत्तर—पा० सा० आपने ग़लती की और स्वामी जी महाराज पर दोष दिया। स्वामीजी ने कहीं भी आशीर्वाद के त्यागने में मनाही नहीं की और न कभी इस का प्रचार किया। जो शब्द सनातन ऋषियों के ग्रन्थों में प्रचलित देखा इस लिये कि वह अति उत्तम था उसका प्रचार किया। और अनैक्यप्रचारक व सत्य व प्रेम के

मटाने हारे को दूर किया। आपने जो मनु का प्रमाण दिया उस श्लोक में आशीर्वाद शब्द नहीं है। हां अभिवाद व प्रत्यभिवाद है। जो एक सत्कार व दूसरा उसका उत्तर है। जिसको स्वा० जी ने भी उचित बताया है त्याग नहीं किया। देखो (वेदाङ्गप्रकाश भाग ४ संख्या २४।२५।२६) अतः यह आक्षेप भी केवल धोखा देना है। किसी प्रकार उचित नहीं॥

पादरी—हिन्दू राजाओं व विद्वानों ने स्वामी दयानन्द जी व उनके पंथवालों के अतिरिक्त कभी कोई आक्षेप हिन्दू नाम पर नहीं किया। और हिन्दुओं की पुस्तकों में इस नाम का प्रचार पाया जाता है। जैसे गुरुनानक जी के आदि ग्रन्थ में बराबर इस जाति का नाम हिन्दू लिखा है। और गुरु गोविन्दसिंह साहेब को भी जो फारसी में अच्छी विज्ञता रखते थे कभी यह न जान पड़ा कि जिस जाति में से हमलोग हैं उस का नाम मुहम्मदियों की ओर से बहुत बुरा रक्खा गया है अतः वह बदला जावे॥

उत्तर—हिन्दू राजा के राज्यों में साधारणतः वर्ण गोत्र अनुसार कार्य्यवाही होती है। और हिन्दू नाम मुसलमानों के आने से प्रथम कहीं न था अब भी जो किञ्चित् प्रचार है वह नहीं के तुल्य है और वह उर्दू व फारसी की

कृपा है। पर राजों की उपाधियों में अब भी आर्य्य दिवाकर इन्द्र महेन्द्र आदि संस्कृत के यथार्थ शब्द शोभा देते हैं हिन्दू कहीं नहीं। शेष रहा आर्य्यकुल सत्योपदेशक बा० नानक जी महाराज के आदि ग्रन्थ में हिन्दू शब्द का होना। यह हमें स्वीकार है। पर प्रभाव फारसी की शिक्षा का है और मुसलमान राज्य व देशभाषा में समझने के कारण लिखा, नहीं तो कभी न होता। और न मानपूर्वक उन्हों ने इस का वर्णन किया। किन्तु साधारण रीति से सत्यधर्म का उपदेश पञ्जाबी भाषा में दिया। जिस ने लक्षों हिन्दुओं को मुसलमान होने से बचाया और सत्यधर्म पर स्थिर किया। (अधिक देखो "सुर्मा चश्मआर्य्य" के उत्तर में) शेष रहा यह कि वीरता के रूप सत्यग्राही समरविजयी पुरुषसिंह महाबली गुरु गोविन्द सिंह जी महाराज को इस नाम का बुरा न जान पड़ना। यह आप की ग़लती व अनजानकारी है। यदि आप किंचित् भी उन के इतिहास व आज्ञाओं को जानते होते तो ऐसा कभी न कहते। उन्होंने फ़ारसी में उत्तम योग्यता रखने के कारण इस के बुरे अर्थ को भलीभांति समझ के त्याग दिया। और सिक्ख या सिंह प्रत्येक व्यक्ति का

न रख के अपने समस्त अनुयायियों के समूह का नाम लसा जाति रक्खा जिस के अर्थ फ़ारसी में वही हैं जो र्य्य शब्द के। या यों कहो कि यह उसका लफ़्ज़ी तर्जुमा (देखो ग़यासुल्लुग़ात व मुंतख़िब व कश्फ़) "ख़ालिस ख़ालसा। ख़ासा व नयामेख़्ः बचीज़े व पाक व बेआमेज़ ी वे आमेज़िश "। अर्थ " पवित्र व विना मिलावट च्छ पदार्थ (अ० वा०) उन के समस्त अनुयायी और पूर्ण पढ़ लिखे सिंहभाई हिन्दू नाम को बुरा जानते हैं। ख और सिंह आर्य्य भ्राताओं के समझाने के लिये र ख़ालसा मुहम्मदियों आदि के समझाने को है। अतः दावा आप का महानिर्मूल है॥

पादरी–विचार का स्थान है कि अकबर बादशाह जो अस्सुब प्रसिद्ध है और जिस के समय में बहुत से हिन्दू द्धमान् वैभवशाली मन्त्री फ़ार्सी में पूर्ण योग्यता रखने ले स्वतन्त्रतापूर्वक हो चुके हैं, उस समय उन्होंने भी त नाम पर कुछ ऐतराज़ न किया। अतः जिस दशा में न्दुओं के पुरुषा इसी का प्रचार करतें व अपने ऊपर स्वी ते रहे हैं और कुछ संदेह न किया। तो इससे ज्ञात होता कि वह इसे अच्छा जानते थे न कि बुरा॥

उत्तर–यह नियम (क़ायदा) है कि दो भाषाओं का मुक़ाबला व उनकी तोल नहीं होती। और जब तक इस के लिये स्वतंत्रता नहीं मिलती। जबलों दोनों भाषाओं का मनुष्य विज्ञ नहीं होता। तब लों किसी प्रकार का मुक़ाबला नहीं कर सक्ता है। और सब संसार जानता है कि अमीर व वज़ीर लोग आरामतलब या राज्यकार्य्य में लगे हुये होते हैं। इस कारण धर्म की पड़ताल व कुरीतियों के दूर करने का अवसर बहुत ही थोड़ा मिलता है। यह भी कोई प्रमाण नहीं है कि उन्हों ने कोई ऐतराज़ (आक्षेप) न किया। जिस प्रकार नहीं किया केवल कहा जा सक्ता है। इसी भांति हम कह सक्ते हैं कि किया हो तो क्या आश्चर्य्य। केवल कोई लेख नहीं है। सो उसका प्रभाव दोनों पार्टियों पर समान है। वह हिन्दुओं के बुज़ुर्ग भी न थे किन्तु केवल धनी पुरुष थे। सांसारिक प्रतिष्ठा के अतिरिक्त हिन्दू किसी मान व प्रतिष्ठा की दृष्टि से उन को प्रतिष्ठित नहीं मानते हैं।

पादरी–हिन्दू और आर्य्यों के निज नामों के अर्थ अपनी भाषा संस्कृत में देखने चाहिये न कि फ़ारसी आदि में॥

उत्तर—प्रत्येक मनुष्य जो कुछ भी बुद्धि रखता हो। और उस्की बुद्धि को किसी स्वार्थ ने अंधा न कर दिया हो। वह अवश्य न्याय से कहैगा कि हमने जितना आर्य व आर्य्यावर्त्त के सम्बन्ध में स्वीकार व हिन्दू और हिन्दोस्तान के से अस्वीकार किया है वह उसी तहक़ीक़ात (अन्वेषण) से है जो हमने संस्कृत के अनुसार पादरी साहब के कथनानुसार की है। इस कारण कि संस्कृत में इन दो शब्दों का कुछ अर्थ नहीं है। और न किसी कोष इतिहास पुराण या धर्मपुस्तक में यह शब्द हैं। अतः आप के कथनानुसार भी हम को और समस्त देशवासियों को इन बुरे नामों का त्याग आवश्यक है। हम किञ्चित् भी ऐसा नहीं करते कि संस्कृत शब्दों को फारसी के जीते हुये समझ छोड़ देवें किन्तु हम तो जो सच्ची व धर्मानुसार बात है उस्को स्वीकार करके असत्य व बुराई को जो कलंक की नाईं विदेशी हठधर्मियों ने लगाये हैं त्याग करते हैं॥

और यही आर्यसमाज का चौथा शुभ नियम है कि "सत्य के ग्रहण करने व असत्य के त्यागने में सर्वथा उद्यत रहना चाहिये" अतः हमने इस नियम पर दृष्टि

ओ३म् परमात्मने नमः

आर्यो जागृत हो

एक उत्तम व्याख्यान

श्रीयुत पं० कृष्णराम इच्छाराम खड़साड़ निवासी
वैदिक धर्मोपदेशक कृत॥

एक आर्यपथिक अनुवादित.

श्रीस्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वती. स्थापित वैदिक पुस्तक
प्रचारक फण्ड द्वारा प्रकाशित॥

पुस्तक संख्या २७

आर्य्यवत्सर १९७२९४८९९९ सन् ९८ ई०

पं० तुलसीराम स्वामी सम्पादक सामवेदभाष्य
के प्रबन्ध से स्वामियन्त्रालय मेरठ में छपा

प्रथमबार १०००] [मूल्य)॥

भारतोद्धारक मासिकपत्र मूल्य १)
डाकव्यय सहित ॥

उक्त नाम का मासिक पत्र वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड से हर मास में ३॥ फ़ार्म का मेरठ से छपता है जिस में उक्त फण्ड का हिसाब स्वर्गवासी धर्मवीर पण्डित तलेखराम जी के पुस्तकों का अनुवाद तथा पण्डित ज्वालाप्रसाद मुरादाबादीकृत दयानन्द तिमिरभास्करका उत्तर" भास्करप्रकाश" और अन्यान्य उत्तम विषय छपते हैं तथा बुद्धि चैतन्य करने के लिये समस्या तथा पहेली भी छपती रहती हैं जो समस्या तथा पहेली का उत्तर शीघ्र तथा सत्य देता है उसको उपहार में पुस्तकें भी मिलती हैं इतना बड़ा और मासिक पत्र स्वल्प मूल्य का आज तक नागरी में नहीं निकला इस पत्र का कुल मुनाफ़ा धर्म के कार्य्य में अर्थात् वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड में लगेगा मूल्य अग्रिम लिया जायगा जो महाशय ग्राहक होना चाहें पत्र शीघ्र लिखें और धर्म के कार्य्य को सहायतादेवें।

मैनेजर भारतोद्धारक सदर मेरठ

ओ३म्

आर्य्यो ! जागृत हो !!!

प्रिय आर्य्यभ्रातृगण ! विशेष विचार का स्थान है कि इस आर्य्यावर्त्त का गौरव कैसा था वह इतिहासों से स्पष्ट है यहां तक इस पवित्र भारतभूमि की प्रतिष्ठा थी कि यहां के रहने वालों का नाम आर्य्य चिरस्थायी हुआ, वह इस देश के महर्षिगणों तथा उन की सन्तानों के गुण कर्म स्वभावानुकूल सार्थक ही था, पर आज पूर्वोक्त लिखित अति गम्भीर तथा प्रशंसित शब्द के साथ "जागृत हो" ऐसा लिखने की आवश्यकता हुई, प्रिय मित्रो ! क्या आप अपनी पूर्वदशा तथा वर्त्तमान दशा का मिलान कर पूर्ववत् भ्रातृभाव होने का प्रयत्न न करेंगे ? पाठक गण ! ऊपर लिखे, अनिर्धारित वाक्य के अकस्मात् उच्चारण से मेरा चित्त शोकावेश की लहरों से संकुचित हो गद्गद होगया, और हृदय में यह विचार तथा प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या हम सोते हैं ? जो ऐसे उद्गारशब्द हमारे ऊपर संघटित हैं,, नहीं २ हम जागते हैं परन्तु जागते हुये भी अज्ञानान्धकार रूप घोर निद्रा में पड़े २ सड़ रहे हैं कुम्भकरणादि भी प्रयत्न करने से अपनी घोर निद्रा से जाग कर अपने कार्य में प्रवृत्त हुये ऐसा भी लेख द्वारा प्रमाण

मिलता है, परन्तु हमें अज्ञानरूप निद्रा से जागृत अवस्था में करने के लिये प्राचीन तथा नवीन संस्कृत प्राकृत तथा अन्य २ भाषाओं की पुस्तकें और अनेक समाचारपत्र तथा देशहितैषी महात्माजन अपने सुललित तरह २ के व्याख्यानों से अनेक प्रयत्न कर चारों ओर से गर्जना कर रहे हैं कि उठो, २ अपना कर्त्तव्य कर्म करने के लिये कटिबद्ध होओ। तथापि हम लोग अज्ञान निद्रा से जागृत हो के अपने कर्त्तव्य कर्म करने के लिये उठकर कटिबद्ध नहीं होते, तब मुझे विचार हुआ कि यह वाक्य "आर्य्यो जागृत हो" हमारे सदृश आलसी जनों के जागृत करने के लिये यथोचित है। कहा है कि "आलस्योहि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः" आलस ही मनुष्यों के शरीर में बड़ा शत्रु है। इसलिये हे मित्रो! आलस को छोड़ो और सोचो कि हमारी कैसी हीन दशा वर्त्तमान है यदि अब भी सोते के सोते ही रहोगे तो भविष्यत् में और अधिक दुःख भोगने की सम्भावना है यदि सुख की इच्छा है तो अज्ञानरूपी निद्रा से सचेत हो निम्न लिखित वाक्य को विचार कर शीघ्र ही कर्त्तव्य कर्म करने पर आरूढ़ होओ, यथा—

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदञ्च लक्ष्मीः
स्वयं याति निवासहेतोः॥

अर्थात्—उत्साहयुक्त जो काम जिस समय करने का है उसी समय करना अर्थात् विलम्ब न करना, क्रिया को विधिपूर्वक जानना और सम्पूर्ण व्यसनों से अलग रहना, शूरता को धारण करना, किये हुये को मानना, सुख दुःख मानापमान में दृढ़ रहना, ऐसे विचारशील पुरुष के समीप सुख की सामग्री अर्थात् लक्ष्मी निवास करने के लिये स्वयं जाती है।

श्रीमत्स्वामीशङ्कराचार्य जी ने भी अपने शिष्यों के वाद प्रतिवाद में कहा है कि "शेते सुखं कस्तुसमाधिनिष्ठः" शिष्य ने प्रथम पाद में प्रश्न किया कि हे महाराज सदा जागृत अवस्था में कौन सोता है? इस प्रश्न का उत्तर श्लोकार्द्ध के उत्तर पाद में दिया है कि "समाधिनिष्ठः" अर्थात् अच्छे प्रकार से जिस का अन्तःकरण अपने आधीन इन्द्रियादिकों का संयम सत्य में दृढ़ अर्थात् आत्मस्वरूप में तल्लीन रहे उस को जागृत में भी सुख से सोया हुआ जानना। पुनः शिष्यने प्रश्न किया कि "जागर्त्ति को वा" अर्थात् निद्रा में कौन जागता है उत्तर "सदसद्विवेकी" अर्थात् सत्यासत्य से विचार कर के विवेक से वर्त्ताव करने वाला। तात्पर्य्य यह है कि—लोक लज्जा, निन्दा और राज्यादि भय से भी सत्य को प्राणान्त तक पकड़े के अ-

सत्य का कदापि न परित्याग करे। कहा भी है "नहि सत्यात्परोधर्मो नानृतात्पातकं परम्" परन्तु वर्त्तमान समय में इस के विपरीत ही दृष्टिगोचर हो रहाहै—आप देखते ही होंगे कि सुधरे हुवे भी नहीं सुधरे, मूर्ख, विद्वान्, धनी निर्धन, राजा और प्रजा का बहुत भाग मिथ्या लोकलज्जा, भय और निन्द. से अनेक प्रतिष्ठित जनों का (कि जो सुमार्ग में प्रवृत्त होने के लिये इच्छा करें तो शीघ्र अविद्या के प्रवाह में बहते हुये को सेतु रूप हो रोक सकें ऐसे मनुष्य) थोड़ा भाग छोड़ के जो अपने कर्त्तव्य कर्म के करने में भय न रखते हों तो वे अपने देशी भाइयों को महान् कष्टसागर में डूबते क्या देखा करें? और लेश मात्र भी अपने कर्त्तव्य कर्म को भ्रातृभाव ला के क्या वे विचार न कर सकें? परन्तु अत्यन्त शोक का विषय है कि उन सज्जनों ने मिथ्या प्रतिष्ठा रूप मद का प्याला पीकर उन्मत्त हो एक दूसरे को शत्रुवत् दृष्टिपात कर रहे हैं, पाठकगण! जब तक यह नशा न उतरेगा तब तक नशे की लहरों में सुखमात्र से उन्नति का कथन करते रहेंगे। प्रिय मित्रो! विद्या, ज्ञान रूप औषधि से इस उन्माद को छोड़ भ्रातृभाव प्रकट कर इस भारत आरत के जीर्णोद्धार करने के लिये शीघ्र कटिबद्ध होओ। नीति में भी

कहा है कि—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

अहा!! क्या उत्तम महर्षिगणों के वचन हैं, धिक्कार है कि हम अपना प्राचीन नाम दृढ़ रखने के लिये बड़े उत्साही हैं कि हम आर्य हैं, परन्तु पूर्वजों के आचरणों पर कुछ भी विचार नहीं करते कि वे किन २ कर्मों से यह पवित्र शब्द हमारे लिये चिरस्थायी किया है। ध्यान देना चाहिये कि उन के कैसे शुद्ध संकल्प तथा विचार थे, प्रियपाठक गण! इस उक्त लिखित श्लोक पर विस्तार पूर्वक व्याख्या की जाय तो एक बड़ा लेख होजाय, परन्तु तात्पर्य इतनाही है कि यह देश, गृह, सम्पत्ति इत्यादि पदार्थों में ऐसी बुद्धि कि यह मेरा यह पराया ऐसा आर्य होके अविवेक से माने तो उसको लघुबुद्धि जानना। महाशय! जो दीर्घविचारशील महात्मा होते हैं, वे सम्पूर्ण संसार को अपना कुटुम्ब समझ कर सुख दुःख में स्वयं सुखी दुःखी हुआ करते हैं। प्रियमित्रो! समस्त भरामण्डल अथवा पवित्र आर्यावर्त्त की भूमिमात्र की बात तो दूर रही केवल अपने आर्य देशी भ्राताओं में ही ऐक्यभाव

रक्खें ऐसे शुद्ध सद्विचार के महात्मा बहुत न्यून मिलेंगे, "सुखमस्तीतिवक्तव्यं दशहस्ताहरीतकी" अर्थात् सुख है तो दश हाथ की हर्रे बोलने में क्या हानि ? या "परोपदेशे पाण्डित्यम्" इस कथन के अनुसार बोलने वाले बहुत मिलेंगे, परन्तु करने वाले मिलने असम्भव हैं, परन्तु जब तक इस भारत की पवित्र संतान आर्यों में एकता हो भ्रातृभाव (जो मुख्य उन्नति का बीज तथा कारण है) आर्य हृदय रूप भूमि में समारोपण करने में असमर्थ हैं तब तक उन्नति करना धूल पर लेपन के तुल्य है। इस लिये मिथ्या धर्म्म कर्म्म की वितंडा को छोड़ एक चित्त भ्रातृभाव रखने वाले हो और एक अनादि वेदमार्ग का ही आश्रय लो, जिससे अपने शुभ कार्य में विजयी हो, हमारे देशियों में विद्यादि सर्व विभूति होते हुवे भी शरीर विभूति, धर्म्म, कला कौशल, पदार्थविद्या, वीरता, एकता, और धीरता, इत्यादि से विमुख हो, लघुगुरु कार्य में पराधीन, काष्ठ पाषाण सदृश जड़ बन के टकटकी लगाये देखा करते हैं। यह सब भ्रातृभाव और उदारचित्त न होने का फल है इस लिये हे बन्धुओ! आप किसी एक मत में रहो, चाहे भिन्न २ मत में रहो, परन्तु आर्य मनुष्यमात्र के कर्तव्य के पोलिटिकिल (राजकीय) और सामान्य धर्म

में एक रहो। देखो यूरूपियन लोगों में ईश्वरीय धर्म मानने की तीन मुख्य शाखायें हैं और अन्तरङ्ग अनेक शाखायें हैं, अनेक निराकार, साकार और निरीश्वर मत को मानने वाले हैं तथापि राजकीय और मनुष्य के सामान्य धर्म तथा देशोन्नति के विषय में कैसे एकचित्त हैं, यही सामान्य भ्रातृभाव का धर्म है इसी रीत्यनुसार भ्रातृभाव धर्म मुसलमानों में भी अधिक देखने में आता है, इन में धर्म की दो मुख्य शाखायें हैं और उन में अन्तरङ्ग बहिरङ्ग कुल ७२ हैं जिस में सिया और सुन्नी प्रमुख हैं अनेक ताजिया दरगाहों को मानने वाले हैं तथापि जहां मनुष्य के सामान्यधर्म की बात आई कि झट "दीन, दीन, शब्द के साथ ही प्राण देने को तयार होजावेंगे वही मुसलमान कहावेंगे इसी रीत्यनुसार सद्रि (ईरानी पारसियों में अस्मदीय सदृश ईश्वरीय विशेष धर्म को केवल पकड़ उस धर्म को सिद्ध करने वाले सामान्य धर्म पर लेशमात्र भी अविश्वास नहीं करते, उस के फल प्रत्यक्ष जैसे "तारे में चन्द्र के सदृश" आर्यों में प्रकाश हो रहे हैं, वह यहांतक कि जो कोई मुसलमान अथवा पारसी किसी स्थान पर बहुत द्विजाति के लोग उन से विरोध करते हों तो बहुत द्विजातियों में थोड़े यवन अथवा

भाइयों की रक्षा करने को
पारसी एक दम अपने जाति भाइयों की रक्षा करने को
कूद पड़ेंगे, यह गुण अवश्यमेव श्रेष्ठ है तौ भी वर्त्तमान के
हमारे आर्यों में से लोप होकर अन्य धर्मावलम्बियों में
प्रवेश कर रहा है यह प्रत्यक्ष है कि एक यवन और द्वि-
जाति के किसी एक पुरुष से द्वन्द्वयुद्ध॰ वाक् अथवा श-
रीर से होता हो तो समक्ष अनेक आर्य निर्वीर्य बनके
(हिजड़े) देखा करेंगे, इतना ही नहीं किन्तु " यः पला-
यते स जीवति " अर्थात् जो भागता है वह जीता है यह
आधुनिकदायभाग में रहा हुवा जाप जपने लग जायंगे
इसी लिये मुहम्मदियों ने हिन्दू (डरपोंक, काफर,
डाकू और कृष्णमुखी) की पदवी (टाइटिल अलक़ाब)
दिया क्योंकि हम अपने पूर्वजों के " वसुधैव कुटुम्बकम् "
जाप को भूल गये हैं और सत्य रीति से देखें तो हिन्दू के
अलक़ाब को आज हम योग्य ही योग्य हैं क्योंकि न तो
हम वैदिक धर्माचरण ही करते हैं और न हमारे में वीर
गुण और न धर्माभिमान का जोश रहा ॥-

अरे ! कुछ भी तो स्मरण करो कि कहां गये वे तुम्हारे
ब्राह्मण जो चारों वेदों को पढ़ कर तदनुसार आचरण
करने में समर्थ होते थे। आज पाठमात्र तो दूर रहा चारों
वेदों के नाम तक नहीं जानते कदाचित् किसी को नाम

भी स्मरण हो तो वेद शास्त्रों के दर्शनों से तो अवश्य ही
वंचित होरहे हैं, कहां गये वे वीर क्षत्री जो निज बाहु
बल से समस्त भूमण्डल की रक्षा करने में समर्थ थे आज
उन्ही की सन्तान यथोचित अपनी ही रक्षा से असमर्थ
हैं कहां गये पवित्र भूमि के वैश्य जो द्रव्योपार्जन में
अत्यन्त कुशल थे कि जिस द्रव्य से धर्म के सम्पूर्ण कार्य
सिद्ध होते थे वर्त्तमान में किसी के पास कुछ धन है भी
तो वेश्याओं के नृत्य तथा भोग विलासादि अधर्म में
लग रहा है। कहां गई तुम्हारी देववाणी (संस्कृत) जो
इस भूमि में प्रचलित थी और उस के यथार्थ जाननेवाले
महात्मा कहाते थे आज नाम ही शेष रह गया, अब सभी
कार्य पूर्व की अपेक्षा नक़लमात्र रहगये हैं. केवल दुःख
प्रत्यक्ष रूप दृष्टिगत होरहा है, जो भारतजननी के पुत्रों
में से एक, सहस्रों के ऊपर में से विजयी होता था, वे
अब क्लीब (हिजड़े) होके टांग पसारे पड़ एक के न्या-
यविरुद्ध अत्याचार के सामने योग्य न्यायधर्मशील गवर्मेंट
द्वारा. इन्साफ़ कराने को असमर्थ हैं, इस का एक नवीन
(ताज़ा) दृष्टान्त अभी मेरे जानने में आया है, वह
संक्षेप से कहना चाहिये जो राजपूताना अजमेर के
स्टेशन मास्टर युरूपियन ने एक देशी के ऊपर गुज़ारा

उस की कैफियत ऐसी है कि बाबू पुरुषोत्तमराय ओवरसियर जिस गाड़ी में बैठा था उस में नियम से अधिक मनुष्य बकरों के माफिक भर देने से उसने स्टेशनमास्टर से इतना ही कहा कि (बाट आफ़ दि रेलवेरूल्स) रेलवे के नियम क्या हैं ? बस इतने ही कहिने के साथ स्टेशन मास्टर का सिज़ाज जामे से बाहर होगया " अय काला काफ़र ! ऐसा पूछने वाला तू कौन है ? " इतना कहकर गरीब बाबू की गरदन पकड़कर रेल में से बाहर खींच लिया और खूब मुष्टिप्रहार किया, उस समय सहस्रों आर्य पुरुष खड़े देखते थे परन्तु इतना साहस किसी को नहीं हुआ कि दोनों को उस झगड़े से मुक्त करने के लिये हिम्मत करे " तेजोयस्यविराजतेहिबलवान् " अर्थात् जिस का तेज तपता है वही बलवान् है इस में आश्चर्य नहीं है परन्तु तात्पर्य इतना ही है कि आर्यभ्रातृभाव क्या है ? यह लेशमात्र भी नहीं जानते हैं, हे बहुतकाल से बिगड़े निर्मुख हुवे आर्य्यो ! ईर्ष्या द्वेषादि सर्व सत्यानाश करने वाले अवगुणों ने हम में (अचल) अडिग बास किया है, वह दूर कर के परस्पर प्रेम और स्नेह दृष्टि से देखो कि सब आर्य मिलके मैं एक अवयवी हूं ऐसा समझ के तुम्हारे अन्तःकरण को हिन्दू, मलिन

कृष्णवर्ण (काला रंग) छोड़ के आर्य्य उज्वल देदीप्यमान रंग डालो कि जिस से आर्य नाम के लायक़ गिने जावो जैसे कोई मलीन वस्त्र को रक्तादि सुन्दर रंग में रंगता हो तो प्रथम उस को स्वच्छ करने की आवश्यकता है उस को रजकादि निमित्त साधारण कारण के साधन की प्रथम आवश्यकता है, क्योंकि मल सहित वस्त्र पर रंग नहीं चढ़ता, उसी रीति से सत्य पुरुष रूप रजक को सुकार्य जल से पूर्वोक्त वस्त्र को स्वच्छ करके प्राप्त धर्म के कर्तव्य रूप रंग से रंगीन कर भूषित बनो, नहीं तो हिन्दु के हिन्दू ! अरे ! इतने प्रबन्ध हो रहे हैं तथापि हिन्दू पद को छोड़ते नहीं, कौन दृढ़ दोष आगिरा कि ज़रा भी असर होता नहीं ? जो कुछ होता है वह ऊपर के भाव से, अन्तर के भाव से नहीं, और जब तक अन्तर भाव में आर्यता की परिपक्व छाप पड़ेगी नहीं तब तक मृगतृष्णा के जलतुल्य वृथा दर्शनमात्र उन्नति है, अहो देखो ! यूरूपियन, अमेरिकन, और जापानियों ने देखते २ में आर्य बन के किस उन्नति के शिखर पर पहुंचे हैं, और आगे कतनी उन्नति के शिखर पर पहुंचेंगे यह कह नहीं सकते धर्म कर्मादि उन्नति में लज्जा, भय, रखना यह कायर तथा हिन्दू का ही काम है, हम तो आर्य हैं हमारी

बीज अनादि और जड़ गहरी है, गहरी जड़ खोदने के लिये बहुत यत्न करना पड़ता है और जो निकालने के लिये प्रयत्न करते हैं परन्तु वह कालान्तर में भी ऐसा होना अशक्य है ऐसा इतिहासों का सिद्धान्त है, जैसे ऊपर के जड़ को सुखा के खींचने में देर नहीं लगती वैसा हमारे सम्बन्ध में नहीं है, परन्तु हमारा मूल तो अक्षीण वेद है ऐसा विचार कर प्रयत्न करो लज्जा को छोड़ो, मराठी में कहावत है कि " कुचेष्टा पासून प्रतिष्ठा बाढ़त नाहीं" अर्थात् प्रथम निन्दा भये बिना प्रतिष्ठा होती नहीं है आप इतिहास से जानते होंगे कि कौन २ मनुष्य प्रथम निन्दा, दुःख, अत्याचार भोगे बिना इस देश तथा परदेश के धर्म पदार्थादि की नवीन शोध में कृतकार्य्य हुवे हैं ? वह यहां तक कि कितनेक को विषपान, अग्नि और पर्वत के ऊपर से अधःपतन तथा शतघ्नी (तोप) आदिसे प्राण देके भी सत्य निश्चय छोड़ा नहीं उस के वर्त्तमान में धर्मादिकों के हम और कर्मादिक के युरूपियन फल खाते हैं यह स्थालीपुलाक न्याय से आप जान सकोगे, यथा पूर्वकाल में भगवान् गिने जाते राम, कृष्णादि महात्माओं को अपने कार्य सिद्ध करने में तथा वेदमार्ग तथा तथा जातिधर्म का रक्षण करने में निन्दा, दुःख और क्षुधा

दूषणादि बड़े २ कष्ट सहने पड़े थे, तो अन्त में विजय प्राप्त कर के आर्य प्रजा ने उन को ईश्वर माना, इसी रीत्यनुसार श्रीमत् शङ्कराचार्यजी पर भी बहुत काल के प्रचरित जैनमत तोड़ने के लिये अनेक दुःख पड़े थे किन्तु अन्त को विष से प्राण भी गये, जिस से दिग्विजयी ईश्वर माने गये, और उन्ही के प्रताप से हम ईश्वरवादी हो आस्तिक बने, इस विषय में ताज़ा दृष्टान्त लो—जगत्प्रसिद्ध वैदिक धर्मोद्धारक श्रीमत्परम हंस परिव्राजकाचार्य स्वदेश हितैषी श्रीमत्स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी को वेद मार्ग प्रचार करने के लिये अनेकानेक कष्ट भोगने पड़े थे, और आप लोगों को स्मरण होगा कि इस कार्य्य को शेष निर्धारित छोड़ गरलपान (लोकोक्ति) से काल वश हुए, जिन के अश्रान्त परिश्रम से सहस्रावधि आर्य ईसाइयों के जाल में से फंसते २ बचे, और कितनेक यूरुपनिवासी वेदमार्ग पर चलने वाले हुये, धन्य ! धन्य !!

इसी तरह ग्रीस (यूनान) देशवासी महात्मा तत्त्ववित् सोक्रेटीस (सुक्रात हमीम) को उस समय वहां प्रचलित पाखण्ड के खण्डन करने में ही विषपान करना पड़ा था, और अन्त को उस की संसार में अमर कीर्ति हो रही, इसी तरह से नीतिनिपुण महात्मा यूसुफ़ ने भी अनेक

बीज अनादि और-

प्रकार के क्लेश सहकर भी सत्य के लिये पर्वत से गिर कर अपने शरीर का अन्त किया, और गेलीलियो की भी यही दशा हुई थी, कोलंबस तथा नेपोलियन, बोनोपार्ट प्रभृति महाशयों को अपने निर्धारित कार्य साधने के लिये बड़े २ कष्ट उठाने पड़े थे कहां तक लिखें कि यह ऐसे साहसी लोग यदि लज्जा, दुःख और मरणादि भय को विचारते तो इस भूमण्डल पर उन की अखण्ड कीर्त्ति के प्रताप की पताका झलक न रहती, कि जिस से हम लोग भी उन के नाम का गान करते।

प्रिय पाठक गण! भारत वासियो! शोध हमारा सोने का समय नहीं है, जो हम ईश्वरदत्त नियमित यावत् शक्ति को स्वपुरुषार्थ से स्वतन्त्र रीति से यथोचित प्रयत्न कर फलीभूत न करेंगे, तो कैसी दुर्दशा होना सम्भव है! दुर्दशा रूप व्याधि (दृष्टान्त–भिडन के दांतों) मध्य अवश्य सेव ग्रसित होयंगे। उस का हमारे भूत वर्त्तमान प्रचलित व्यवहार से अनुमान होता है, वर्त्तमान ब्रिटिश साम्राज्य में सुधरने का समय जैसा ईश्वर कृपा से हम को प्राप्त हुआ है वैसा अतः पर सर्व विषयों में अनुकूल मिलने का नहीं, क्योंकि साधारण नियम ऐसा है कि सृष्टि क्रम में स्थूल सूक्ष्म, सजीव और निर्जीव एक२ को मिलता गुण कर्म

स्वभाव सर्वांश मिलने का नियम देखने में आता नहीं है तो "येन केन प्रकारेण स्वार्थं साधयेत् सुधीः" अर्थात् बुद्धिमान् तो वह है कि जो अनुकूल समय अपने शुभ स्वार्थ को साधे, मित्रो! विचार करो कि हमने दैशिक सामाजिक, राजकीय तथा गृहस्थ सम्बन्धी उन्नति के गंभीर विचार क्या २ किये? तो उस का उत्तर वही आवेगा कि "न नीरं नोतीरं" (न पानी न किनारा) अर्थात् आर्यों के इतिहास से पूर्व स्थिति देखते बहुत काल भया कि अधोगति में लटक रहे हैं, हां इतना तो भया कि कर्त्तव्य कर्म्म करते तो नहीं परन्तु बोलना तो सीखे हैं, इस पर से अनुभव होता है कि यदि हम कटिबद्ध हों तो बहुत काल का आत्मप्रोम्निरूप अग्नि अविद्यारूप यन्त्र से परिवेष्टित हुआ है; उस की सद्विद्वान् विद्या रूपी साधन द्वारा देखी तो वह प्रकट होने का समय निकट आवे, ये निस्सन्देह है, जिस के प्रताप से मतमतान्तर रूपी इन्धन (लकड़ियां) भस्म हो पृथ्वी से परमेश्वर पर्यन्त अव्यवस्था रूपी अन्धकार कहां का कहां पलायन हो जायगा, जो सद्विद्यादि का प्रकाश प्रस्फुरित होने से मिथ्यामत प्रसारक प्रकट घोर रूपी उलूक अन्ध होंगे, जिस से मिथ्या धर्म के जाल में बद्ध हो के लुटते भोले विश्वासी मुक्त हो

कर मद्विचार करते होंगे। यहां कोई प्रश्न करे कि बहुत काल का हृदय गुफा में ग्रन्थित हुआ अविद्यान्धतम दूर होने को जैसा बहुत काल से बिगाड़ते आये हैं वैसा ही क्रमानुसार सुधारने को सहज में बहुत काल की आवश्यकता है ॥

हां, वर्त्तमान के कतिपय सुधारक ताम्रमुखियों (यूरुपियनों) की अनुचित मद्यपानादि की नक़ल रूपी मूसल अनेक मन्त्र रूपी सम्मार्जनी (झाड़ू) और बालविवाह रूपी सूर्प (सूप) से अनेक काल में भी संवार के साफ़ करके फटक नहीं सकेंगे, क्योंकि यह विपरीत मार्ग है, अन्धकार केवल विवेक की रीति से एक वेदप्रणीत आप्त धर्मरूपी दीपक की ज्योति प्रकट होने से क्षणमात्र में विलीन होसक्ता है, इस लिये हे आर्य! मतमतान्तर के बोधरूपी नशे में यथातथ्य मार्ग से भ्रान्ति ग्रस्त हो के हम अन्धे हो गये हैं, उस में वेद ज्ञानरूपी अञ्जन लगाओ कि जिस से रोग दूर हो जाय, पश्चात् दूरदर्शी होने के लिये विज्ञान दूरविक्षण (दूरबीन) लगा के अज्ञान से अति अन्तर पड़े हुये, परमेश्वर से लगा के पृथ्वी पर्यन्त उन्नति के गूढ़ मार्ग के बिना सन्मार्ग का पड़दा दूर होने वाला नहीं, और वेदविहित ईश्वर सृष्टि आदि का गम्यमार्ग देखने

के नहीं, यजुर्वेद में कहा है कि:—

" नतं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्याचासुतृपउक्थशासश्चरन्ति " ॥

अर्थ—ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो! इस सम्पूर्ण-जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, और लय करने वाला जो मैं और मेरे से उत्पन्न हुवे वेदोक्त जो ईश्वरीय व्यावहारिक धर्म बस को तुम जानते नहीं हो, क्योंकि निम्न लिखित कारणों से उस का और तुम्हारा अत्यन्त पास का सम्बन्ध होते भी अनन्त अन्तर पड़गया है एक तुम अज्ञानरूपी कुहरा में भूले हुवे को कोई सत्यमार्ग दिखावे तो देखते नहीं, कदापि देख लिया तो दुराग्रह से उस को मान करके भी मानते नहीं हो। क्योंकि तुम्हारे आस पास अज्ञानान्धकार वेष्टित हो रहा है। दूसरा दोष यह है कि जो मिथ्या वितण्डावाद पर बहुत तर्क से बकवादी हो और असुतृप् अर्थात् केवल स्वार्थवाद पर बहुत तर्क से मत्वादी हो अर्थात् दूसरे के महान् अर्थ को बिगाड़ते हो और अपनी लघु अर्थ सिद्धि में भी चूकते नहीं और वेदसूक्तों की कुतर्कों से शिक्षा करने वाले हो अर्थात् वेदविरोधी नास्तिक हो। परमेश्वर मनुष्यों

को आज्ञा देता है कि जो पूर्वोक्त रीति से विचार करते हैं वे सन्मार्ग को कदापि न देखेंगे, पाठकगण ! मन्त्रों का अर्थापत्ति न्याय से फलितार्थ क्या निकलता है ? और उपरोक्त अज्ञान का पर्दा कैसे मिटे ? इस का उत्तर यह आता है कि परमेश्वर के गुण कर्म और स्वभाव के अनुसार सृष्टिक्रम अविरुद्ध और न्याय के प्रमाणानुकूल ज्ञान होने से असत्य छोड़ सत्य ग्रहण विषयक जल पान करने से सुख का स्वार्थ तज, दुःख सह के और परमार्थ दृष्टि रखने से तथा वेदवचनों पर श्रद्धावान् हो के मण्डन करने से ईश्वर आदि शुद्धमार्ग का विघ्न मिट जाता है ॥

हे बुद्धिमानो ! विचार करो कि मनुष्य में कौन सी शक्ति नहीं है ? अपनी साधारण जनश्रुति (कहावत) स्मरण करो "मनुष्याः किन्न कुर्वन्ति कृष्णमस्तिष्कधारकाः" अर्थात् काले माथे का मनुष्य क्या २ नहीं कर सकता ? इसलिये परमेश्वर ने विवेकबुद्धि अधिक दी है इस का योग्य उपयोग जानते नहीं हो यही न्यूनता है। आप लोग मेरे बुद्धिचैतन्य विषय को अवश्य पढ़ के समझो न समझ में आवे तो विद्वानों का आश्रय लो और ऐसा न हो तो इतना सारभूत अधि कलो (स्वात्मोपार्जन से इन्द्रियों को कुविषय में से हटा के एक चित्त से सुविषय

में बुद्धि को लग्न करो) पीछे देखो क्या २ चमत्कार बनते हैं, और अपने पूर्वजों के सदृश अनिर्धारित अतर्क्य कार्य कर सकते हो कि नहीं ? एक बड़ी लज्जा की बात है कि अपने वर्त्तमान समय की अनुकूलता के योग्य उपयोग नहीं है, पुरुषार्थ से जड़ तत्त्वों को तथा पशु पक्षिआदिकों का कैसा उपयोग होता है और वे कैसे प्रभाव दिखाते हैं इस का हम थोड़ा सा विचार करके देखें। देखो, कीर मैना आदि खग शिक्षा से मनुष्य की वाणी बोल सकते हैं तथा हथियारों का उपयोग कर सकते हैं, कबूतर निश्चय किये स्थान पर पत्र ले जाके डाक के सिपाही का कार्य करते हैं, घोड़े सरकस में कैसी अद्भुत रीति से बाजे पर नाचते हैं, कुत्ता शिक्षा से कृतज्ञता से रखवालों का कार्य कर सकते हैं, तथा महाभयङ्कर सिंह, व्याघ्र, रीछ के मुख में खेलाड़ी कैसी क्रीडा करते हैं इन्हों ने अपना मांस कवलित करने को स्वाभाविक स्वभाव छोड़ दिया है और इसी तरह से बन्दर (अर्ध मनुष्य) शिक्षा से सम्पूर्ण हाव भाव सीख के बुद्धि में सुभट का काम कर सकते हैं ॥

सज्जनो ! जब पशु पक्षी और जड तत्त्वों में पूर्वोक्त गुण ज्यों २ काल कर्म के साथ शोधक शोधते जाते हैं त्यों २ अ-

पूर्व शोधन देखने में आता है और उत्तर काल में "नभूतो नभविष्यति" कैसा शोध होगा यह हम कह नहीं सकते, परन्तु भूत वर्त्तमान के प्रवाह को देखते अन्य प्रकार का सृष्टिव्यवहार बदलेगा, इस में कुछ संशय नहीं है। इस लिये हे प्रिय मित्रो! विचार करो कि अपने पूर्वज पूर्व में जो श्रेष्ठ स्थिति में थे तो वे किस कारण से थे हम लोग उस स्थिति को कैसे पहुंचें इस का देश काल शास्त्राधार से विचार करना चाहिये। बहुत ही लज्जा की बात है कि रथवाही बैल तथा घोड़े इत्यादि पशुजाति होते भी एक दूसरे पर शर्त में जय प्राप्त करने को आगे दौड़ जाने और श्रेष्ठ कहलाने के लिये अभिप्राय रखते हैं तो सर्वगुणयुक्त मनुष्य होते भी उन्नति करने के लिये यूरूपियन के सहगामी तो क्या किन्तु अनुगामी होने को अशक्त हैं। अरे! रे! रे! क्या आर्यों की अपदशा, कैसी भी भीरुता और क्या हतवीर्य से स्थूल तथा अविद्या से सूक्ष्म शरीर की दुरवस्था, अरे जिस के सहस्रमुख हों तथा पुराणप्रणेता व्यास जी सदृश वर्णन करने में अशक्त होवें, ऐसी अधोगति के समुद्र में आशिख गर्क भये हैं कि बड़े २ महात्मा उपदेष्टा भी अमर्याद अकथनीय दुर्गुण आदि अवगुणों को देख के थकित हो अधिक अपौरुषेय दैवी

शक्ति प्राप्ति करने को शरीर छोड़ परमधाम में पधारे हैं तो हमारे दुराग्रहियों को वहिष्करण करने को दूसरों की क्या गति? अब ऐसे दुर्गुण ग्राही हम हुये हैं इस का कारण यह है कि मूल स्थूल शरीर का जीव भूत मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कारयुक्त सूक्ष्म शरीर विनय, विद्या, नीति, ज्ञान, साहित्य, सङ्गीत और सत्समागमादि नाना प्रकार के रसिक पौष्टिक व्यञ्जन (भोजन) नहीं मिलने से निर्बल होगया है जिस से सामाजिक, राजनैतिक और आत्मिक उन्नति दुर्गसमारोहण हो पारङ्गत होने के लिये आत्मा अशक्त हुआ है उस से कुविषय प्रतिविम्बित बुद्धि इन्द्रियों के कुविषय पात्राधार हो अशक्त द्विगुण सबलता से आत्मा को आकर्षण कर अधोगति में डालता है, क्योंकि बुद्धि जड वस्तु नहीं है एक देश में समान धर्म होने से ज्ञानरूप चैतन्य कुविषय की ओर लुभा के नरकगामी करता है तब हे बुद्धिमान् वाचक वृन्द! इस बात का यह तात्पर्य निकलता है कि अपने स्थूल शरीर का प्राणभूत बुद्धि अङ्ग विद्या आहार विना क्षुधित हो [illegible] वन के निर्जीव हुआ है उस को प्रागुक्त [illegible] पुष्ट करोकि जागृत होके इन्द्रियों को [illegible] उन्नति के बढ़ पर चढ़े। आज हम को [illegible] का

उपयोग करना न आने से चढ़ने तो जाते हैं परन्तु मृषा रूढी अभिमान तथा भीरुता आदि का महान प्रतिगुरुत्व आकर्षण का बोझ पड़ने से नीचे गिर २ के कुचिलाते हैं। कारण कि यह स्वाभाविक नियम है कि ऊपर जाने से नीचे उतरना सहज बन सक्ता है इसलिये निश्चय स्मरण रक्खो कि प्रतिदिन प्रयत्न होगा तो अधोगति से बच के कालान्तर में भी उन्नति के गढ़ पर चढ़ेंगे, महाजनो! प्रथम छोटे बड़े कार्य में कठिनता है तो भी परिणाम में जितने दुःख तथा अपयश आदि कार्य सिद्धि में किया हो उतना सुख तथा सुकीर्ति आदि लाभ प्राप्त होता है, कृष्णमहाराज ने गीता में कहा है "यत्तदग्रे विषमिवपरिणामेऽमृतोपमम्,, अध्याय १८ श्लोक ३७ अर्थात् जो कार्य सिद्ध करनेको आरम्भ में विषतुल्य भयानक हो उस कार्य में उत्साह हिम्मत तथा बुद्धिपूर्वक परिश्रम करने से परिणाम में अमृत तुल्य अर्थात् अविनाशी सुखरूप फल प्राप्त होता है, अब इस श्लोक के अर्थापत्ति न्याय तथा गीता के उसी अध्याय के प्रमाण से सिद्ध होता है कि:-

विषयेन्द्रियसंयोगो यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

अर्थात जिस कार्य के आरम्भ में इन्द्रियार्थ जन्य सुख

अमृत जैसा अन्त में विषतुल्य नाशकारक भय उत्पन्न हो ऐसे सुख को राजस जानना। तात्पर्य अनुभव से सिद्ध होता है कि जो इन्द्रिय को विषय रस को अमृत तुल्य मान के प्रथमावस्था में लोलुप्य हो के पान करते हैं, वे मनुष्य अन्त में जैसे विषपान से नाश होता है वैसे होता है। इसलिये हे आर्य्यो! किसी भी कार्य में जितने अंश में दुःख होवे उतने अंश में सुख का चिह्न जान के या होम करके उठो, अपने आर्य्यपन के कर्तव्य को सम्भालो और उस को कायरता से विघ्न के भय से आरम्भ करने को छोड़ मत दो क्योंकि यह कार्य नीच प्रकृति तथा नीच श्रेणि के मनुष्यों का है, हम सम्प्रति के आर्य बीज से प्रादुर्भूत हुये हैं, हमारे आर्यत्व की गहरी जड़ है अति शुष्क भई नहीं है, उस को अविद्या रूपी कीट लग के प्रति दिवस हरकत दे रही है उस को सद्विद्या रूपी जल और विनय रूपी खाद डाल के प्ररोहण करो कि अन्त को पुनः उन्नतिरूप फल खा के तृप्त होगे, आर्य्यो! यह आब्रह्मस्तम्ब पर्यन्त अपनी २ स्थिति को उन्नति करने का मथन करते हैं तथापि वैसा होने के लिये साधन प्राप्त करने कराने को आता नहीं है तथा देश काल भी सानुगत नहीं होते। धैर्यरूपी अङ्कुर हृदय भूमि में शुष्क

होमुरझा गया है, उस को पुनः उत्साहित करो। मुझ को प्रसंग योग्य महाराजा भर्तृहरि का प्रमाण अपने हृदय सरोज को विकाशित करने को देना चाहिये यथा--

आरभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः ।
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ॥
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः ।
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ॥

अर्थात् इस जगत् में तीन प्रकार के मनुष्य रहते हैं नीच, मध्यम, और उत्तम। उस में नीच तो वे हैं जो व्यावहारिक, राजकीय और आत्मिक कोई भी कार्य में प्रथम से ही तन, मन, धन तथा यश आदि की हानि का विचार करके उस कार्य का आरम्भ ही नहीं करते, मध्यम वे पुरुष हैं जो कार्य का आरम्भ तो करें परन्तु भय, निन्दा तथा हानि होने से झट उस आरम्भित कार्य को कुछ हानि उठा के छोड़ देते हैं, परन्तु उत्तम मनुष्य वे हैं कि जो प्रथम से देशकाल और स्थिति देख गम्भीर विचार करके कार्य का आरम्भ करते हैं पुनः वारंवार विघ्न पड़ने पर भी उस कार्य से पीछे पांव न हटा के कटिबद्ध हो के चिरकाल तक भी उस कार्य को किये विना नहीं छोड़ते। आज देखोगे तो अन्त का उत्तम गुण पूर्व में

अपने में था वह अब यूरूपियनों में है तथा अधुना क्वचित् दूसरा गुण अस्मदादि में है। उस से कार्य सफल कर नहीं सकते ॥

प्रिय वाचक वृन्द! जब उत्तम प्रति के मनुष्य की पद्धति ऐसी है तब अपने को उत्तम बनाना यह अपना कर्त्तव्य कर्म है, उत्तम होने को विद्या, द्रव्य, सत्सङ्ग और अनुकूल कालादि की आवश्यकता है परन्तु उन में सत्सङ्ग उत्तमता तथा उन्नति आदि सर्व उन्नति का मूल, है सत्सङ्गति के विना दैशिक, सामाजिक, राजनैतिक और आत्मिक उन्नति होना दुर्लभ है। नीति में कहा है "सत्सङ्गात्संविवेकाच्च लभ्यते ज्ञानमुत्तमम्" सत्संग और सुविवेक से सर्व प्रकार के उत्तम ज्ञान प्राप्त करने को मुख्य हैं, इसलिये आर्य्यो! विचार करो, उन्नति २ मुख से परिहरो, मुख के असर से जितना घटित था उतना होचुका अब तो कर दिखाने के विना विशेष संगीन होने का नहीं, क्योंकि भोजन २ तथा पानी २ करने से क्षुधा तृषा की शान्ति, शक्कर कहने से मिष्टता और अग्नि कहने से उज्वलन होती नहीं है, उसी तरह जब पर्य्यन्त कर्त्तव्य करने सेही निर्धारित कार्यसिद्ध होता है थोड़ासा कार्य आरम्भ करके निष्फल हुआ करते हैं उस

का मुख्य कारण यह है कि कार्य्यारम्भ संसिद्ध्यर्थक याथा-तथ्य जितने अंश में पुरुषार्थ न्यून होगा उतने अंश में हानि होती है इस से उत्तम पुरुष जो है वह तो प्रागुक्त रीति में चाहिये जितना विघ्न संकट छेद डाले तथापि उस से उत्तीर्ण हो प्रारम्भित कार्य में पारङ्गत भये विना एक स्थान परबैठते नहीं। इदानीं अस्मद्देशीय श्रेणि में यहां की आबादी के प्रमाण में सच्चे देशहितैषी बहुत ही कम मिलेंगे, जो हैं उन को सर्व प्रकार की योग्यता मिलती नहीं। जैसे कि–विद्वान् को द्रव्य की, राजा तथा धनाढ्यों को विवेक और विद्या की, बीरों को देशहित, तथा देशाभिमानियों को (यह मेरा देश उस के प्रति कर्त्तव्यता) न्यूनता और व्यतिरेक होने से सच्चे स्वरूप में उन्नति कर नहीं सकते, जैसे चूना, कत्था एकत्र होने से लाल रंग होता है वैसे भिन्न २ देश, जाति, गुण, कर्म और स्वभाव की एकता (यूनिवरसल ब्रदरहुड) अर्थात् जैसे अनेक अवयव मिल के समूहात्मक एक शरीर कहाता है, उस के कोई भी अंग में दुःख होने से सर्व अवयवों को दुःख ज्ञात होता है अर्थात् सर्व आर्य मिल के मैं सर्व के सुख दुःख से सुखी दुःखी, सब के हानि लाभ में अपनी तथा देश के सामान्य हक़ रखने के लिये सामान्य धर्म

इत्यादि संयोज के भ्रातृत्व रंग तथा देश की उन्नति करने के लिये घटित है, यह गुण हमारे में दीख नहीं पड़ता जो देश वर्त्तमान में उन्नति के शिखर पर पहुंचा है, वह पूर्वोक्त गुण के पर्यावसान से ही। अपने देश की तरफ़ समालोचना करने से ज्ञात होगा कि राजा, महाराजा, राजकर्मचारी, विद्वान्, मूर्ख, व्यापारी, धनी और किसान इत्यादि देश की सम्प्रति कनिष्टदशा देख के किस का मन दुःखित हो के कौन देशोन्नति के लिये सच्चा भाग लेता है? और कौन दुःख निन्दा सहके देश की योग्य सेवा करता है? हां "मुखमस्तीतिवक्तव्यम्" इस वाक्य के जपने वालों का परिचय जब प्रसंग आता है तब दिखाई देता है, तात्पर्य्य यह कि स्वकीय मत अर्थ सधता न हो परकीय सहत्रावधि का साधन करने को लज्जा नहीं लाते। ऐसा बहुत भाग आडंबरी उन्नति करने वालों का दृष्टि पड़ता है इसलिये देश का भद्र होता नहीं जब तक ऐसे लोग अधिक देश निवास करते हैं तब तक इस देश निवासियों से अपना सुधार नहीं हो सकता ऐसे स्वार्थ पोषक स्वार्थी लोगों के हाथ में जैसे हमारे देश के हैं उन्नति की लगाम आवे तो प्रमाद से दुर्दशा परिखात में डाले विना रहते नहीं हैं जिस से उप-

स्थित लोग पिस जावें इस में लवमात्र भी संशय नहीं है। आज देखें तो अपनी स्थिति संदिग्ध हो रही है सब कोई अपने खान पान और ज्ञान के तान में मस्तान बन के गलतान हो मज़े में अज्ञान से सुल्तान समान निदान बन रहे हैं किस को देश की लगी है। अपने अन्योऽन्य एक स्वदेशी भाई की तरफ मीठी नज़र देखते नहीं हैं साधारण कार्य्य में भी परस्पर सहायता मेल नहीं है। प्रथम देशी राजाओं की ओर देखोगे तो येन केन प्रकार से राज्यकोष भरके ऐश आराम, नाच, रङ्ग, तमाशे अफीम कसुंबा तथा मद्यादि मादक व्यसन में चकचूर होके राज्यनीति रूपी समुद्र को एक गढ़े में समावेश करने के जैसा मान के अपने को कृतार्थ समझते हैं धनाढ्य तथा व्यापारी की ओर नज़र करोगे तो अपने देशियों को ठग के चूसने में अपना श्रेय समझते हैं, नहीं कि सत्य रीत्यनुसार देश परदेश जाके स्वकीय नौका द्वारा माल असबाब विपर्यय करके लाभ मिलाने में। कृषिकार की ओर देखोगे तो महान् शोक हुये विनारहेगा नहीं, जितनी यह कौम उत्तम उतनी ही अविद्वान्, मलिन, वहमी, अमित व्यय से भोले भाविक और उदार भी हैं परन्तु अविवेकी देखने में आते हैं। अब एकसाधा-

रण अधिकारी के ऊपर दृष्टि डालोगे तो बहुतों में अधिकार की मदान्धता इतनी अधिक व्याप गई है कि उन के अज्ञान और नम्र आज्ञाङ्कित लोगों को सुविचार अपने अधिकार में रहा हुआ नहीं देते इतना ही नहीं परन्तु अपने महत्त्व सूचित नमस्कार सलाम इत्यादि प्रणाम लेने में लाज आती हो ऐसा समझते हैं भिक्षुक जाति की तरफ आलोचना करें तो उन्नति की स्वप्न में भी आशा रखनी नहीं, और दाता प्रतिग्रहीता ऐसे ही अयोग्य रहें तो देश की धर्म्म कर्म्मादि अव्यवस्था अधिक तर देखोगे।

पाठक गण! भिक्षुकों की लीला कहां तक लिखें शुभाशुभ कार्य्य में, पर देश में, पुण्य तीर्थों में, ग्रहण महोदय में, वैधृत व्यतिपात में, संक्रान्ति योग में, जन्म मरण में, मुहूर्त्त, अपशकुन में, पतित पावन तथा पक्षी पतन विधि में, कोई देव के निमित्त कर कन्यादान देने के और साधु के बहाने जहां पर देखोगे वहां पर कोई तीर्थयात्रा के, कोई भीख २ और भीख के सिवाय समग्रदेश में और कुछ देखने में आता ही नहीं जिन को मूर्ख दाता की तरफ से उत्साह मिलने से प्रति दिन यह प्रवाह बढ़ता ही जाता है उस में थोड़ी उत्पादकों की सम्पत्ति बह जाय,

इतना होते भी (इंगलिन्ड में कोई मनुष्य भीख मांगता नहीं है, यदि मांगे तो पुलिस क़ानून के अनुसार दण्ड देती है, ग़रीबों और अनाथों के लिये पुवरहौस बने हैं।) ईंगलेन्ड के सदृश क़ायदा रूपी सेतुबन्धन में आता नहीं है, यह बड़े शोक की बात है, हमारी न्यायशीला गवर्नमेंट शान्ति तथा धर्मभङ्ग का निमित्त देखा के हस्ताक्षेप नहीं करती उस तरफ लक्ष नहीं देती है, आज देखोगे तो योग्य को उत्साह देने को कानों पर हाथ दिया जाता है उत्पादकों पर बोझा रूप अनुत्पादक भिक्षुकों को उत्साह मिलने से देश की क्षति (हानि) करने में-मानो सहाय जैसा है, जिस से नाना प्रकार के पाषण्ड बढ़ गये हैं. चोरी चपाटी बढ़ी, कहां तक लिखें किसी २ समय पर प्राण घात भी होता है, सारी दुनियां में देखोगे तो अनेक तरह के भिक्षुक जितने यहां पर हैं उतने और कहीं दृष्टि गोचर नहीं होंगे और हम को दिखाना चाहिये ऐसे मिथ्या स्तुतिप्रिय फूल नोचने वाले दाता भी नहीं हैं जहां आसमान फटा है वह कैसे जुड़सक्ता है, ऐसी सब बातों में अस्त, व्यस्त, हुई देशस्थिति देख कौन से देशहितैषी को अश्रुपात न होगा? कहां तक रोया करें कोई कहता है कि कलिकाल की महिमा है; कोई कहता है कि अपने

ग्रह निर्बल हैं, कोई कहता है कि नसीब में जैसा होगा वैसा होगा, और कई एक ऐसे भी कि अपने को ज्ञानी समझ कर कहते हैं कि यह तो ईश्वर इच्छा इस में मनुष्य का कुछ नहीं चलता। यह सब मेरी अल्पमति अनुसार कापुरुषों (कायर) के टल्ले नवीसी तथा उत्पादक लोगों की अतिन्यूनता के लक्षण हैं इसी तरह हम अपने ही हाथ से देश की ऐसी स्थिति लाने वाले हैं, प्रिय मित्रो! ज़रूर विचार करो कि यूरूपियनों अपनी वरिष्ठ स्थिति अपने पुरुषार्थ से ही की है। कुछ भी नहीं हम को केवल पुरुषार्थ की न्यूनता के फल मिले हैं। भाइयो! शीघ्र करो कोई भी कार्य कोई काल में अपने करे विना होने वाला नहीं है तो समझ बूझ के सविस्तर आरम्भ करो "को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति" अर्थात् कौन जाने कब मृत्यु काल आवेगा ऐसा विचार महान् कार्य्यों का आरम्भ करके कीर्त्ति स्तम्भ गाड़ो हरी हरी करने को छोड़ कर मिले हुए साहित्य का उपयोग करके जागृत हो।

महाशयो! आप अपना और अपने देश का कल्याण करने की जिज्ञासा रखते हो तो नीचे लिखे षट् शत्रुओं को मारो॥

षडिमेपुरुषेणेह हातव्या शुभमिच्छिता ।
निन्द्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रिता ॥

अर्थ–(१) अत्यन्त निद्रा तथा अत्यन्त अनिद्रा जो रोग का मूल है उस को दूर करो, (२) तन्द्रा जो दुर्व्यसन तथा आलस्यादि अदृढ़ता से सारी रात्रि में अर्फ़ीमचियों के सदृश पड़े रहना और शुभकार्य का आरम्भित न करना (३) भय जो दूसरों के तेज में आजा के स्वदेशिक, सामाजिक, और आत्मिक उन्नति करने कराने में डरं जाना (४) क्रोध जो परोत्कर्ष सहन न होने से जो ऊर्मि उत्पन्न हो उस को कहते हैं उसका विवेक ऐसा करना कि यदि क्रोध करने से धर्म का तथा सत्य का रक्षण अपने अधिकार में रहीहुई शक्ति से होता हो तो वह करने में शान्त प्रकृति छोड़ क्रोध करना अक्रोध गिना जाता है परन्तु अधर्म युक्त क्रोध नहीं करना (५) आलस्य जो इन्द्रिय अन्तःकरण और आत्मा केतत्तज्जन्य सुविषयों का पुरुषार्थ छोड़ निवृत्तिमानउस के धर्म की शक्ति को रोक रखना, (६) दीर्घसूत्रिता अर्थात् देशकाल और स्थिति का विचार नहीं करके संसार तथा परमार्थ के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सम्बन्ध के बड़े छोटे कार्य जो जो समय में करने से

लाभ प्राप्त होते हैं उस को उस २ समय में न करके कालोत्क्रमण करना यह छः कारणों को जो मनुष्य दूर करते हैं वे सर्व प्रकार के सुख को सदा सर्वदा देखेंगे इस नीति प्रमाण का अर्थापत्ति न्याय से फलितार्थ यह निकलता है कि अयोग्य निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता करनेवाला मनुष्य तन, मन, धन, ज्ञान, विभूति रहित हो, दुःख सागर में सदा डूबा करता है। मित्रो! अपने विविध दुःख दावानल में प्रज्वलित रहते हैं उस के ऐसे ही कारणों से देश के प्रमाण दरिद्र लाने में स्थिर वास किया है उस को सर्व भद्र मनुष्यों ने दूर कर के सद्गुणी होना यही अपनी उन्नति के मुख्य कारणों में से एक कारण है। हे सज्जनो! तुम लोग क्यों आलसी बैल के सदृश संकोच से काल को व्यतीत करते हो? अरे आन्तरिक देश की हितैषिता किसी को नहीं है। कहां गया असोघ वीर्य? कहां गये कला कौशल? कहां है रूप बल बुद्धि का अभिमान और छटा? कहां है तुम्हारी धर्मनीति हां! कोई पांच हज़ार वर्ष से अगाड़ी का योगी पाताल से वा आकाश से वा कोई गुफा में से अपनी तथा अपने देश की अनेकानेक हीनावस्था देखे तो शोक के उद्गार के आश्चर्यसागर में डूबे इतना ही नहीं किन्तु यह पूर्व

की भारतभूमि है इतना जानना उस को बड़ा कठिन हो जाय अर्थात् वैदिक काल से सर्व विपरीत देखेगा ॥

वाचकगण! अवर्णनीय अधोगति अपनी हुई है उस के लिये लोकोक्ति ऐसी है कि यह तो कलियुग की महिमा है। वह बात आज तो हम लोगों की होती है कारण कि कलि शब्द का अर्थ कलह होता है औ युग शब्द का अर्थ संयोग होता है उभय शब्दार्थ मिल के जो देश काल में क्लेश का मिलना उस की कलियुग संज्ञा है देखो तो आज अपने देश में कलियुग सर्वत्रैव दृश्यमान है उस में लव-मात्र भी संशय नहीं परन्तु विद्या व्यतिरिक्त लोग अन्ध परम्परा ऐसा मान कर बैठेहैं कि कलिकाल सर्व मनुष्यों में प्रवेश करके धर्म कर्मादि करने में संनिषेध कर रहा है। बुद्धिमानों को विचारना चाहियेकि काल कोई स्थूल वस्तु नहीं है कि किसी में प्रवेश करके अधर्म में उसे चलावे, कलि नाम तो मात्र अविद्या युक्त काल का है ऐसा उपनिषदों में कहा है ॥

कलिः शयानोभवति संजिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्त्रेताभवति कृते सम्पद्यते चरन् ॥

अर्थात् जो काल में तथा देश में मनुष्य के तीन भाग

अविद्या रात्रि में सोया हो उस को उस समय कलिकाल कहते हैं अर्द्धभाग जागृत हो उस को द्वापर, तीन भाग जागृत हो उस को त्रेता और कार्य सम्पादन करे उस को सत्ययुग कहें तो भूल गिनी न जाय, भारतखण्ड में तो कलियुग है ॥

अहो आर्यगण! अविद्यारूपी कलि के जाल में से छूट स्वतन्त्रता मे काली मोह की निन्द्रा से जागो, उठो और कर्त्तव्यकर्म करने को समय व्यतीत मत करो। अब आप लोगों का मन घबड़ा गया होगा इसलिये एक उपनिषद् का प्रासंगिक प्रमाण देके इस विषय को समाप्त करता हूं।

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत" पुनः पुनः कहता हूं कि जागो उठो! उत्तम पुरुषों को प्राप्त हो के स्वयं सुधर दूसरे के सुधारने का बोध करो ॥

किमधिकम् सुविज्ञेषु ॥

—*—

विज्ञापन

(१) समीक्षाकर मूल्य ≡) यह पुस्तक टाइप में वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड से छपा है इस में नवीन सांख्य वेदान्तादि के परस्पर विरुद्ध वादों का निराकरण और विरुद्ध भाष्यों का समाधान संस्कृत तथा भाषा में पण्डित श्रीप्रभुदयालु साफीदार व इलाकेदार मौजा तेरही ज़िला बान्दा ने रचा है। पुस्तक रायल १०॥ फ़ार्म का है मूल्य केवल प्रचारार्थ ≡) रखे हैं ऐसा स्वल्प मूल्य का पुस्तक आज तक नहीं छपा देखने योग्य है।

(२) नित्यकर्मविधि मूल्य)। जिस में पञ्चमहायज्ञ मन्त्र और अर्थ सहित दिये हैं जो चार बार छपी है और उस की १८००० प्रति बिक गई हैं अब थोड़ी रहगई सन्ध्या के प्रेमियों की उत्सव तथा मेलों में बांटने योग्य हैं।

(३) वैदिक पुस्तक प्रचारक फण्ड से छपी पुस्तकों का सूचीपत्र-हिन्दू आर्य्य और नमस्ते का अन्वेषण ॥। क्या स्वामीदयानन्द मक्कार था)॥। पुरुषसूक्त अर्थ सहित)॥ मनुष्यसमाज)॥ मनुष्य जन्म की सफलता)॥ क्रिश्चियनमत दर्पण)॥ श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज का जीवन चरित्र (दोहे चौपाई में)॥ महाशङ्का-

वली १ भाग)। दूसराभाग)। ईसाईमतखण्डन १ भाग)। दूसरा भाग)। ईसाईमतलीला)। शिवलिङ्गपूजाविधान)। पं० रामचन्द्र वेदान्ती का उत्तर)। गङ्गा की नींद)। नीतिशिक्षावली)। (१) पुराण किसने बनाये (२) अमेरीका निवासी डेवीसकी आर्यसमाज और स्वामी जी पर राय (३) श्रीस्वामी शङ्करानन्द जी के अनुमोल उपदेश ये तीनों आधे २ पैसे को हैं। रामायण का आल्हा)।

श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी महाराज कृत पुस्तकें सत्यार्थप्रकाश मू० २) जो कई महीनों से छपता था अब बम्बई टाईप में उत्तम काग़ज़ पर छपके तैयार हो गया और हमारे पास भी आगया है मोटे काग़ज़ का मूल्य २॥) है ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥) संस्कार विधि १।) आर्याभिविनय।) पञ्चमहायज्ञविधि ≡)॥ संस्कृतवाक्यप्रबोध ≡) व्यवहारभानु ≡) आर्य्योद्देशरत्नमाला -) गोकरुणानिधि -) सत्यधर्मविचार (मेलाचांदापुर) -) शास्त्रार्थ काशी -) वेदान्तिध्वान्तनिवारण =) हवनमन्त्र)॥ स्वीकार पत्र)। आर्य समाज के नियम उपनियम)। स्वामीजी के पूना के ८ व्याख्यान ≡)

स्त्रीशिक्षा के पुस्तक-स्त्रीधर्मनीति १) सीताचरित्रनावल १ भाग ।॥) उर्दू चारों भाग १॥) बुद्धिमती ।-) अबला-

विनय ≡)॥ अवलाधर्मचन्द्रोदय ≡) पाकरत्नाकर ।=) हुक्नदेवी -)॥ नारीसुदशाप्रवर्त्तक १ भाग =) दूसरा ≡)॥ तीसरा ।=) चौथा ।=) भारत की शूरवीर राणी का जीवनचरित्र)॥ जया ।।) मधुमालती ।॥) स्वर्णलता ॥।)इला॥=) प्रमिला ॥=) नारीधर्म ।।) कन्यासुधार -) गान की पुस्तक आर्यसङ्गीतपुष्पावली ॥) उर्दू ।।) सभाप्रसन्न ।) उर्दू ≡)॥ प्रेमोदयभजनावली ≡) भजनामृतसरोवर =) सङ्गीतरत्नाकर =) सङ्गीत सुधासागर -) भजनेन्दु -) भजनपचीसी)॥ भजनविवेक)॥

हमारे यहां श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराजकृत पं० तुलसीराम स्वामीजी कृत पं० भीमसेन जी मुं० चिम्मनलाल जी पं० कृपारामजी वैदिकपुस्तकप्रचारकफ़ण्ड आदि के पुस्तक हैंतथा श्री स्वामी दयानन्द महाराज का जीवनचरित्र स्वर्गवासी पं० लेखरामजी कृत ४॥) का भी है

फ़ोटो बड़े केबीनेट साईज़ पं० लेखराम जी की जीवितअवस्था का ॥) अर्थी (शव) का ॥) पं० गुरुदत्त जी का ॥) श्रीस्वामी दयानन्द जी महाराज का ।।) छोटे कार्ड साईज़ सू० ‍१)

पता—स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती
प्रबन्धकर्त्ता वैदिकपुस्तकप्रचारक फ़ण्ड सदर-मेरठ

ओ३म परमात्मनेनमः

क्रिश्चियन मत दर्पण

श्रीयुत पं० लेखरामजी शर्मा आर्य पथिक विरचित के ८वें अध्याय [ईसाई मत संसार में कैसे फैला]का

अनुवाद

पं० रामविलास मंत्री आ०स० शाहबाद अनुवादित
वैदिक पुस्तक प्रचारक फण्ड के प्रबन्धकर्त्ता
श्रीस्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित
पुस्तक संख्या १२

नहीं मरता नहिं जन्मता निराकार भगवान ।
ताको कहते औतर्यो ईसाई अज्ञान ॥
जो होते ईसा भगवान । काहे देत क्रुस पर प्रान ॥

बम्बई मित्र प्रेस मथुरा में छपा ।
मार्च सन् १८९७ ई०
...१०००

विज्ञापन

१—जया [एक स्त्री धर्म की उच्च नीति का उपन्यास]
मूल्य ॥, आना—बादशाह अलाउद्दीन का जया के ऊपर आ-
शक होना, जया के पातिव्रत धर्म का रक्षण क्षत्रियों की वी-
रता और इतिहासिक बातोंसे पूर्ण एक नये ढंग का उपन्यास
बाबू कार्तिक प्रसाद कृत है. पढनेसे इसका गौरव ज्ञात होताहै।

२—सिद्ध मनोरंजन मू० १, रुपया—यह काव्य का पु-
स्तक है इस में चारों आश्रम के धर्म ज्ञान वैराग भक्ति का
विषय बड़ी उत्तमता से दर्शाया है ॥

३—पांचसो व्यापार मू० १, रु०—इस पुस्त[illegible] पांच
सो तरह की नई २ कारीगरी की चीजें बनानी [illegible] राज का
बना के मनुष्य लाभ उठा सकेहैं ([illegible] में भी है [illegible] ती है

४—श्री क्षत्रपति शिवाजी महाराज का [illegible] की जी-
ऐसा कौन है जो शिवाजी का जीवनचरित्र पढ़ [illegible] गुरुदत्त जी
इनका सहास, उद्योग और वीरता का [illegible] ॥) छोटे कार्ड
बढ़कर और किसी को नहीं मिला, [illegible]
को पराजित कर आर्य्य धर्म का गौरव रखन[illegible]

प्रबन्धकर्त्ता वैदिकप्रचारक फ़ण्ड सदर—मेरठ

ओ३म् परमात्मनेनमः ॥

ईसाई मत संसारमें कैसे फैला

समस्त चतुर पादरी साहेबान अनजान लड़की और भोले ग्रामों के निवासी गवारों को इस भांति फुसलाया करतें हैं, और प्रायः नगरों के प्रतिष्ठित रहीसों को जो इतिहास का नाम तक नहीं जानते यही दम दिलासा दिया करते हैं कि ईसाई मतकी सत्यता और उसकी कार्य्यवाही का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वह सारे संसार में फैलता जाता है, उस के राज्य में शान्ति है, वह सलाह से बाइबिल (इंजील) का उपदेश करते है अत्याचार से नहीं. वे तलवारें नहीं चला ते किन्तु उत्तम प्रकार समझाते है, प्रेस (छापा) रेल, इंजिन, घड़ी, तार, डाक्टरी, कालिज, स्कूल सब ईसाई मतकी बरकत है, और बाजे सफेद चमड़े को भी गवाई में पेश किया करते हैं.

निस्संदेह अनजान मनुष्य ऐसी बातें सुनकर फिसल जाते है, यदि ईसाई दीनका वास्तव में यही दृश्य है तो बिचारा गवांर क्या बुद्धिमानों को भी उसका साथ देना चाहिये. प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या ईसाई दीन ऐसा नहीं है ?

उत्तर—कदापि नहीं, और इसको हम ठीक २ रीति पर एक पूर्ण अन्वेषण द्वारा सिद्ध करना चाहते हैं.

विदित हो कि प्रथम तो यह मत समस्त संसार में नहीं फैल ता जाता, और न फैल चुका है. इस समयभी ईसाईयों से बौ द्ध मत के अधिक है, फ्रांस, जर्मन, इंग्लैंन्ड, नार्वे, अमेरिका, और आफ्रीका के विभागों में लोग ईसाई मत को त्याग कर रहे है, बीसो समाचार पत्र बाइबिल के विरुद्ध जारी है, आर्य्य समाज का शुभ उद्योग भी ईसाई वृक्ष को फूलने फ- लने नहीं देता है. वैदिक शिक्षा, बुध धर्म यूरोप के प्रायः स्थानों में फैल रहा है और मन्दिर बन रहे हैं, कहीं २ भा- रत वर्ष में भी लोग ईसाई मत को छोड़ते जाते है, मद्रास पंजाब के हालात साक्षी है. अभी एक दो वर्ष हुये कि यूरोप के एक प्रसिद्ध पादरी "सर ऐज़क टेलर" साहेब ने ईसाई दीन की दिन प्रति दिन की घटती का बहुत उत्तम ता से वर्णन किया था जिसपर बड़ी खलभली मची थी परंतु उन्नती का जितना सामान ईसाईयों के पास है उतना यदि आर्यों के पासहो तो वह ईसाई यों से शतशः गुण अधिक उन्नति करसक्ते है, वह इस बेसामानी में भी तनख्वाह दार पादरियों व बिशपों के मुकाबिले में बहुत कुछ कर रहे हैं; राज्य में शान्ति ईसाई

मत के कारण नहीं है किन्तु महरारानी विक्टोरिया के सुप्र- बन्ध और पार्लीमेन्ट की उत्तम कौंसिल के कारण से शान्ति है, जो ईसाई दीन के कारण हीं शांति है तो रूस में कुप्रब- न्ध क्यों है, क्या वह ईसाई नहीं ? और क्या वहां गिर्जे व इंजील नहीं ? यूरोप के पहिले राजाओं के समय में अप्रब- न्ध क्यों था ? जब कि उस समय इंजीलें सलीबें गिर्जे सब कुछ थे, परन्तु जितना १००० वर्ष तक यूरोपमें पोपका राज्य (४ सदीसे १६ सदी तक) रहा, उस समय इतनी बुराइयां अत्याचार, दुष्टपन बेईमानियां, तबाहियां, कुव्यवहार और स्वार्थ परतायें थीं कि जिनकी गणना नहीं, जो कि सम्पूर्ण ईसाई राहबों बिशपों, पोपों के हाथों से समस्त यूरोप पर ई साई दीन के कारण पड़ी, इनके अतिरिक्त और कोई उन्नति न हुई, विस्तार पूर्वक देखो:—

(ड्रेपर साहेब की कौनफ्लिक्ट बिटवीन सायन्स इन रीलीजी- यन बाब १० सफा २९९ से २८९ तक छपी हुई बीसमी बार लंडन स० १८८७ ई० की)

बाइबिल का उपदेश भी शान्ति पूर्वक नहीं हुआ, और न अवसर मिलने पर ईसाईयोंने तलवार चलाने और अत्या चार करने से मुह मोड़ा किन्तु अवसर पाके सादियों तक

तलवार चलाई स्वयं ईसाई यों में भी मज़हबी लड़ाइयों ने बहुत समय तक रक्त की नदी बहाई· रोमन कैथलिकों का बर्ताव प्रोटेस्टंटो से और उनका दूसरों से बहुतही भयावना था, एक दूसरे के खून के प्यासे रहे अतएव सुव्यवहार भी ईसाई दीन की कोई उत्तमता नहीं. छापा व रेलका आविष्कार (इजाद) भी ईसाई दीनसे नहीं किन्तु कई देशों के विद्वानों व बुद्धिमानों के उद्योग का फल है न कि पादरियों की हिम्मत व ईसाई यों की बर्कत. इन बस्तुओं के बनाने वाले एक ईश्वर के मानने वाले और कुछ नास्तिक थे अतः बाइबिल से इसका कोई सम्बध नहींहै. अब हम चाहते हैं कि ईसाइयों की विद्या,व्यवहार, प्रेम और पुस्तकों व विद्वानोंसे सलूक और स्वयं ईसाईयों का आपुसका बर्ताव इन बातों को यूरोपियन विद्वानों व फलासफरों [तत्ववेत्ता] की ठीक२ साक्षियों से निवेदन करें. जिससे हमारे अनजान भाईयोंको ज्ञात होकि ज़ाहिरीमें सफेद रंगतके ईसाई ऊपरी टीपटापमें पौडर और साबुन से धुले हुए ईसाई भीतरकी सफाई से कितनी मंजलें दुर हैं।

॥ शेर ॥ संगीं दिलस्त हरके बज़ाहेर मुलायमस्त ।
पेनहां दरूने पुंबे निगर पुंबे दानरा ॥

अर्थ—जिसका दिल पथ्थर की भांति कड़ा होता है वह प्रगट में नरम होताहै; जैसे रुई में उसका सख्त बीज छिपा हुआ होता है. सचहैं प्रायः कठिन हृदय के मनुष्य प्रत्यक्षमें बड़े नम्र दृष्टि पड़ते हैं ।

"वृक्ष अपने फलसे पहेचाना जाता है" (मति की पुस्तक अध्याय १९ आयत२०) मसीह की मृत्यु के ३०० वर्ष पीछे कान्स्टंटिन,बादशाह इस नये दीनका बड़ा हामी था;वह नासिया की कौन्सिल में उपस्थित था, जहां से ईसाई तस्लीस के तीन खोदाओं के दर्जे नियत हुये उसने कुफ्र के बन्ध करने को कानून बनाये और ईमान वालोंके लाभार्थ काफ़िरों की जादादको ज़ब्त किया. उसने धन द्वारा सहस्त्रोंको क्रिश्चियन मतकी ओर झुकाया,गिर्जोंकी गोदमें बहुत द्रव्य डाला और राज्य कोष को उसपर व्यय किया और निज आज्ञासे बिशपों को रुपया दिया तात्पर्य यह कि जो कुछ एक बादशाह एक दीन के लिये कर सक्ता था वह कान्स्टंटिन ने ईसाई मत के लिये किया और जो ईसाई मतका फल होना था वहभी उसमें प्रगट होगया अर्थात वह मृत्यु समय तक बपतिस्मा से टालमटोल करता रहा जिससे वह स्वतन्त्रता पूर्वक निडर हो के पाप करसके. उसने अपने

लडक का मारा, अपनी स्त्री का बध किया वह एक व्यर्थ व्य-
यी व अत्याचारी राजा था ॥

पाहिली सदीके ईसाइयों का चाल चलन—यदि पालपीटर*
ज्यूड के लेख प्रथम सदी में लिखे गये हों तो उस समय भी
ईसाइयों का यखलाक (नीति) सख्तमशकूक [परम संदेहमय]
था. [देखो पहिला करनथीयन अध्याय ९ आयत १ली]

दूसरी सदी—प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मूशियम कहता है कि
"जो जन नेकी बदी का ठीक२ ध्यान नहीं रखता वह यख-
लाक (नीति) का बुरा मार्ग दिखाने हाराहै जो यह सत्यहै
तो प्रथम यह बात ईसाई उपदेश को पर ठीक उतरती है.
ईसाइयों ने जालसाजी से कलपित लेख बनाय और दीन
फैलाने के लिये बहुत से दीनी धोखे दिये" ॥

---

* पोलूस पैगम्बर इंजील में उस समय के ईशाइयों को
लिखता है "अक्सरों से सुनते हैं कि तुम्हारे बीच हरामकारी
होती है और ऐसी हरामकारी जिसका अन्य जाति में नाम
भी नहीं कि कोई अपने बाप की जोरू रक्खे और तुम फूलते
हो और जैसा चाहिये शोक नहीं करते" ॥

तीसरी व चौथी सदी—तीसरी सदी में वही इतिहास-
वेत्ता मूशियम ईसाइयों के बिशपोंकी ऐयाशी व उनके इन्द्रि-
याराभी होने और पादरियोंकी इसी प्रकारकी बुराइयां व-
र्णन करताहै. और चौथी सदीके वृत्तान्तमें वही मूशियम खेद
पूर्वक वर्णन करता है कि कुचलनों, इन्द्रियारामों और आवा-
रा घूमने हारों के झुंडों से ईसाई मत कलंकित हो रहाथा.
पापियों व इन्द्रियारामी मनुष्यों की अधिकाई से सत्पुरुष बहुत
ही थोड़े रहगये थे. इससे उत्तम प्रकार प्रगट है कि ईसाई
मत प्रथम श्रेणीकी उत्तमता को सर्व साधारण के बीच फैला-
ने में हतसफल रहा ।

पांचवी सदी—मारसिल्ज का पादरी सेलवीयन पांचवी-
सदी के निज मत वालों के कुचरित्र का चित्र इन शब्दों में
उतारता है. वह पूंछता है कि ऐसा कौन मनुष्य है जो जार
कर्म के दलदल में फसा हुआ नहो. यदि इससे अधिक पूछना
चाहते हो तो मैं आगे कहताहूं. जो कुछ मैं कहा चाहताहूं वह
बहुत ठीक २ परन्तु खेद पूरित है, स्वयं ईश्वर की गिर्जा और
उसमें यह बुराइयां, शोक! शोक!! महाशोक !!! और कैसे
ईश्वर को क्रोधित कर सक्ते हैं; थोड़े मनुष्यों के अतिरिक्त जो
बुराइयों से भागते हैं. लगभग ईसाईयों का प्रत्येक समूह बुरा-

इयों का दुर्गन्धित छज्जा है क्योंकि तुमको कठिनता से ऐसा मनुष्य मिलेगा जो मद्य पीनेहारा, पेट पूजक, जारकर्मरत, इन्द्रियारामी, चोर और नरहत्याकारी नहो. और सबसे बुरी बात यहहै कि यह सबभांति के मनुष्य अगणित हैं, मैं अब सब ईसाई जनोंके ईमान से पूछताहूं कि क्या तुम एक मनुष्य भी पासक्ते हो जो उन सब बुराइयों व पातकों में जो ऊपर मैंने कहे न फसाहो, किन्तु ऐसा कौन है जो सबका दोषी नहो. सत्यतो यहहै कि ऐसा ईसाई पाना अधिक सहज है, इसकी अपेक्षा ऐसा ईसाई जो किसी का अपराधी नहो लग भग समस्त समूह पादरीयों का इस लज्जास्पद कुकर्म में ऐसा डूबा है कि सम्पूर्ण ईसाईयों में उसको एक प्रकार पवित्र गिनते हैं जो औरों से थोड़ा कुकर्मी हो." देखो (म्यालइ सायर आफ् अर्ली क्रिश्चियानीटी एष्ट ३६६ व ३६७)

इस पांचवीं सदी में एक फलास्फरा स्त्री 'हिपेटिया' नाम की उस को इस अपराध में कि फिलासफी फैलातीहै "पादरी सेरल" के चेलों की फौजने उस के खुदा की बाईबिली आज्ञा के अनुसार (खरूज प० २२ आ० २०) जब कि वह अपने व्याख्यानालय को जाती थी रथ पर से घसीट के इस्कंदरिया के बडे गिर्जे में लेगये. प्रथम नंगा किया

फिर गिरा दिया, उस के शरीर को सीपी के टुकडों से काटा तत्पश्चात उसे जला दियां. देखो (फ्रुट आफ क्रिश्चियानिटी पृष्ठ ९ परेग्राफ ३)

"शारलमेन ने सेक्सन के मध्य में सेना भजकर अग्नि और खगद्वारा उस जातिको ईसाई किया जिनको कि पादरी और साहब लोग केवल उपदेश से ईसाई न कर सके क्योंकि उन्हों ने अपना उद्योग अत्याचार और धमकी के विना किया. देखो (मूशियम की एकलीजियास्टीकल हिस्टरी अर्थात दीनी तवारीख पृष्ट १७)

फिर लिखा है "सेक्सन लोगोंने जब उन्नति की, तो उन में के थोडे ईसाइ दीन से विमुख होगये जिनमें से अंत को एक गाडसकेलस साहब सन् ८४९ में विशप की सभा में यहां लो कोडों से पीटा गया कि उसने अपने लेख फूंक दिये" (इसी निमित्त मारा गया था) देखो (फ्रूटस आफ क्रिश्चियानिटी पृष्ठ ९)

जो फल ईसाई मत का वृक्ष पश्चिम में लाया उस से पूर्व में भी फला. जैसाकि आर्मिनिया में थियोडोर बादशाह की आज्ञा से पालेशियन काफिर के मतके एक लाख जन पकडे

गये, उन का माल जप्त किया और वह खुद शिकंजों के कष्ट में पेरे गये ॥

"हिलम साहब" अपने इतिहास मिडिल एजिज़ में लिखतेहैं कि स्वयं दश लाख ईसाई क्रुसेड के जिहाद (मजहबी लडाई) में मारे गये ॥

दशवीं सदी—इस सदीमें नार्मन, पोलेन्ड, रूस, डेन्मार्क, नार्वे इन सबोंने ईसाई मत स्वीकार किया. नार्मन लोगोंने एक बहुत बड़ा भाग भूमिका मांगाथा जिसके पलटे में ईसाई मत स्वीकार किया; और पोलेन्ड वालोंने इस कारण से कि काफ़िरों के विरुद्ध बड़े कठिन नियम बनाये गये बादशाह के इस डरके मारे पुराना मत छोड कर नया ईसाई मत ग्रहण किया.

नार्वे और डेन्मार्क वालों ने एक भारी पराजय के बाद ईसाई मत ग्रहण करके प्राण बचाये, नहीं तो कृपाण की तीक्षण धार से बध किये जाते ॥

सन् १०९९ ई० में यरूशलम पर जय प्राप्त हुई पवित्र नगर में " टि्डियम " का भजन गाया गया, फिर ईसाके सिपाही घुटनों पर से उठके शहर के गली कूचों में गये और निर्दयता से स्त्री पुरुष और लडकों का बध किया ॥

इस के पश्चात् दूसरी सदा में "बिज़ाइरेस" नगर सूबा अल्बीजिन्स १३ का जीता गया ॥

पोप इन्विसेन्ट तीसरेने काफ़िरों पर जिहाद का हुक्म दिया जो बड़ी निर्दयता से ठीक २ यरूसलम के जिहाद की नकल थी. इन्हीं सत्यानाश करनहा ईसाई ग़ाज़ियों ने "लंगोडग" का देश जो उस समय हराभरा व सभ्य था मिटा दिया, उस का नगर भस्म कर दिया उसके निवासी तलवारों से काटे गये और फूंक गये ॥

बिज़ीइरेस नगर को जय करने और उसके सर्व साधारण के बधम साठ हज़ार मनुष्य मारे गये जिसमें से एकभी न बचा.जैसाकि "हिलम"साहब के इतिहास में उस समय की आज्ञा इस भांति लिखी है—उन सब को मारो उन सब को मारो जो ईश्वर के होंगे उनको वह जान लेगा ॥

इन बूचड़ों (ईसाइयों) ने मुसाकी पांचवी किताब "विवाद" (इस्तिस्ना) अ० १३ आ० १२ से १६ के खुदाके हुक्म को पूरा किया.॥

उसी पोपने होली इंक्वीजीशन स्थापित किया था वह होली आफ़िस(पाक दफ्तर)स्पेन में सन् १४८० ई०में कायम हुआ और एक वर्ष पीछे तीन हजार मनुष्य

सूबे इन्डलूशिया में जलाये गये, सत्रह हजार को अन्य प्रकार दंड हुआ. २३६ वर्ष में स्पेन के सम्पूर्ण देश में इस पवित्र विभाग (महकमा) ने ३१९१२ मनुष्यों को जीवित ही अग्नि में जलाया. इसके अतिरिक्त २९१४५० को कठिन दंड दिया.

'स्यूडाड्रियल' में ९९० मनुष्य जीते जलाये गये केवल १ वर्ष में पिछली स्त्री जो स्पेन में फूंकी गई. वह एक अभागी थी उसका दोष केवल यह था कि वह शैतान से मेल रखती थी ता० ७ नवम्बर सन् १७८१ ई० यह "सोल" नगर में जलाई गई. जिसको आज केवल १२६ वर्ष होते हैं.

"निधरलेन्ड में आल्वा ने १८ हजार मनुष्य ५ या ६ वर्ष के राज्य में वध किये.

बेकल साहेब के इतिहास में लिखाहै कि एक वर्ष में ८ हजार मनुष्य जलाये गये. और जब हेयूगनाट लोगों पर आक्रमण हुआ तो उसमें ९४०० मनुष्य मारे गये. बादशाह निज महल की खिड़कियां से भागते हुए जनों पर गोलियां मारता था. गिर्जा में कतल आम का घंटा बजा, और वधिकों का चिन्ह सलीब का तमगाथा. यह तमगा पोप ग्रेगरी १३ वे ने इसी जिहाद के स्मरणार्थ बनवाया था.

ता. २४ अगस्त सं १५७२ ई. में सन्ट बारथालमी का वध भी इसी अपराध में हुआ.॥

सन १६८५ ई० में प्राटेस्टन्ट लोगों पर रोमनकैथोलिकोंने हमला किया, जिसमें कोई बुराई ऐसी न बची जो दीन के स्वीकार करने में इन्हों ने न की हो. इन्हों ने अपने विरोधियों को बांधा, और सिकंजे में रक्खा और उसी दशा में टोंटी (फनल) से उन के कंठमें यहां लों मदिरा डाली गई कि उस्की भापसे बुद्धिमारी गई, और उन्हों ने उसी दशा में रोमनकेथोलिक होना स्वीकार किया बाजे बाजों को बिलकुल नंगा करादिया और नाना भांतिकी अप्रतिष्ठा करके उनके सिरसे पांव तक पिन (सुइयां) चारोंओर ठोकदी और चाकूसे उनको धीरे २ काटा और गरम चिमटोंसे उनकी नासिकायें खींचीं और उनको कमरोंके भीतर घसीटते थे यहांतक कि उन्होंने रोमनकेथलिकों का दीन स्वीकार किया. बाजों को चिल्लाने और ईश्वर के लिये डालने से विवश छोड़ दिया और बहुतों के हाथ व पांवों के नख जबरदस्ती निकलवायें, जिससे निस्संदेह बहुतही कष्ट हुआ होगा. बाजों के पांव जलादिये गये बाजों के शरीरों को धौंकनियों से इतना धौंका कि वह लग भग फटगये, यदि इस रीति पर भी वे दीन छोड़ने पर राजी

न हुये तो उनको तंग और बदबूदार जेलखाने में बन्द किया जहां उनपर बड़ी २ निर्दयता की जाती थी, और प्रायः स्थानों में उन्हों ने बापों और पतियों को चारपाई पर बांधा और उन के नेत्रों के सन्मुख उनकी स्त्री व कन्याओं के साथ कुकर्म किया. देखो:— (चेकल का इतिहास)

स्त्रियों पर विशेष कर कठिन अत्याचार किये गये, यह अत्याचार ऐसे घृणित हैं जो किसी घृणित मष्तिष्क के ध्यान में भी नहीं आसक्ते. परन्तु यह सब केवल इसी लिये किया कि वह रोमनकेथलिक होजावें ॥

एक हर्काम इस्क्यूलीनेस थोड़े अनुभवों के कारण से सन् १३३७ ई० में जलायागया ॥

जान हेन्स सन् १४४९ ई० में जलाया गया.

जैरूम प्रसिद्ध एतिहासिक सन १४१६ ई०में जलायागया.

सहवान अरोजा साहेब थोड़ी बुराइयां दूर करने के निमित्त सन् १४९८ ई० में जलायागया.

जी, आर ब्रोनो ज्योतिषी रूम में सन् १६०० ई० में जलाया गया.

बेनीनी की जिव्हा निकलवाई और टोलोस नगर में सन् १६१८ ई०में जलाया गया.

पादरी क्लबियन के फ़तने (मज़हबी हुक्म) से सर्विटस *तस्लीस के विरुद्ध होनेके कारण और "प्रोआट" पूर्णतया ईसाई मत के विरुद्ध होने के कारण स्वीरजरलेंड में जलाये गये.

जब प्राटेस्टन्ट लोग छठे एडवर्ड के समय में बलवान हुये, तब आर्चीबिशप "क्रेन" को आज्ञा हुई कि प्राटेस्टन्ट के विरुद्ध लोगों की तहक़ीक़ात करो जिसके कारण जानबोचर और वेन पियर्स इंगलेण्ड में जीते जलाये गये.

मलका मेरी के समय में प्राटेस्टेन्ट लोग विजयी हुये तो उन्होंने सन् १५९२ ई० में प्राटेस्टेन्ट बनाने के लिये शिकंजा, फांसी, खींचखींचना, टुकडे २ करना इस भांति के अत्याचार काम में ला के इंगलेन्डवालों को प्राटेस्टेण्ट बनाया. शिकंजे में लानेकी यह दया की नम्र रीति थी, जिसके द्वारा इन दयालु प्राटेस्टेन्ट ईसाइयों ने रोमनकेथोलिकों को प्राटेस्टेन्ट किया अर्थात् विलोत की लकडी का एक बडा चौखटा बनाते और उसे भूमि से तीन फुट ऊंचा लगाते थे और कैदी उसके नीचे रक्खा जाता था अर्थात् पेटके बल पृथ्वी पर लि-

*ईसाई लोग तीन खुदा मानते हैं (१) पिता (२) बेटा (३) पवित्रआत्मा (रूहल्कुदस) इस मसले को तस्लीस है. (अनुवाद कर्त्ता)

टाया जाता था. उसकी कलाई व टखने रस्सी से बांधके वह रस्सियां बेलनों से बांध दीजाती थी याने चौखटे के सबसे पिछले दो बेलनों में. इन बेलनों को दो ढिकली अर्थात बछियों या चर्खियों से चलाते थे, जिससे वह बंधुआ नीचे से उठना आरम्भ होता था तब उससे प्रश्न किये जाते. जो उत्तर प्रतिकूल होते थे तो दोषी को और अधिक खींचते थे यहांतक कि बिचारे सताये हुये की हड्डियां जोड़ों से अलग होजाती थी. इस नम्र रीति से प्रोटेस्टेन्ट लोगों ने रोमनकैथलिको को अपने दीन में मिलाया, और यही इंगलेन्ड वाला हाल स्काटलेन्ड व आयरलेन्ड में किया. विस्तार पूर्वक देखो (बेकलका इतिहास जिल्द ३ पृष्ट १४४ से १४६ तक)

और ऐसेही अत्याचार अमेरिका में प्राटेस्टेन्ट लोगों ने "कुईकर" लोगों पर किये.

क्रिश्चियानिटी (ईसाईमत) केवल निर्दयताही नहीं किंतु प्रकाश के सन्मुख अन्धकार पसन्द करती है क्योंकि उसके राज्यका नियम मूर्खता है. उसने विद्या के विरुद्ध जहाद किये और बहुत शताब्दियों तक मनुष्यों को उन्नति करने से रोक रक्खा.

पादरी लोग आरंभ से ऐसे मूर्ख रहे कि सातवी शता-

ब्दी तक भी अति न्यून पादरी थे जो मनुष्यों को पढ़ने योग्य पुस्तकें लिख सकें. दशवीं शताब्दी के आरंभ में विद्या आने लगी और ज्योतिष को तो इसने यंहातक ध्वंस किया कि १९०० वर्ष तक ईसाइयों में कोई ज्योतिषी नहुआ. और जब कॉपरनिकस पुस्तक छोड़ मरा तो ईसाई पादरियों ने उस के शिष्यों का पीछा किया और पकड़ २ के मारे और पुस्तको फुंकवा दिया. देखो (फूटस आफ़ क्रिश्चियानिटी मेडम एनीबीसेन्ट साहिब कृत लंडन की छपी हुई)

हिन्दोस्थानमें ईसाइयों की हिकमत अमलियां (कूटनीति)

"रेवरन्ड एच बावर साहब कहते हैं कि सन् १९९९ ई० में जो सभा मलायल में हुई थी और जिसका सभापति आर्चबिशप मेनजस था, उसमें निम्न लिखित व्यवस्था दीगई.

" सेकसन ९ फ़तवा २—नीच जाति के पुरुषों के संग ईसाइयों को उस समय न छूना चाहिये जब वह उच्च जाति हिन्दुओं के संग हो परन्तु जब वहां ईसाइयों के अतिरिक्त कोई न हो तो कोई हानि नहीं." देखो (पादरी साहब का लेख हिन्दुओं की जात पृष्ट ९३ छपी हुई क्रिश्चियन ट्रेक्ट एण्ड बुक सोसायटी मिशनप्रेस कलकता सन् १८९१ ई०)

रावर्टदि नोबीलीबस साहब सन् १६०६ में हिन्दुस्तान

में आया यह दशा उसके समय में थी जो उसने अपने नेत्रों से देखी, कि पादरियों ने आरम्भ में यह बात प्रसिद्ध की थी कि हम युरोप के ब्राह्मण हैं और जम्बूद्वीप के पश्चिमीय प्रान्त से ५०००, फर्लंग की दूरी से आये हैं कि अपने भाई भारतीय ब्राह्मणों से विद्या पढे और अपनी विद्या उनको सिखावें. जब उन पादरियों ने अपने आपको ब्राह्मण प्रसिद्ध किया तब उन्होंने इस जाति का अनुकरण भी आरम्भ किया. वे पीताम्बर, धोती पहिनते थे जैसा कि भारत के मज़हबी पेशवा व फ़क़िर पहिनते हैं. और जल देनेलगे जबकि वे सर्व साधारण के सन्मुख जातेथे. मस्तक पर चन्दन भी लगाते थे जैसा कि ब्राह्मण लगाते हैं. देखो (ए. बी. डयुबाइस पृष्ट ९ व ६ और पादरी बावर साहब की पुस्तक पृष्ट ५४)

केवल यहींतक संतोष न किया किन्तु इस कार्य के लिये (अर्थात् ब्राह्मणों को अपने में मिलाने के प्रयोजनसे) इन्होंने इंजील की सच्चाइयों और बिचारे विश्वास रखने हारों की स्वतन्त्रता को गडबड करते समय भी कुछ न सोचा. अपने को उच्च श्रेणी के ब्राह्मण प्रसिद्ध करके जोकि पश्चिम से आये हैं उन पादरियोंने हिन्दुओं के असली नाम रखलिये और इस जाति की रीतियों की सब भांति पुष्टि की. ब्राह्मणों की बहुत

श्रेणियां है और इस छलको अधिक प्रभावशाली बनाने के प्रयोजन से नोबीलीबस ने अपने को सब से अधिक बनाके दिखाया और अपने विरोधियों का मुंह बन्द करने के लिये विशेष कर उन पुरुषों के जो उसके ब्राह्मण होने को छल क पट समझते थे उसने एक मैला पार्चमेंट अर्थात् चमडे का काग़ज़ पेश किया जिसमें कि उसने हिन्दोस्तानी शब्दों (अर्थात संस्कृत में) एक जाली दस्तावेज बनाया, इस बात के प्रगट करने को कि रोमा के ब्राह्मण भारतवर्ष के ब्राह्मणों से बहुत पुराने समय के हैं और रोमा के जेसोटस फिर्के के पादरी खास ब्रह्म देवता के वंश में है. पादरी जोवेन्सी एक विद्वान जेसोट इस फिर्के के इतिहास में इससे अधिक बताता है. जब इस मैली दस्तावेज की सत्यतामें कुछ अविश्वासी भारतीय हिन्दुओं ने उस पर संदेह किया तो नोबेलीबस ने मदुरा के ब्राह्मणों की पंचायत के सन्मुख शपथ पूर्वक कहा कि मैं ब्रह्म देवता के वंश से हूं. क्या यह आश्चर्यजनक वार्त्ता नहीं है कि एक प्रतिष्ठित पादरी ने ऐसा झूठ बोला ? और क्या एक अधर्म व छल नहीं है, कि उस ने इस असत्य शपथ व छल को एक पवित्र बुद्धिमान ने कहा ? देखो (जेसोटस इतिहास मुसन्निफे (प्रणीत) जावनसी एशियाटिक रीसार्चेज़

की जिल्द १४ पृष्ट ९७ और रेवरेन्ड बावर की पुस्तक पृष्ट ९४ व ९९)

पादरी राबर्ट दिनोबोलिबिस साहब ने अपना नाम तत्व बोधक स्वामी रक्खा, और पादरी आर, सी, बसची साहबने अपना नाम बेराम मुनी रक्खा. हिंदूलोग उनको व उनके भाईयों को सदैव उनके हिन्दू नामों से जानते थे. (देखो रेवरेन्ड बावर साहब की पुस्तक पृष्ठ ९४ का नोट)

दीन परीवारों के लिये केवल केटीकिस्ट (उपदेशक) ही अलग न थे किन्तु उनके लिये गिर्जे भी प्रथक् थे. जो वे कभी उच्च जातियों के गिर्जे में जाना चाहते थे तो बाहर निकाल दिये जाते व उनको कोड़ों से पीटते थे, जब वे मरते थे तो ईसाई सन्यासी उनके घराने में प्रवेश करने से नाहीं करते थे, और मरने वाला अभागा प्राण निकलते समय बिस्तर से घसीट के मैदान में लाया जाता था. या किसी दूर के गिर्जे में लेजाया जाता था ताकि वह सन्यासी जो उस के ग्रह में नहीं जा सक्ता था अन्तिम मत सम्बधी रीति पूरी करे परन्तु तब भी वह उसे छू नहीं सक्ता था. देखो (कलकत्ता रिव्यू नंबर ३ पृष्ठ ९४ और रेवरन्ड बावर साहेब की पुस्तक पृष्ट ९७)

एक दिन एक सेनाध्यक्ष ने (जो ट्रैन्कोबार से टिचनापली को जा रहा था) एक फरांसीसी पादरी को जो उस बंगले में आया अपने साथ भोजन करने को शील वश मिलाया. उस पादरी ने जब उसको यह ज्ञात हुआ कि यह भोजन एक पारिवार ने बनाया है उस के खाने से नाहीं की और केवल फल खाये और यह बहाना किया कि इस खाना खाने के कारण शूद्र ईसाई मत से घृणा करेंगे. देखो (रेवरन्ड बावर की पुस्तक पृष्ट ९८ और हिंदोस्थान में तालीम (भारत में शिक्षा) टी वीलियम कृत पृष्ठ २०)

——×——

ईसाइयों का इल्मी किताबों से सलूक ॥

हूपर साहब का कथन है कि ईसाई जेहादियों ने ट्रिपोली का पुस्तकालय को जिसमें अनुमान ३० लक्ष पुस्तकें थी जलाया. जब वह पाहिले कमरे में गये उसमें केवल कुरान और अर्बी की वह पुस्तक थी जो अर्बी इम्पास्टर कृत कही जाती थी अतः ये फूंक दी गई.

स्पेन के क्रिश्चियनों ने मेक्सिको में अमेरिका के चित्रित लेखों के बड़े २ ढेर जलादिये. जो ऐसी हानि है कि पूरी नहीं होसक्ती. और कार्डिनल जेतर ने ग्रेनेडा के चौकों में अ-

वी लेखों की ८० हजार पुस्तकें जिनमें उत्तम २ ग्रन्थकारों के बहुतसे अनुवाद थे. फूंक दिये देखो (हिस्ट्री आफ थी कांन फ्लिक्ट बिटवीन सायन्स एण्ड रिलीजियन पृष्ट १०३ व १०४ लण्डन में सन् १८८७ ई० की बीसवींबार छपी हुई)

जब सन १९३० ई० में टण्डेल ने इस पर पुनः विचार करके द्वितीयबार छपवाया और [illegible] आदि के द्वारा उसका प्रचार किया [illegible] ने प्रकाशित करने हारों को [illegible] सहस्त्र चार शत [illegible] दण्ड किया. पुनः [illegible] बादशाह इंगलैन्ड की आज्ञा [illegible] और वे पुस्तकें जिनकी [illegible] बेवकूफ की पुस्त- [illegible] कलीसा के अफसरों को [illegible] फिर सन् १९९४ ई० में नमाज़ [illegible] फिर सन् १९९९ ई० [illegible] कि यह [illegible] किताबें कहीं न बेंची [illegible] पास रक्खे. देखो:—(किताब वाल्टन [illegible] ई० तीसरी जिल्द)

[illegible] डेवनपोर्ट, साहेब कहते हैं कि नाइसा की

सभा में यह बात हुई थी कि सम्राट प्रथम कासस्टेनटाइन ने पदरीगण को वे अधिकार दिये थे कि जिनसे अती व भयोत्पादक फल उत्पन्न हुये थे, संक्षेप इन नीचे लिखी थोडी सी पंक्तियों में हैं:—

रक्त प्रवाह और बर्बादी उन मूर्ख नये ईसाई जेहादों की जो ईसाइयों अनुमान दो सौ वर्ष में तुर्कों पर किये और जिनमें कई लक्ष मनुष्य मारे गये. बध करना उन पुरुषों का जो इस पर विश्वास नहीं रखते थे. मनुष्य का द्वितीय बार ईसाईमत में प्रवेश होना चाहिये. ल्यूथर के अनुयायियों और और रोमनकेथेलिक मत वालों का रायन नदी से लेकर उत्तर के अन्त तक मारा जाना; वह बध जिसकी आज्ञा आठवें हेनरी और उसकी बेटी मलका मेरी ने दी थी. फ्रान्स में सेन्ट बार्थोलूम्यू का बध किया जाना, चालीस वर्ष तक अन्य बहुत रक्त प्रवाह होना. पहिले फ्रान्सिस के समय से चौथे हेनरी के पेरिस में प्रवेश करने तर्क मज़हबी. अदालत की आज्ञा से बध होना जो घृणा के योग्य है, क्योंकि वह अदालत की सम्मति से हुवाथा. इसके अतिरिक्त और असीम अत्याचारों व उन २० वर्ष की बुराइयों की तो कुछ गणनाही नहीं जब कि पोप पोप के सन्मुख और बिशप बिशप के स-

नमुख था, विष खिलाने और बध की घटनाओं का होना, हर तरह के गुन्हा, दोष व बदकारीयें और तेरह चौदह पापों की निर्दय लूट और असभ्य दावे जो एक नैरोया, एक केली-ग्योला से बढ गये थे. अंततः इस भयावने सूचीपत्र के समाप्त होने के लिये एक करोड बीस लाख नई दुनियां (अमेरिका) के निवासियों का सलीब हाथ में लिये बध होना, यह बात माननी चाहिये कि एक ऐसा बुरा और लगभग एक न टूटनेवाला मज़हबी लडाइयों का सिलसिला १४००वर्ष तक ईसाइयों के अतिरिक्त और कही कदापि जारी नहीं रहा, और जिन जातियों पर मूर्तिपूजक होने का ताना मारा जाता है उन में से किसी ने एक बुन्द रक्त भी मज़हबी दलीलों की बुनियाद पर नहीं बहाया. देखो:—(ऐज़ाजुलतनज़ील पृष्ट ४६० व ४६१ से और उनकी किताब एपालोजी छपा लण्डन में सन् १८८२ ई०)

एनसाइक्लोपिडीया ब्रीटानीका में ईसाइयों की एक प्रसिद्ध मज़हबी अदालत का वृत्तान्त यों लिखा है " इस मज़हबी अदालत का नाम इनक्विज़ीशन था. उसका यह कार्य था कि जो लोग ईसाईमत को उत्तम न जानते हो वा उससे बहुत विरोधी होगये हों उनको ढूंढ के पकड़े और दंड दे. यह

भयानक विभाग जो इसलिये स्थापित हुआ था कि मज़हबी मामलों में स्वतन्त्रता से तहक़ीक़ात न होने पाये, और मज़हब एकही रीति पर रहे. प्रथम २ तेरहवीं सदी में यह अदालत स्थापित हुई थी जब कि पोप तीसरे इनविनसेन्ट ने एक कमीशन इस कारण नियत किया था कि नार्बोन के विरोधियों को अपराधी सिद्ध करके दण्डदे.

सन् १२०३ई० में पोपने दो राहेबों को जो एक खानक़ाह से सम्बन्ध रखते थे इसलिये नियत किया था कि वह अल्बजन्स के लोगों के कुफ्र व इल्हाद (अधार्मिकता) के विरुद्ध उपदेश करे और उनको निज कार्य में कृत कार्यता हुई. विशेष कर सूबा टोलूस में तो पोप को यह साहस हुवा कि वह केथोलिक चर्च में इनक्विज़ीटर (इनक्विज़ीशन विभाग का आफ़िसर) नियत करे, जिनको बिशपों से कुछ सम्बन्ध न हो और जो पोप के पवित्र विभाग के वकीलों के भांति कार्य करें; और उन को मुलिहदों (विरोधियों) को दण्ड देने का अधिकार हो. पोप ने यह आशय पूर्ण करने के लिये दूसरे फिलिप महाराजा फ्रान्स और समर्थवानों को भी इस कार्य में सहायता देने को लिखा और उनके उद्योग

पर उत्साह के इनाम की भांति उनको नाना प्रकार के विषयों की आज्ञा दी.

फ्रांस देश में इनक्विज़ीशन सन् १२१८ ई०से अल्बजन्स व उसके रक्षक रनमेंड छठे कौन्ट आफ टोलूस के विरुद्ध आरम्भ हुआ. और सब प्रकार के विरोध को नीचा दिखा के चर्च (गिर्जे) को बहुत शीघ्र ऐसी शक्ति होगई कि वह निज विरोधियों से जो उसके वश में होजाय जैसा चाहै वर्ताव करे. अभागे अल्बजन्सों की संख्या स्थिर करना जो सन् १२०८ ई० के पश्चात् अग्नि में जला २ के मारे गये कुछ सहज कार्य नहीं हैं. और सम्भव नहीं कि उस समय के इतिहास को पढ़ के महान व्यग्रता व दया न उत्पन्न हो; क्योंकि उन वृत्तान्तों से यह जाना जाता है कि किस प्रकार सहास्त्रों जन नाना भांति के घोर कष्ट के साथ एक ऐसे मत की जीत के लिये मारे गये कि जिस में उस की नीव जमाने हारे ने उदारता व दया का उपदेश कियाथा, सन् १२१९ ई० में तीसरे पोप इनविन्सेण्ट ने दसवींवार एक साधारण सभा (जनरल कौंसिल) करके नाना भांति के दण्ड विरोधियों के लिये निर्माण किये जिनका ब्योरा बहुत विस्तृत है. पोप इनविन्सेन्ट के पश्चात् तीसरे पोप होनोरेस ने भी जो

उसका स्थानीय था इस रीति को प्रचलित रक्खा और शनैः२ एक ऐसा समूह उपदेशकों व दण्ड देनेहारो का बन गया जिसने अपना नाम "मुआवनीन व मददगारान अदालत मुक़द्दसा [पवित्र) तहक़ीकात मज़हबी" रक्खा अर्थात् मज़हबी तहक़ीकात कर्नेहारी पाक अदालत के मददगार.

सन् १२२४ ई० में इटली में इनक्विज़ीशन स्थापित होगया और जब इतने अत्याचारों के होने पर भी अल्बजन्स लोगों ने निज विश्वासों को न त्यागा किन्तु उनको मुख्य नगर रूम में भी फैलादिया तो पोप ने क्रोधित होके प्रथम से भी अधिक २ घोर कष्ट देने की आज्ञा दी. जैसे जीवित जाला दिया जाना, या जो विशप लोग दोषियों पर दया प्रगट करना चाहैं तो केवल उसकी जिव्हा काट डालना जिससे यह आगे को खुदा के बारे में कोई बात कुफ्र की न कह सके.

फ्रान्स व इटली के बाद इनक्विज़ीशन स्पेन में स्थापित हुआ और उस प्रदेश में यह वृक्ष पूर्ण प्रकार से फूला फला और महाराजा फर्डिनेन्ड व महाराणी इसाबिल्ला के समय में तो इनक्विज़ीशन बहुत आम (साधारण) होगया, और बड़ी काठिनता से बहुतही समय तक प्रचलित रहके अन्त में सन्

१८०८ में समाप्त हुवा. इस देश में अधिकार ग्रान्ड (बड़ा) इनक्विज़ीटर जनरल का और उसके बाद कौंसिल आफ़ सुप्रिम स्थापन कीगई. जिसकी शाखायें समस्त स्पेन के खंडों में फैली हुई थी जिनका कार्य्य नियम बनाना और उस विभाग की दृढ़ता और कार्य्यवाही का बरोबर जारी रखने पर दृष्टि रक्खे यह था. यहां जोकि शनैः २ यह विभाग कष्ट देने की एक ऐसी कल बनगया कि जिस का नमूना संसार के इतिहास में इस से प्रथम कहीं नहीं दिखाई देता. एक सक्यूलर सेबेल स्थान में छापा जाकर प्रसिद्ध हुआ, जिसकी २८ दफ़ायें थी जिनका बेवरा बहुत लंबा है. जैसे छठी दफ़ा में यह लिखा था कि जो मनुष्य अपने पाप से हाथ उठावे और क्षमा कियाजाय फिर भी उस को जो दंड उसके लिये नियत हुआ था उस के शेष भाग की रीतिपर उस को यह दंड दिया जाय कि वह किसी भांति के उत्तम पेशा करने और सोना चांदी, मोती, रेशम, के और अच्छी मलमल को काम में लाने वंचित रहे. फिर बीसवीं दफ़ा में यह लिखा था कि जो किसी मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् उस की पुस्तकों और जीवन के चाल चलन से यह सिद्धहो कि वह काफ़िर था तो उस पर अधर्म का दोष लगाया जाके उस की लाश क़ब्र में से

निकाल के फेंक दीजाय और उस का सब माल अस्बाब ज़प्त किया जाय उसके वारिसों को कुछ न दियाजाय. फिर बाईसवीं दफ़ा में यह आज्ञा थी कि जो शख़्स काफ़िर ठहराया जाके दंडित हुआहो, और उसकी संतान थोड़ी आयु की होतो उसके जप्त किये हुये माल का एक थोड़ासा भाग दान के नाम से उन को दिया जाय और वह ईसाई मत की शिक्षार्थ किसी योग्य जन को सौंपा जाय.

• जो दोष पवित्र विभाग इनक्विज़ीशन के निकट हस्तक्षेप के योग्य थे, वे यह हैं (१) यहूदियत (२) इस्लाम (३) प्रकृति विरुद्ध दोष और अधिक विवाह करना. संक्षेप यह कि पवित्र न्यायालय (अदालत मुक़द्दसा) ऐसा भयावना बनगया कि माता अपने बच्चों और पुरुष अपने स्त्रियों और मालिक अपने नौकरों को बिना जिव्हा हिलाने के चुपचाप उसको दे देते थे. उसकी शक्ति अधिकतर वह भय था जो उसने लोगों के हृदयों में उत्पन्न कर दिया था और संसार में उसका भय ऐसा साधारण होगया था कि रहिश व बादशाह तक उसके नाम से कांपते थे. जितने मनुष्यों के प्राण इस निर्दयी मज़हबी अदालत ने नष्ट किये उन की संख्या ठीक २ बताना सहज नहीं है जैसा केवल स्पेन

[illegible] के अनुसार ३४०००० तीनलाख चा-[illegible] इस मुकद्दमे से दण्डनीय स्थिर हुये और [illegible] बर्बाद किये गये जिनमें से ३२००० [illegible] जीते जी आग्नि में भस्म किये गये और जो इस [illegible] में वे सब अभागे मिला लिये जावें जो मेक्सिको, लेमा [illegible]मीना, सिसिली, सार्डिनिया औनें, माल्टा, नेपल्स, मैलान और फीलेंडर्स की अदालतों द्वारा जब कि इन देशों में स्पेन का राज्य था दंडित हुये थे. तो यह सिद्ध होगा कि आधे मिलियन अर्थात पांच लाख से अधिक दुर्भाग्य जन इस निर्दय विभाग द्वारा नाना भांति के दंड पा के संसार से विदा हुये. देखोः— (ऐनसाइक्लोपिडीया जिल्द १२ और एजाजुलतनजील पृष्ठ ४७० से ४७९)

यह दशा तो रोमन केथालिक ईसाइयों के अत्याचार की थी. अब प्राटेस्टंटो का वृतान्त जब उनकी वृद्धि हुई सुनिये. हिलप साहेब इतिहास लेखक का कथन है कि इस सभ्यसभा के समूह के कौतुकों से सब से बडा जो पातक हुआ वह यह है कि ईश्वरी जनों पर मत के कारण अत्याचार करते हैं, और यह एसा पातक है कि प्रत्येक धार्मिक पुरुष जितनाही पुस्तकों को अधिक देखता जाता है उतनाही

उसको उन से घृणा उत्पन्न होती जाती है. देखोः—(तारीख आईने सलतनत इंग्लिस्तान जिल्द १ ली बाब २ और एजाजुलतनजील सफा ४७९)

ऐतिहासिक लेकी साहब बहादुर का कथन है कि जब काल्विन ने सर्विटस को केवल इस कारण जीवित जला दिया कि उसका विश्वास तसलीस के बारे में ईसाई विद्वानों के विरुद्धथा तो सब प्राटेस्टन्ट समूहों ने काल्विन के इस कर्म की बडी प्रशन्सा की और म्लांगटन बुलेंजर व फारेल ने इस पाप की प्रशंसा में पत्र लिखे और बेंजानें जो बडा विद्वान था इस कार्य की प्रशंसा में एक बडी पुस्तक बनाई. देखोः— (तारीख बजहन माकूलपसंद जिल्द २ से सफा ४९)

फिर जान डेवनपोर्ट साहब बहादुर का कथन है कि इस समय में ईसाई मत से अधिक कोई वस्तु प्रत्यक्ष में बुरी न थी, ईसाई मत की वे दोनों शाखायें जो एशिया व आफ्रिका में फैलगई थी इन्होंने नाना भांति के उपद्रव और विश्वास स्वीकार कर लिये थे, और सर्वदा परस्पर विवाद व झगडों में फसी रहती थी और एरियन, नेस्टोरियन सैलिब्रेयन, और योटिफोचन, मतवालों की तकरारों से बहुत हैरान थी. इनके पादरियों के बुरे कर्म व अधिकारों की बिक्री और मू-

खेता ने ईसाई मत को बड़ा धब्बा लगाया और ईसाई मत को बहुत कुव्यवहारी कर दिया था. अरब के बनों में मूर्ख और दुष्ट राहेब बहुत थे: जो बेहूदा सोच विचारों में मस्तिष्क को खपा के अपना समय व्यर्थ गंवाते थे और प्रायः उनके समूह के समूह नगरों में आ के नगर निवासियों को अपने झूठ निर्मूल विचार तलवार के जोर से सिखाया और मनवाया करते थे." देखोः— (उन की पुस्तक फार मुहम्मद अपालोजी एन्ड धि कुरान छपी हुई लंडन सन् १८८३ ई० पृष्ट ३७)

फिर उन्ही साहेब का कथन है कि " इन्हों ने अपने विचार में एक नया ओलेम्पस स्थिर कर लिया था और उस में निज मतके वलियों, शहीदों और फ़रिश्तों को बसा हुआ समझते थे जैसे कि मूर्ति पूजक लोग अपने देवताओं से ओलेम्पस को आबाद जानते थे. इस समय ऐसे ईसाई भी थे जो यूसुफ़ की स्त्री मरियम में देवताओं के गुण मानते थे." देखोः— (जान डेवनपोर्ट साहेब की अपालोजी पृष्ट ४ सन् १८८२ ई० की)

पुनःवही सुयोग्य कहता है कि "इन अपावित्र अशोभित घृणायोग्य मिर्जाओं और उनके चित्रों वा त्योहारों वा उत्सवों की रीतियां जिनकी नीव मिस्टर गाड़ फ्रीहगेन्स साहब उन

खराब बातो पर थी जिनको मूर्तिपूजा का मैल कहना चाहिये और जिसमें न केवल एशिया वा आफ्रिका किन्तु यूनान वा रूम व समस्त फिरंगिस्तान के ईसाई हुए थे, और जो मि० हेगेन्स के कथन से मतके अगुआओं किन्तु स्वयं पोप की आज्ञाओं से बर्ती जाती थी. देखोः (अपालोजी और एनाजुलतनजील पृष्ठ १४३) इति ॥

—०—

विज्ञापन ॥

सर्व सज्जन महाशयों को विदत किया जाता है कि श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित वैदिक पुस्तक प्रचारकफण्ड का कार्य्यालय मेरठ सिटी आर्य्यसमाज बुढान दर्वाजा में है जो महाशय उक्त फण्ड के पुस्तक लेना चाहे या उक्त फण्ड को दान देना चाहे तो कृपा करके प्रबन्धकर्ता को द्रव्य भेज के रसीद मंगवा लेवें दूसरे किसी को द्रव्य देने से उक्त फण्ड के प्रबन्ध कर्त्ता उत्तरदाता नहीं है ॥

नित्यकर्म विधिः मूल्य)। जिसमें संध्या, अग्निहोत्र, बलीवैश्विदेव आदि पंचयज्ञ अर्थसहित दिये हैं, जो धर्मानुरागियों ने इसको खरीद के उत्सव मेले आदि समय पर बांटी है और जिसकी डेढ वर्ष में ग्यारह हज़ार प्रति तीन

बार छपके बिक चुकी हैं अब चौथीबार छहजार फिर छपी है जो महाशय चाहे मंगवाले ॥

वैदिक पुस्तकप्रचारक फण्ड से छपीहुई पुस्तकों का सूचीपत्र ॥

पुरुषसुक्त अर्थसाहित)॥ ईसाईमत संसार में कैसे फैला) ॥ महाशंकावली)। नीति शिक्षावली)। रामायणका आल्हा)॥ शुशीलादेवी)। ईसाईमत लीला)। ईसाईमत खंडन १ ला भाग)। दूसराभाग)। नित्यकर्मविधिः)। श्रीरामजी का दर्शन-स्वामीशंकरानन्द के अनमोल उपदेश-पुराण किसने बनाये—कलियुगलीला काशीमहात्म—अमेरिका निवासी मी० डेवीस की आर्यसमाज और स्वामी दयानन्दजी महाराज पर विचार—यह पुस्तकें आधे २ पैसे की है ॥

बाहरकी पुस्तकें—बुद्धिमती ।—) हुक्मदेवी —)॥ प्रमोदय भजनावली =) भजनामृत सरोवर =) संगीतरत्नाकर =) सभाप्रश्न (टाईप का छपा) ।)॥ वैश्यानाटक ।)॥ दानकरन विधि =) बहारेनैरंग प्रथमभाग (देशहित के भजन है) =) दूसरा ।) खेतीविद्या के मुख्य सिद्धान्त ॥=) वेदांतप्रदीप ॥)

डाकव्यय सबों का अलग होगा—ब्रह्मानन्द सरस्वती प्र० वै० पु० प्रचारकफण्ड ठि० आ० स० बुढाना द० मेरठ-सिटी ।

ओ३म् परमात्मने नमः

महाशङ्कावली ॥

अर्थात्

श्रीयुक्त "भारतधर्म्ममहामण्डल" की सेवामें एक जिज्ञासुके थोड़े से प्रश्न

एक आर्य्य जिज्ञासु रचित

पुस्तक सङ्ख्या १४

वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्डके प्रबन्धकर्त्ता श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती द्वारा

प्रकाशित

२४ मार्च सन् १८९७ ई०

प्रथम वार २०००

पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक "वेदप्रकाश" के प्रबन्धसे स्वामियन्त्रालय मेरठमें

मुद्रित हुई ॥

वैदिक पु०प्र०फण्डकी छपी हुई पुस्तकोंका सूचीपत्र ॥

पुरुषसूक्त–अर्थ सहित)॥ नीतिशिक्षावली)। सुशीलादेवी)। रामायणका 'आल्हा')। ईसाईमतखण्डन प्र० भाग)। दूसरा भाग)। ईसाईमतलीला)। नमस्ते)॥ नित्यकर्मविधि)।

स्वामी ब्रह्मानन्दसरस्वती प्रबन्धकर्त्ता "वैदिक-पुस्तकप्रचारकफण्ड" कार्य्यालयके पुस्तकोंका सूचीपत्र ॥

सुश्रुत मूल और भाषा अनुवाद सहित १०) रु० यह प्राचीनकालका वैद्यकशास्त्रमें भारतका गौरव रखने वाला पुस्तक है इसीपरसे सारे भूमण्डलमें वैद्यकका प्रचार हुआ, इस पुस्तककी उत्तमता इतनी है कि अस्त्र शस्त्रके संस्कृतमें नाम तथा चित्र दिये हैं, तथा अन्तमें अंग्रेज़ी कोष भी दिया है, सर्व महाशयोंको एक प्रति, गृहमें रखनी चाहिये॥

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीका चित्र ॥।) यह चित्र पूनाके चित्र यन्त्रालयमें बहुत उत्तम रङ्गोंसे बनवाया गया है, वृक्षके नीचे स्वामीजी महाराज आसन लगाये बैठे हैं तथा इस चित्रके नीचे संक्षेपसे जीवनचरित्र भी दिया है, सर्व महाशयोंको चाहिये कि इस देशहितैषी महात्माका चित्र रख कर घरकी शोभा बढ़ावें।

ओ३म्

भूमिका ॥

यह सब लोग जानते हैं कि थोड़े दिनोंसे एक "भारतधर्म्ममहामण्डल ,, उत्पन्न हुआहै। उसका नाम तो सर्वरीत्या इतना बड़ा रक्खा गया है कि जिससे और कोई बड़ा नाम कल्पित ही नहीं हो सकता है। परन्तु जैसा उसका नाम है वैसा वह कुछ भी काम नहीं करता है। उसको उचित था कि भारतकी सहोन्नति करता परन्तु वह उसके लिये अशक्त है क्योंकि वह पुराणोंकी अयुक्त, असत्य, असम्भव और अश्लील बातोंको धर्म्ममय माननेवाला है। जब तक वह इन बातों पर आर्य्यसमाजियों के सदृश हरताल नहीं लगावे और संसारके सम्मुख खड़ा होकर यह न स्वीकार करे कि "पुराणादिमें जो असत्य, अयुक्त, असम्भव और अश्लील बातें हैं उनको न तो वह मानता है और न उसके अनुयायियोंको मानना चाहिये,, तब तक वह भारतकी न तो कुछ उन्नति कर सक्ता है और न उसका जन्म लेना सफल होगा। इसमें सब जाति के सब विद्वान् एक मत हैं कि धर्म्म और नीतिका एक ही मार्ग होता है और जो बात नीतिसे अयुक्त, असत्य, असम्भव और अश्लील गिनी जाती हैं; वह धर्म्मसे कदापि ठीक नहीं ठहर सकती हैं। किन्तु आश्चर्य है कि महाम-

ण्डलकी सम्मतिमें तौ वे सब असङ्गत बातें परमधर्म्ममय हैं। ऐसी दशामें ऐसे लम्बे चौड़े और बड़े नामधारीका होना न होना बराबर है वह अपने मन्तव्यामन्तव्यको छिपाकर रखता है और यह अत्यावश्यक है कि पबलिक को हरेक सभाके मन्तव्यामन्तव्य भले प्रकार ज्ञात रहें अतएव हम थोड़ेसे प्रश्न इस "महाशङ्कावली,, में पूछते हैं यदि उन्होंने अनुग्रह करके उनके उत्तर यथायोग्य दिये तौ उनका सब हाल पबलिकको ज्ञात हो जायगा और फिर जिसकी इच्छा होगी उसका वह अनुयायी हो सकता है।

उसका "महान्,, नाम है अतएव इस शङ्कावलीका भी "महाशङ्कावली,, नाम धरा गया है। तथा उस को उचित है कि सभ्यताके साथ सब प्रश्नोंका उत्तर देवे क्योंकि इस जिज्ञासुको उसके सिवाय और कोई महामण्डल नहीं दीखता है कि जो इन प्रश्नोंके उत्तर देवे। जो हमारी शङ्का निवारण हो जायगी तो हम उनको अनेक धन्यवाद देंगे और इनमें बहुतसे ऐसे २ भी प्रश्न हैं कि जिनके लिये पबलिक भी बड़ी आभारी होगी। पुनश्च प्रार्थना है कि सीधी तरह प्रश्नोंका पूरा उत्तर दें और इधर उधरकी टालाटूलीका उत्तर न दें। जो ऐसा ही होगा तो फिर पूछनेकी आवश्यकता न होगी। इत्यलम् ॥

भवदीय—एक आर्य्य जिज्ञासु

ओ३म्

महाशङ्कावली ॥

१—"भारतधर्म्ममहामण्डल,, नामक संज्ञाका प्रथम भारत शब्द क्या देशवाचक है ? यदि ऐसा है तो आज कल उस देशका क्या नाम है ? भारतकी सीमा क्या थी और अब क्या है ? यह नाम कैसे पड़ा ? वह कैसे पड़ा अर्थात् इस नामको पड़े वर्तमान संवत्में कितना समय हुआ है ? इस नामके पड़नेके पहिले उस देशका क्या नाम था ? जिस देशका वह वाचक है उसका क्या वह सनातन नाम है ? यदि वह सनातन है तौ वेदोंकी मूल संहिता और मनुस्मृतिमें उसका प्रमाण बतलाना चाहिये ? और जो आधुनिक है तौ सनातन नाम किस दोषसे त्याग किया गया है ? वह दोष उसमें किसने लगा कर त्याग किया और कराया है ? क्या सनातन नामका त्याग कर आधुनिकका ग्रहण करना उक्त महामण्डलके मतमें यह धर्म्मकी बात है ? भारतसे जो अभिप्राय माना गया है उसमें क्या कुछ छूट भी मानी गई है अर्थात् अमुक देश भारतके अभिप्राय में नहीं है ? यदि मानी गई है तौ उस छूटको विदित करें ?

२—धर्म्म शब्दसे क्या इस संज्ञामें किसी मज़हबका अर्थ

माना गया है अथवा भट्टकी कारिकाके अनुसार वह यहां द्रव्य क्रिया और गुणका वाचक है ? यदि वह किसी मज़हब का वाचक है तो आज कल जो उनके अनेक नाम प्रसिद्ध हैं उनमें से कोई बतलाओ कि हरकोई झट समझले, क्या वह किसी एक धर्म्मका वाचक अथवा सांकेतिक है अथवा अनेकका ? जो वह अनेक मज़हबोंका वाचक है तो उनके नाम गिन कर बताओ ? जब अनेक का वाचक है तो वह यहां एक वचनमें क्यों प्रयोग किया गया है ? क्या एक वचनके शब्दका बहु वचनका अर्थ हो सकता है ? उक्त संज्ञाका वाक्यखण्ड क्या संस्कृत है अथवा हिन्दी ? इस जिस धर्म्मको महासण्डल मानता है उसमें कोई अधर्म्म भी माने गये हैं और जो हैं तो उन के नाम गिनाने चाहिये ? उन अधर्म्मोंकी शुद्धी प्रायश्चित्तादिके कर लेने पर हो जाती है कि नहीं ?। जो हो जाती है तो फिर क्या वे अधर्म्म केवल प्रायश्चित्तोंके करने करानेके ही लिये माने गये हैं ?। क्या कोई ऐसा भी अधर्म्म है कि जिसके निवारणका उपाय महासण्डल के माननीयग्रन्थोंमें न लिखा हो, यदि ऐसा कोई हो तो कृपा करके उस बताना चाहिये ?। क्या धर्म्म और

अधर्म्म काल करता और कराता है अथवा अस्मदादि ?। जो उनके कर्त्ता अस्मदादि हैं तो महासण्डलके माननीय धर्म्म पुस्तकोंमें ऐसा क्यों लिखा है—

अयं तु युगधर्म्मो हि वर्त्तते कस्य दूषणम् ।
अतस्तु पुंडरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ॥
भा० म० अ० १ । ७५ ॥

३—महासण्डल शब्दकी व्युत्पत्ति और प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थोंमें उसका इसी अर्थमें प्रयोग होना सिद्ध करना चाहिये ?। क्या महाराजा, महापात्र और महाब्राह्मणादि शब्द राजा, पात्र और ब्राह्मणकी अपेक्षासे नहीं बने हैं ?। जो ऐसा ही है तो महासण्डल के लिये भी कोई "छोटा मण्डल" वा "मण्डल" नामक ऐसी ही अथवा उसके विरुद्ध सभाकी अपेक्षा बतलानी चाहिये ?। जब तक ऐसी कोई सभाका विद्यमान होना सिद्ध न हो तो वह क्योंकर महासण्डल हो सकता है ?। रासमण्डल, शृङ्गारमण्डल, रसमण्डली और रासमण्डली आदिकी भी क्या वैसी ही व्यवस्था होगी कि जो महासण्डल शब्दकी सिद्धिके लिये व्याकरणादिसे उत्तर देने वाले महाशय करेंगे ?

क्या वह सनातन इसी अर्थमें प्रयोग होता हुआ शब्द है ?। जो ऐसा है तो "महामण्डल" का इसी अर्थमें प्रयोग वेदोंमें दिखाना चाहिये ?। क्या महामण्डल नाम की विद्यमानता और उसकी अपेक्षासे भारतकी अन्य सब सभा, समाज, सोसाइटियें और कौनफ़रेंस आदि गौण-भावमें नहीं समझी गईं और मानी जा सकती हैं ?। क्या अन्य सब जिनकी अपेक्षा महामण्डल शब्दसे दियी जा सकती है वह अपनेके गौण और महामण्डलको महामण्डल समझते हैं ?। क्या अपने माने कोई बड़ा होता है अथवा दूसरोंके माननेसे ?। जो अपने मुंह मियां मिट्ठू बनें उसको संसारमें क्या कहते हैं ?। क्या निर्धनके लिये धनपति नाम ठीक है ?। क्या बड़े, भले, विद्वान्, ज्ञानवान्, बुद्धिमान् और सज्जन पुरुष अपने आपको महा करके प्रसिद्ध किया करते हैं ?। और जो ऐसा करते हैं उनको संसार क्या कहता है ?।

४—क्या महामण्डल एक स्वरूप वाला है अथवा अनेकरूप रूपाय है ?। जो एक रूप वाला है तो उसकी अनेक शाखा अनेक नाम वाली क्यों हैं * ?।

---

* हिन्दुओंमें जितने अर्थात् अनेक मज़हब आज कल

५—उसके नियम और उपनियम क्या २ हैं ?। यदि कुछ नहीं हैं तो विना उनके उसका नाम क्योंकर पड़ गया ?। क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि कोई विना नियम और उपनियमके कुछ भी नहीं होता है ?। क्या वह चारों सम्प्रदाय और अनेक अन्य मत वालोंका आम मुख़तार है ?। जो ऐसा है तो मुख़तारनामें को छाप कर प्रकाश करें और मवक्किलोंके नाम प्रख्यात करें ?। उस के अधिकारिपुरुष अर्थात् १ महासभापतिजी ! २ महोप सभापति जी ! ३ महामन्त्रीजी ! ४ महोपमन्त्रीजी ! ५ महाकोषाध्यक्षजी ! और महोपदेशक जी और महाम० सदजी कौन २ हैं। क्योंकि जो किसीको महामण्डल पर नालिश करनी हो तो वह इसके उत्तरको जान कर उन महासभापति आदि पर कर सके ?। क्या महामण्डल

प्रचलित हो रहे हैं वह क्या सब सत्य हैं ?। जो उनमेंसे किसीको झूठे बताओ तो उन सबके नाम और मिथ्या होनेके कारण विदित करो ?। प्रत्येक सम्प्रदायके ग्रन्थों में एक दूसरेकी निन्दा क्यों लिखी है और क्या वह सत्य है ?। जो सत्य कहो तो क्या उनमें लिखे अनुसार उनके मानने वाले फल पावेंगे और पतित ठहरेंगे ?।

रजिस्टर्ड है वा अनूरजिस्टर्ड ?। यदि अनूरजिस्टर्ड है तो वह अपने अधिकारियों पर उसका धन आदि ग़बन कर जाने पर नालिश कर सक्ता है ?। जो कर सक्ता है तो किस क़ानूनसे ?। उसके महामन्त्री आदि जो धन अपने अनन्य अनुयायियोंसे महामण्डलके नामसे अब तक लाये हैं अथवा लाते हैं वा लावेंगे उसका हिसाब किताब क्यों नहीं प्रकाश किया जाता है और देने वालोंको रसीद क्यों नहीं दियी गई हैं ?। क्या वह महामन्त्री जो आदिका ही सर्वस्व कर दिया गया है ?।

५–उसके अनेक भाषाज्ञ महोपदेशकोंको आज तक इनाममें जो पुरानी रज़ाइयें कमलबन्दियें, दुशाले और प्रसादके दोनें और रुपिये दिये गये हैं वह नामवार प्रकाश करें कि पब्लिक दाता और पात्रकी योग्यताका विचार कर सुख्याति कर सके ? क्या किसीको गाली देना वा दिलवाना आपके धर्ममें परमधर्म है ?।

आपके धर्ममें ईश्वर संख्यामें एक माना गया है अथवा अनेक ? यदि अनेक तो तेंतीस करोड़ देवताओं, उनकी स्त्रियों और लड़केलड़कियोंके नाम गिन कर बतलाइये क्योंकि जो जिनको मानता है वह उनको बताने

का आचारी होता है ? उन तेंतीस करोड़ में क्या कोई भी ऐसा है कि जिसने उन सब बातोंमें से कोई एक भी बात नहीं करी हो कि जो संसारमें बहुत ही बुरी समझी जाती हैं ?। यदि कोई ऐसा हो तो उसका नाम बतलावें ?। जो उन्होंने भला बुरा किया है उसका अनुकरण उनके मानने वालोंको करना चाहिये कि नहीं ?। यदि नहीं तो क्यों नहीं ? क्या पुरुषाओंकी रीति पर नहीं चलना चाहिये ?।

८–क्या आपके माननीय ग्रन्थोंमें लिखी सब बातें सत्य, युक्त और सम्भव हैं ? आप उनको बाअसल मानते हैं अथवा बिला असलके ?। क्या सम्प्रदायोंके मूल आचार्य्योंका ऐसा ही चाल चलन और व्यवहार था कि जैसा आप और हम आज देख रहे हैं ?। क्या वह अच्छा और आपके धर्म्मानुसार है ? क्या ब्राकटाचार्य्यकृत ग्रन्थों को आप प्रमाणरूप मानते हैं? यदि नहीं तो क्यों नहीं ? क्या वे असत्य हैं ?। आपके माननीय ग्रन्थोंमें जो महीधर और गिरिधरभाष्यमें अश्वमेधकी विधि लिखी है, ब्रह्माजी और उनकी कन्याकी कथा, कार्त्तिकेयकी उत्पत्ति, लोलुपोंका ब्रह्माजीके पीछे दौड़ना और अन्तको ब्रह्मा

जीका अपना शरीर त्याग देना, कामव्रत और वेश्याओं की उत्पत्ति तथा उद्धारकी कथा, नारद जी और अर्जुनका स्त्री बन श्रीकृष्णजीसे विहार कराना इत्यादि इन सब और वैसी ही अन्य कथाओंको आप सत्य मानते हैं अथवा नहीं ? यदि नहीं तो क्यों नहीं ?।

९–श्रीभागवतजीमें लिखा भूगोल और खगोल क्या आप सत्य मानते हैं ?। यदि वह और अन्य पुराणोंमें लिखा सही है तो क्या ज्योतिष शास्त्रमें लिखा और सब कुछ जो पाठशालाओंमें पढ़ाया जाता है वह असत्य है ?।

१०–जिस धर्म्मका महामण्डल है वह किस युगका धर्म्म है ?। इस कलिमें उसीका धर्म्म मानना चाहिये अथवा अन्य का ? जो अन्यका कहो तो अन्यमें क्या कलिका मानना चाहिये ?। क्या इस कलिकालमें जप, तप, योग, ध्यान, समाधि, तीर्थ, पण्डित और वैष्णवता आदिमें सार रहा है वा नहीं ?। जो नहीं रहा है तो फिर तीर्थादिके करनेसे क्योंकर फल हो सक्ता है ? और जो सबमें सार है तो तुम्हारे माननीय ग्रन्थोंमें सार न रहना क्यों लिखा है ?।

११–जितने तुम्हारे माननीय ग्रन्थ हैं उनके नाम, बनाने वालेका नाम और रचना होनेका संवत् प्रकाश करो। वे अब जैसे के तैसे ही हैं अथवा उनमें कुछ क्षेपक भी है। जो है तो कहां और क्या २ है ?। महामण्डलके अनन्य अनुयायी जो द्विज (ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य) होकर जैनमन्दिरमें जाते आते हैं सो क्या तुम्हारी संज्ञा में के अधर्म्म शब्द करके वह धर्म्म गिना गया है ?। जो वह धर्म्म है तो तुम्हारे माननीय बृहन्नारदीय पुराणमें यह क्यों लिखा है:–

" जो द्विज जैनमन्दिरमें चला जावे तो तिसकी सैकड़ों प्रायश्चित्तोंसे भी शुद्धि नहीं होती है ॥६१॥ हे राजन्! जैनी पाखण्डी अरु वेदनिन्दक हैं तिससे वेदभक्त द्विज तिनका दर्शन नहीं करें ॥६२॥ जो द्विज जाने वा न जाने से जैनमन्दिरमें चला जावे तो जान कर जाने वाले का प्रायश्चित्त नहीं है यह शास्त्रोंका निर्णय है ॥ ६३ ॥ हे राजन्! बहुत पाप होनेसे इनको करोड़ कल्प तक नरक होता है अरु ये पाखण्डी हैं इससे इनका प्रायश्चित्त नहीं ॥६४॥ ,, (देखो बृहन्नारदीय पुरा० अ० १४) जो यह अधर्म्म है तो अपने अनन्योंको क्यों नहीं उपदेश करके

रोकते हैं ? और जो यह लेख अन्यथा है तो उस पर हरताल क्यों नहीं लगाई जाती है क्योंकि जैनी कोई अन्य नहीं हैं अपने स्वदेशीय प्रिय बन्धु ही हैं ? ।

१२—आपके भारतकी वर्त्तमान दशा कैसी है अर्थात् क्या वह उन्नति पर है अथवा अवनति पर ? । जो अवनति पर होना कहो तो क्या उसकी वह उन्नति, कि जो बुद्धिमान् लोग चाहते हैं, आपके चौका अधिक लगवाने और छूआ करने, स्त्रियोंको सुशिक्षिता न करने, जातिभेदको न उठाने, समुद्रयात्रा न करने, तिलक छापे लगाने, श्राद्धमें भोजन करने, प्रतिग्रह लेने, बालविवाह करने और विधवाविवाह न करने देने आदि व्यवहारोंको स्थिर रखनेसे हो सकती है अथवा उनको मेटनेसे ? ।

१३—श्रीकृष्णचन्द्रजीकी सब राणियों और उनके लड़के लड़कियोंके नाम विदित करो क्योंकि ऐसे प्रश्नोंका उत्तर महामण्डलके सिवाय और तो कोई नहीं दे सकता है ? ।

१४—वैसे ही अवतारोंके जन्म मरण और विद्यमान रहनेका ठीक २ समय अर्थात् संवत् मिती और वारादि प्रकाश करो ? ।

१५—क्या ईश्वर चेतन और सर्वज्ञ नहीं है ? यदि है तो क्या वह जड़ और अल्पज्ञ हो सकता है ? । क्या वह क्लेश, कर्मविपाक और वासना सहता है ? । क्या वह किसी संसारी नीच तककें मारनेसे मर सकता है ? । क्या उसकी व्यापकता सर्वत्र एक सी रहती है अथवा कहीं और किसी प्रकारसे एकदेशी अधिक हो जाती है और कहीं न्यून हो जाती है ? । क्या महामण्डलके वर्त्तमान आचारी ईश्वर अथवा उसके अवतार हैं और उक्त मण्डलके सभासद् उनको ईश्वर मानते हैं अथवा मनुष्यकोटिमें गिनते हैं ? । क्या चारों सम्प्रदायके आचारी आपसमें एक दूसरेके हाथका भोजन कर सक्ते हैं ? । और उन प्रत्येकके इष्टदेवका पूजन वा स्पर्शादि एक दूसरे कर सकते हैं और ऐसा करनेसे भ्रष्टता तो नहीं गिनी जाती है ? । जो वह मानी जाती है तो क्या ईश्वरमें भी भेदाभेद और संसारियोंके जैसा राग द्वेषादि है ? ।

चिकित्सासिन्धु मू० २) रु० इस पुस्तकमें रोगोंकी परीक्षा तथा उसका उपाय चार तरहसे बताया है अर्थात् होमियोपैथिक, यूनानी, वैद्यक तथा ऐलोपैथिक (डाक्टरीसे) जैसा मनमें आवे वैसा इलाज करलो ॥

सत्यार्थप्रकाश २) रु० ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका २॥) रु० संस्कारविधि १।) निरुक्त १) आर्य्याभिविनय ।) पञ्चमहायज्ञविधि ≡)॥ संस्कृतवाक्यप्रबोध ≡) व्यवहारभानु ≡) वर्णोच्चारणशिक्षा -) भ्रान्तिनिवारण -)। वेदान्तिध्वान्तनिवारण -) सत्यासत्यविचार (मेलाचांदापुर) -) शास्त्रार्थकाशी -) आर्योद्देश्यरत्नमाला -) हवनमन्त्र)॥ अबलाब्रह्मचर्य्यचन्द्रोदय ≡) अबलाविनय ≡)॥ संस्कृतकी प्रथम पुस्तक)॥। द्वितीय -)। तृतीय =)॥। (विना गुरुके संस्कृत सिखाते हैं) सिद्धान्तलावणी -) अप्रतिमालिङ्गपण ≡) धर्मविषयकव्याख्यान =) लण्डनयात्रा ।=) बुद्धिमती ।-) हुक्मदेवी -)॥ स्त्रियों पर सामाजिक अन्याय =) प्रिन्स बिस्मार्कका जीवनचरित्र =) बहारनयरङ्ग प्र० भाग =) दूसरा ।) वेदान्तप्रदीप ॥) वल्लभकुलचरित्रदर्पण ।) भर्तृहरिशतक ।=)॥ प्रेमोदयभजनावली ≡)।

आपका हितैषी ब्रह्मानन्द सरस्वती

आर्य्यसमाज मेरठ

ओ३म् तत्सत् परमात्मने नमः

महाशङ्कावली

दूसरा भाग

अर्थात्

श्रीयुक्त "भारतधर्म्म महामण्डल" की सेवामें

एक जिज्ञासु के थोड़े से और भी प्रश्न

एक आर्य्य जिज्ञासु रचित

तथा

धर्म्मसभा के उपदेशक आलाराम के

करांची के अभियोग का फ़ैसले का भावार्थ

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित वैदिक पुस्तक प्रचारक फण्ड द्वारा प्रकाशित

आर्य्य संवत् १९७२९८९९९

सेपटेम्बर सन् १८९७ ई०

प्रथम बार २०००। मूल्य ।)

लाइटनिङ्ग प्रेस मछर मेरठ में मुद्रित हुई

ओ३म्

भूमिका

इस महा शङ्कावली का प्रथम भाग आगे प्रकाश होचुका है किन्तु उसका उत्तर अभी तक प्रकाश नहीं हुआ है। निदान जब वह प्रकाश होगा तब उस पर विचार किया जावेगा। इतने यह दूसरा भाग भी अर्पण किया जाता है। यह सबको भले प्रकार ज्ञात रहे कि इन महाशङ्कावलियों के जो उत्तर श्रीयुक्त "भारतधर्म्ममहामण्डल" के अधिकारियों में से कोई देंगे वह प्रामाणिक समझे जावेंगे अन्य राह चलते हुए का उत्तर प्रामाणिक नहीं समझा जावेगा क्योंकि जिससे जो पूछें उसको ही उत्तर देना उचित होता है। इन दोनों में उक्त महामण्डल से ही प्रश्न किये गये हैं अतएव उक्त महामण्डल के आज्ञानुसार विधिवत् श्रीयुत मन्त्रीजी उत्तर देसकते हैं। दोनों के उत्तर आने पर हम उनको सब संप्रदायों के ग्रन्थोंसे मिलान करके जो फल निकलेगा उसको सर्व साधारणों के ज्ञातार्थ प्रकाश करेंगे इत्यलम्

भवदीय

एक आर्य्य जिज्ञासु

महाशङ्कावली का दूसरा भाग

॥"श्रीमान् स्वामी आलारामजी सागर"॥

भारत धर्म्ममहामण्डल की महानोटिसों में जो "श्रीमान् स्वामी अला वा आलारामजी सागर" करके लिखा वा छपा रहता है इसलिये पूंछने में आता है कि क्या अमुक महाशय 'श्री' शब्दके जितने अर्थ हैं उन सब करके परम विभूषित हैं? क्या वे स्वामी शब्द के लक्षण से भी यथावत् अलंकृत हैं? यहां स्वामी शब्द का क्या अर्थ ग्रहण किया गया है? वे किसके 'श्रीमान् स्वामी' हैं? क्या वे जो उनको इस पदवी से लिखते पढ़ते हैं उनके वे श्रीमान् स्वामी नहीं हैं? जो उनको ऐसा नहीं मानते हैं उनके भी क्या वे स्वामी होने का दावा रखते हैं? भारतधर्म्ममहामण्डल में जितनी संप्रदाय शामिल हैं उनके आचार्य्यों के भी क्या वे 'श्रीमान् स्वामी' हैं अथवा नहीं? क्योंकि उक्त संप्रदाय के आचार्य्य लोग उनको अपने साम्प्रदायिक पत्रव्यवहार में इस 'श्रीमान् स्वामी' की पदवी से लिख सक्ते हैं? यदि लिख सकते हैं तो कौन कौन लिख सकते हैं? क्या किसी सभा के मन्त्री का लेख

कि जिसके नीचे मन्त्रीपद से हस्ताक्षर किये गये हैं उक्त सभा के सब सभासद् और सभापति आदि अधिकारी पुरुषों की ओर से नहीं समझा जाता है ? जो समझा जाता है तो फिर अमुक महाशय भारतधर्म महामण्डल मात्र के 'श्रीमान् स्वामी' क्यों नहीं हो सक्ते हैं और फिर उसके अन्तरगत अनेक संप्रदाय के आचार्य्य लोग उनको अपना 'श्रीमान् स्वामी' करके क्यों नहीं मानते हैं ? इसपर भी जो कोई न माने उनको क्या उक्त महामण्डल हुकमन् मना सक्ता है ? जबकि अमुक महाशय उक्त महामण्डल के श्रीमान् स्वामी हैं तो फिर उक्त महामण्डल उनका क्या सेवक नहीं कहा जा सक्ता है ? किसी नोटिस में महाराज शब्द भी प्रयोग हुआ है सो वे किन राजाओं में वा किन के महाराज है ? क्या अला और आला शब्द एकार्थ वाचक है ? उनकी व्युत्पत्ति करके सार्थकता सिद्ध करें ? क्या यह संज्ञा आपके प्रामाणिक शास्त्रों में कहीं प्रयोग हुई है ? क्या ऐसा नाम परम प्रसिद्ध चार संप्रदायों के विरक्तों में से किसी का आगे होना पाया जाता है ? यदि है तो बताना चाहिये । अलाराम अथवा आलाराम में कौनसा समास है और उसका क्या अर्थ

होता है ? यहां सागर शब्द किस अर्थ का वाचक है ? क्या उसका यहां अकेला ही प्रयोग होना ठीक है ? जो यह ठीक है तो बंगाली विद्वान् लोग जो "विद्या सागर" आदि जैसे दूसरे शब्द के साथ उसे प्रयोग करते हैं वह अन्यथा है ? यदि यह दोनों प्रकार ठीक है तो दोनों रूपों में से विद्वानों को विशेष कर कौनसा रूप अधिक प्रसन्न आता है ? क्या उक्त महाशय संन्यासी हैं ? जो हैं तो किस संप्रदाय के हैं ? क्या उस संप्रदाय के संन्यासियों के नामके पीछे सागर अ... टङ्क लगाते हैं ? जो ऐसा है तो अन्य नाम भी ... बतलावें ? यह महाशय किस जाति के हैं ? कहा ... निवासी और पूर्व में क्या पेशा करते थे ? क्या उनके कुटु... में अब कोई है अथवा नहीं ? जो है तो उनके नाम ... ठाम और पता ठिकाना बतावें ? उन्हो नें कब और किस से और क्यों और किस विधि से संन्यास ग्रहण किया है ? क्या कलियुग में संन्यास का लेना आप के माननीय ग्रन्थों में जायज़ रक्खा है ? जो ऐसा है तो फिर उनमें ही उसको नाजायज़ भी क्यों माना है ? क्या अन्य युगों में भी वह ऐसे ही जायज़ और ना जायज़ दोनों रूपसे ही था ? यदि उक्त महाशय को

आप द्विज संज्ञक नहीं बतलावें तो फिर क्या वे आप के माननीय शास्त्रों के अनुसार वेद के अधिकारी हैं अथवा नहीं? यदि नहीं हैं तो आप अनेक सांप्रदायिक धर्म्ममूर्ति उनके मुखसे वेदवचन क्यों सुनते हैं? क्या उनसे आपको धर्म्म का उपदेश ग्रहण करना चाहिये? मथुराजी में जितने अच्छे २ विद्वान् हैं उन का आप इन महाशय जितना मान क्यों नहीं करते हैं और उनके नाम के साथ श्रीमानादि की पदवी क्यों नहीं लिखते हैं? क्या यह महाशय उन सब से अधिक विद्वान् और पूजनीय हैं? क्या इन महाशय की विद्वत्ता के विषय में आप मथुराजी के भट्टजी श्री पुरुषोत्तमजी, पं० श्री ललिता प्रसादजी पं० श्री हरेकृष्णजी, पं० श्री युगल किशोरजी, पं० श्री मुकन्द-देवजी और पं० श्री बालकृष्ण जी वैद्य आदि महाशयों का एक ऐसा सारटीफिकट पेश कर सक्ते हैं कि अमुक सागर महाशय जी चारों वेद, चारों उपवेद, छहों अङ्ग, और छहों उपाङ्ग, ब्राह्मण, उपनिषद् और अठारह पुराणादि में ऐसे पारंगत हैं कि उक्त मथुरा के विद्वानों के आगे संस्कृत भाषा में धारा प्रवाह भाषण करके उनको संतुष्ट और आनन्दित कर सक्ते हैं? यदि

ऐसे नहीं हैं तो आप इनका उनसे अधिक मान करके मथुरा नगर की अप्रतिष्ठा क्यों करते हैं? क्या आप को ऐसा करना योग्य है? महामण्डल के मन्त्री जी आदिने जो पत्र सागरजी के नाम लिखे हैं और जिन के द्वारा उनको यहां बुलाये हैं उनकी नक़लें इस के उत्तर के साथ प्रकाश करें कि जिससे उनमें लिखे समाचार सब को ज्ञात होजाय? सागरजी ने भी इन पत्रों का ज़िकर अपने व्याख्यानों में किया था कि इतने और ऐसे २ पत्र मेरे पास आने पर मैं आयाहूं उनको भी वे कृपा करके छापकर प्रकाश करदें तो बड़ा उपकार होगा। उक्त सागरजी जीवन्मुक्त हैं अथवा नहीं? यदि हैं तो इसका क्या सुबूत महामण्डल दे-सक्ताहै? और जो नहीं हैं तो उनके उपदेश से क्यों कर कोई मुक्त होसकता है? उनके उपदेश उक्त महा-मण्डल मुक्त होनेकी इच्छा से सुनता है अथवा किस अभिप्राय से श्रवण करता है? क्या वे भारतधर्म महामण्डल के उपदेशक हैं? जो दो जजमैन्ट करांची के मेजिष्ट्रेट और जज्ज सदर कोर्ट की पढने में आई हैं और उनमें सरकार मुद्दई और आलाराम गोविन्दास मुद्दाइले को छै महिने की सज़ा तजवीज हुई थी क्या

वह आपके यही "श्रीमान् स्वामी आलारामजी सागर" महाशय हैं अथवा वे कोई अन्य थे और यह अन्य हैं? उक्त महाशय ने अपने व्याख्यान में गवर्नमेन्ट से एक सार्टीफ़िकट मिलने का जिक्र किया था उसकी नक़ल भी इसके उत्तर के साथ छाप कर प्रकाश करें कि जिससे सब को विदित होजाय कि अमुक महाशय ने क्या २ कारगुज़ारियें करी हैं? आपके श्रीमान् स्वामी जी के शरीर में का जीव ब्रह्मके साथ एकता को प्राप्त होगया है अथवा नहीं? जो नहीं हुआ है तो कब होगा? जो हालमें जीव ब्रह्मकी एकता नहीं हुई है तो उनके संन्यास लेने और आपके उनको "श्रीमान् स्वामी" मानने से क्या अर्थ सिद्ध हुआ है? वे मनुष्य कोटिमें हैं अपना सिद्ध कोटिमें हैं? आप उनको अन्य संन्यासियों की तरह अपना पूजनीय मानते हैं अथवा नहीं? उनमें पूज्य मानने जैसी क्या बात है सो विदित करें? ज्येष्ठ कृ० ३ बुधवार सं० १९५४ की नोटिस में "सनातन हिन्दू धर्म मण्डन" का विषय लिखा है उस के चारों शब्दों में मुख्य "हिन्दू धर्म्म" है अतएव "हिन्दू धर्म्म" ऐसा पाठ आवे वैसा उसके लक्षण का वचन वेदादि में बतलाना चाहिये? जो ऐसा लक्षण

ही नहीं मिलेगा तो प्रतिज्ञा हानि हुई कि नहीं? और व्याख्यान का बिसमिल्लाह ही ग़लत हुआ कि नहीं? क्या धर्म और सनातन धर्म और हिन्दू धर्म और सनातन हिन्दू धर्म के लक्षण जुदे २ शास्त्रोंमें कहे हैं अथवा सबका एक ही लक्षण है? क्या हिन्दुस्थान में रहने वाले को हिन्दू कहते हैं अथवा मज़हब के कारण से यह नाम पड़ा है? जो देश निवासी होने से है तो मुसलमानादि अपने को इस नामसे क्यों नहीं पुकारते हैं? और जो वे अपने को हिन्दू कहते हैं तो फिर वे हिन्दू धर्म से क्यों घृणा करते हैं? क्या यह शब्द संस्कृत भाषा का है? क्या "सनातन हिन्दू धर्म्म मण्डन" से यह असिद्ध हैं कि हिन्दू शब्द सनातन नहीं है? जो वह सनातन है तो "हिन्दू धर्म" करके उसका लक्षण वेदादि सत्य शास्त्रों में क्यों नहीं मिलता है? जो वह आधुनिक है तो उसके साथ का 'सनातन' विशेषण असंगत क्यों नहीं है? क्या कोई आधुनिक हिन्दू धर्मभी है? जो है तो उसका लक्षण वेदादि सत्यशास्त्रों में बतलावें? वह एक है अथवा अनेक हैं? जो अनेक हैं तो उन सबके नाम लिखकर प्रकाश करें कि जिससे हर कोई जान ले कि अमुक तो सनातन और अमुक २

आधुनिक हैं ? आप के "श्रीमान् स्वामी जी" आर्य्यसमाजस्थ रहे हैं अथवा नहीं ? जो रहे हैं तो फिर उसको क्यों त्याग किया ? जिसने उसको त्याग कर दिया वह क्या आप को त्याग नहीं कर देगा ? गोरक्षणी सभा में वे कब तक रहे और उसे क्यों त्याग किया ? वैसे ही नेशनैल कोंग्रेस आदि जितनी सभाओं में वे रहे और उन को त्याग किया इसका सविस्तर वृत्तान्त लिखें ? वे आप को उक्त कोंग्रेस और गोरक्षणी के विषय में क्या २ उपदेश करते हैं और उन को कैसी बतलाते हैं ? वे मांसाहारी हैं अथवा फलाहारी ? यदि अब फलाहारी हैं तो क्या आगे मांसाहारी थे अथवा ठेठसे फलाहारी ही हैं ? क्या व आप के शास्त्रों के अनुसार ठीक २ संन्यासी के क़ायदे से रहते हैं ? जो वे नहीं रहते हैं तो फिर क्या आप उनको संन्यासी कह सक्ते हैं ? क्या आपके "श्रीमान् स्वामी जी" की और अन्य चारों संप्रदायों के आचार्य्यों की एकसी प्रतिष्ठा है ? क्या उनके साथ इनका भोजनादि का व्यवहार है ? और उनकी गद्दी पर बराबर बैठ सक्ते हैं ? क्या उनके श्री ठाकुरजी को यह स्पर्श कर सक्ते हैं ? जो ऐसा नहीं

कर सकते हैं तो फिर महामण्डल के "श्रीमान् स्वामी" उनसे गौण समझे जासक्ते हैं ? फिर गौण महामण्डल मुख्य करके क्यों मानता हैं ? क्या मुख्य के सन्मुख गौण की अत्यन्त प्रतिष्ठा करना मुख्य का अपमान करना नहीं है ? आपने अपने "श्रीमान् स्वामी जी" की क्या सेवा और भेट करी वह विदित करें कि सब को ज्ञात हो ? क्या वे नारायण स्वरूप नहीं हैं और आप उनसे संन्यासियों के क़ायदे के अनुसार नमो नारायण नहीं करते हैं ? इति ॥

अंग्रेज़ी का भावार्थ

न्यायालयमें श्रीमान् सिटी मैजिस्ट्रेट एफ,सी, करांची के क्राउन (बनाम)

आलाराम गोविन्द दास

इस अभियोगमें आलाराम गोविन्ददास इण्डियन पिनल कोड़ की धारा२९८के अनुसार दोषी ठहराया गयाहै। आलाराम ने नानक शाह के अनुयायियोंके

धर्म्मभाव पर आघात करने के लिये जान बूझ कर नानक शाहकी एक बुरी तसवीर बना कर धर्म्मदास नामी नानकशाही साधु के दृष्टगोचर कराया था। इस अभियोग में नानकशाही साधु हरभजन दास फ़र्यादी है परन्तु धर्म्मदास जिनकी साक्षी इस अभियोग में लीगई है भी इस अभियोग में फ़र्यादी बननेकी प्रार्थना कर चुकेहैं।दोषी आलाराम गोविन्ददास एक संन्यासी फ़कीर है और धर्म्मदास एक हिन्दू साधु हैं जिनका एक ठिकाना अर्थात् हिन्दू मन्दिर है जिस में नानक शाह के अनुयायी प्रायः आया करतेहैं। साक्षी से सिद्ध होताहै कि,दोषी ने बाबा नानककी एक ऐसी तसवीर खींची थी जिसके देखने से विदित होता था कि बाबा नानक अपनी बहन नानकी के साथ व्यभिचार कर रहेहैं। इस तसवीरको दोषीने धर्म्मदास के पास भेज दियाथा जिन्होंने तसवीरको देखकर तथा तसवीर के नीचे लिखी बातोंको पढ़कर उसे हरभजनदास को देदिया जो उस समय धर्म्मदास के साथ दुकान में टिके हुवेथे। तसवीर के नीचे जोलेख "नानक" और "नानकी है मालूम होताहै कि इसे "बालक" और "बालकी" बनाने की चेष्टा उस समय की गई है

जब तसवीर न्यायालय में दाखिल होचुकी है, साक्षी से सिद्धहै कि असल लेख "नानक" और "नानकी" था जिसका स्वरूप कुछ २ बदल कर "बालक"और "बालकी"सा मालूम होताहै। दोषी के कौंसिली मिष्टर नाना भाई भी इस बात का प्रतिवाद नहीं करते। दोषी के निज हाथ के लिखे एक पत्रमें जो न्यायलय में दाखिलहै दोषी स्वयम् कहता है कि हमने नानक और नानकी की बहुतसी बुरी२ तसवीर बनाई थीं। और यह भी विदित होता है कि न्यायालयमें अभियोग के आने पर दोषी ने अपने कुत्सिताचार के मार्जनार्थ क्षमा की प्रार्थना भी की थी और कहा था कि वह लेख असल में "नानक" और "नानकी" ही है

अब यहां इन बातों पर विचार करना योग्यहै [१] कि यह तसवीर वह [आब्जेक्ट) पदार्थ है वा नहीं जिसका वर्णन इण्डियन पिनलकोड की धारा २९८ में है? (२) कि तसवीर को धर्म्मदास के पास भेजना तसवीर को पूरा२ उनके दृष्टि गोचर कराना है वा नहीं (३) कि यह कार्य्य धर्म्म दास तथा बाबा नानकशाह के दूसरे अनुयायियों के धर्म्मभाव पर आघात करने के लिये स्वेच्छा से किया गयाहै वा

नहीं? हमारे जानने में इन प्रश्नों का योग्य उत्तर "हां" है २९८ धारा के शब्द (आब्जेक्ट) पदार्थ का अर्थ है "कोई चीज़ जो आंखों से देखी जासके" और तसवीर एक ऐसी वस्तु है जो आंखों से देखी जा सक्ती है। और तसवीर को देखने के लिये भेजना उसे देखने वाले की आंखों के सन्मुख रखना ही है। अब यह विचारना योग्य है कि दोषीने किस अभिप्राय से तसवीरको भेजाथा। यह साक्षी से साबित ही है कि बाबानानक को हिन्दुओं का एक भाग परम पवित्र समझता है अतएव उनके अपमान करनेके लिये यत्न करना नानकशाहियों के धर्म भावपर आघात करनाहै। इससे अधिक अपमान सूचक और क्या होसक्ता है कि गुरु नानक की एक व्यभिचारी की तसवीर बनाई जाय? और वह उस नानकशाही साधु के यहां भेजी जाय जिसके मन्दिर में नानकशाही साधु अक्सर ठैरा करतेहैं? इन सब बातोंसे यही अभिप्राय निकलता है कि आलाराम गोविन्ददास ने स्वेच्छा से, जान बूझकर नानकशाहियों के धर्मभाव पर आघात करने के लिये ही यह सब किया है।

अतएव इस न्यायालय में यह सिद्ध हुआ कि

दोषी आलाराम गोविन्ददास. उस दोष का भागी होचुका जिसका वर्णन इस अभियोग में किया गया है, अर्थात् दोषीने स्वेच्छा से जानबूझ कर नानकशाहियों के धर्मभाव पर आघात करने के लिये बाबा नानक की एक बुरी तसवीर बनाकर नानकशाही साधु धर्मदास शिवराम के पास भेजी थी। अतएव दोषी ने उस दण्ड के योग्य काम किया है जिसका वर्णन पिनल कोड की धारा २९८में है। यह न्यायालय दोषी को ६ महीने "साधारण कैद" की सज़ा देता है जिसकी सूचना करांची जेल खाने के जेलर को दी जाती है॥

१ नवम्बर १८८२ ईसवी { (हस्ताक्षर) एफ़, गिब्बंस
प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेट

सिन्ध प्रान्त के सदर कोर्ट में जिसका अधिवेशन आज २२ फ़र्वरी १८८३ को सक्करमें है।

आलाराम गोविन्द दास का अभियोग, का फ़ैसला

दोषी आलाराम गोविन्ददास उस सूचना का उत्तर नहीं देता जिस्के द्वारा उससे पूछा गयाथा कि उसकी सज़ा क्यों नहीं बढ़ाई जासक्ती है। परन्तु वह हक

[illegible] भेजता है जिसमें लिखता है "हमारा दिमाग़ अधिक पढ़ने से बिगड़ गया था" दोष इस प्रकार का था जिसके लिये दोषी को सपरिश्रम कारागार (सख़्त क़ैद की सज़ा) का दण्ड मिलना योग्य था अतएव यह न्यायालय साधारण क़ैद की सज़ा (जो मैजिष्ट्रेट ने दिया है) को उठाकर ६ महीने सख़्त क़ैद की सज़ा देता है ॥

हम अनुमान करते हैं कि मेजिष्ट्रेटने इस विषय का अपने सरिश्तेमें अनुसन्धान किया है कि प्रमाण के पत्र के शब्द "नानक" और "नानकी" किस प्रकार बदले गये। यदि अभी तक इसका खोज न हुआ हो तो मैजिष्ट्रेट को योग्य है कि वह उस पुरुष का पता लगावें जिसने इन शब्दों को बदलने का यत्न किया है और यह भी अनुसन्धान करें कि ऐसे पुरुष ने किस प्रकार कोर्ट में दाख़िल हुए प्रमाणपत्र के लेख को बदलने का अवसर पाया ॥

(हस्ताक्षर) -एच, वर्डउड,
जज्ज सदर कोर्ट

पं० रामचन्द्र वेदान्ती ॥

भारतधर्ममहामण्डलोपदेशक देहली निवासीके प्रश्नोंका उत्तर.

पुस्तक सङ्ख्या १७

पं० तुलसीरामस्वामी सम्पादक वेदप्रकाश
मेरठ लिखित

और

श्रीस्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती स्थापित
वैदिकपुस्तकप्रचारकफण्ड द्वारा प्रकाशित
मेरठ
स्वामियन्त्रालयमें मुद्रित ।
आर्य्यसंवत्सर १९७२९४८९९९ चैत्र सं० १९६४
एप्रिल सन् १९०७
प्रथमवार १०००]

[मूल्य) ॥

ओ३म्

पं० रामचन्द्र वेदान्ती देहलीके प्रश्नोंके उत्तर ॥

विदित हो कि पं० रामचन्द्र नवीनवेदान्ती देहली निवासीने एक विज्ञापन पत्र छपाकर प्रकाशित किया है जिसमें लिखा है कि सत्यार्थप्रकाशमें जिन २ पुस्तकोंके प्रमाण दिये हैं वे प्रमाण उन२ पुस्तकोंमें नहीं हैं जिसको देखतेही हमारे पौराणिक भाई भ्रान्तिमें पड़जाते हैं और कहते हैं कि इसका उत्तर सामाजिक लोग नहीं देसके ॥

यद्यपि इस पत्रमें जो प्रश्न हैं उनके उत्तर बहुधा शास्त्रार्थों और व्याख्यान आदिमें होचुके हैं तथापि हम अपने पौराणिक भ्राताओंके भ्रमनिवारणार्थ लेख द्वारा भी इसका उत्तर देना उचित समझते हैं ॥

१–प्र० अत्रपूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः० ।

यह ३ चरणका श्लोक वा० रामायणमें नहीं है:–

उत्तर–वाल्मीकीय रामायण युद्धकाण्ड सर्ग १२५ श्लोक २० व २१ में यह पाठ वर्त्तमान है मुम्बईका सटीक वा०

रामा० कल्पतरु प्रेस सन् १८८९ का छपा पृष्ठ १४१ पं० २ देखिये ॥

२–प्र० "और इसी स्थानमें चातुर्मास्य किया था" । यह किस श्लोकका अर्थ है ॥

उत्तर–रामचन्द्रजीका वहां चातुर्मास्य करना किसी एक श्लोकका अर्थ नहीं किन्तु किष्किन्धा और सुन्दरकाण्डोंमें रामचन्द्रजी, सुग्रीव और हनुमान् आदिके समस्त वृत्तान्तको पढ़ो तो स्पष्ट विदित होजायगा कि समुद्रके इस ओर चातुर्मास्य भर रामचन्द्रजी रहे फिर मार्गशिर कृष्णा अष्टमीको प्रस्थान किया यह बात नीचे लिखे प्रमाणसे स्पष्ट है:–

मार्गकृष्णेऽष्टम्यां राघवप्रस्थानस्येत्यादि । वा०रामायण तिलक । युद्धकाण्ड पृष्ठ १२६ पं० ४ छापा मुम्बई कल्पतरुप्रेस ॥

इससे स्पष्ट है कि चौमासेके पश्चात् रामचन्द्रजीने चढ़ाईकी । एक बात यह भी जानने योग्य है कि श्री स्वामीदयानन्दसर०जी सत्यार्थप्रकाशके इस प्रसङ्गमें यह सिद्ध करते हैं कि वा० रामायणमें इस स्थानमें शिवलिङ्ग

स्थापन नहीं लिखा सो यहां बाल ऊपर लिखे श्लोक (अत्र पूर्वं महा०)के टीकाकारके–

"कूर्मपुराणे तु अत्र स्थाने स्पष्टमेव लिङ्ग-स्थापनमुक्तम् ।

अर्थात् इस स्थानमें कूर्मपुराणमें तो स्पष्ट ही लिङ्गस्थापन कहा है„। इस लेखसे भी सिद्ध होता है कि टीकाकार भी जानता है कि रामायणके श्लोकसे लिङ्गस्थापना सिद्ध नहीं होती परन्तु कूर्मपुराणसे सिद्ध होती है । सो रामचरित्र विषयमें रामायणके विरुद्ध अन्य पुराण प्रामाणिक नहीं होसक्ते ॥

३–प्र० विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूप-पादयेत् ॥

यह आधा श्लोक मनुमें नहीं है ॥

उत्तर–यह श्लोक–मनुस्मृति छापा मुम्बई निर्णयसागर प्रेस संवत् १९४६ का छपा पृष्ठ ३६४ अध्याय ११ श्लोक ६ पं० ६ में यह पाठ उपस्थित है कि–

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते ॥

इसी श्लोकमें कुछ पाठान्तर होकर ऊपर लिखा सत्यार्थप्रकाशका अर्ध श्लोक लिखा गया है अर्थ एकही है ॥

४–प्र० रथेन वायुवेगेन जगाम गोकुलं प्रति।

यह श्लोक भागवतमें नहीं है ॥

उत्तर–इस पाठका पता सत्यार्थप्रकाश नया छपा संवत् १९४७ में छाप दिया गया है देख लीजिये कि भागवत स्कन्ध १० अध्याय ३९ श्लोक ३८ और स्कन्ध १० अध्याय ३८ श्लोक २४ ॥

५–प्र० सत्यार्थप्र० ३३८ पृष्ठ में लिखी प्रल्हादकी कथा भागवतमें नहीं है ॥

उत्तर–भागवतमें प्रल्हादकी कथा उपस्थित है परन्तु खम्भेका तपाया जाना कीड़ियोंका उसपर चलना, स्वामीजीने यह नहीं लिखा कि यह भागवतका पाठ है किन्तु उनका तात्पर्य्य यह है कि नृसिंह अवतारकी कथा प्रल्हादके साथ जो भागवतमें लिखी है सृष्टिक्रमविरुद्ध और असत्य है । किसी भागवत बांचने वा सुनने वालेको जो उसपर विश्वास रखता है प्रह्लादकी तरह पहाड़ों परसे गिराया जावे वा अन्य सब चेष्टा वैसीही की जावें तो वह नहीं बच सक्ता इसी प्रकार प्रल्हादके साथ भी यह

चेष्टाकी जातीं तौ न बचता क्योंकि सप्तिक्रम (अग्नितापादि) जैसा कि हिन्दुओंका विश्वास है कि होलिका मैयाका त्योहार तभीसे चला जबसे कि प्रह्लादकी फुआ उसे लेकर अग्निमें बैठ गई और वह स्वयं फुंक गई भक्त प्रल्हादको आंच न आई इत्यादि विरुद्ध बातें असम्भव होनेसे मिथ्या हैं। महाशय! जब तक आप इन विषयों की पुष्टि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे न करें तब तक आपकी इन बातोंसे पुराणोंकी सत्यता नहीं सिद्ध होसकती ॥

६—मनुष्योंकी आदि सृष्टि तिब्बतमें हुई यह किस शास्त्रमें लिखा है इत्यादि ॥

उत्तर—तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या अन्नम् अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः। तैत्ति० ब्रह्मानन्द वल्ली अनु० १॥

अर्थात् प्रथम परमात्माने आकाश तत्त्वको उत्पन्न किया फिर वायु फिर अग्नि फिर जल फिर पृथिवी फिर अन्न फिर वीर्य फिर मनुष्यको ॥

इससे स्पष्ट है कि उत्पत्तिक्रममें पुरुषकी उत्पत्ति अन्न

के पश्चात् है अन्न पृथिवीसे उत्पन्न होते हैं पृथिवीका ऊंचा भाग तिब्बत ही प्रथम ठंडा और अन्न उपजाने योग्य होसक्ता है क्योंकि जब किसी लोहपिण्डको गर्म करके पुनः ठंडा करो तो ऊपरका भाग ही प्रथम ठंडा होगा इसी प्रकार अग्निमय पिण्डसे जलमय पिण्ड उत्पश्चात् भूमय पिण्ड तत्पश्चात् अन्न से मनुष्य जाति की उत्पत्ति होसकती है इसी विचारसे स्वामीजी ने तिब्बतमें मनुष्योंकी आदि सृष्टि लिखी है ॥

७—प्र० नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्॥

यह श्लोक स्वामीजीके माने दश उपनिषदोंमेंसे किस उपनिषद्का है?

उत्तर—जिन २ बातोंको सब लोग मानते हैं उनके लिये आवश्यक नहीं कि स्वामीजी अपने माने हुए प्रामाणिक ग्रन्थोंसे ही प्रमाण दें। जब "सत्यसे बढ़कर धर्म नहीं झूठसे बढ़कर पाप नहीं" इस सिद्धान्तको सब मतोंके लोग मानते हैं तब कहींका भी श्लोक क्यों न हो, विवादास्पद नहीं होसक्ता। क्या तुमारे भाई पं० रामचन्द्र इस सिद्धान्तको नहीं मानते कि "सत्यसे बढ़ कर पुण्य और अ-

सत्य से बढ़कर पाप नहीं, यदि मानते हैं तो दोनों पक्ष की मानी हुई बातमें विवाद क्या? नहीं मानते तो क्या कोई पन्थ उन्होंने ऐसा निकाला है जिसमें सत्यसे घृणा और असत्यसे प्रीति है। संसारमें सब मतोंसे अधिकबुरी बातें वाममार्गमें पाई जाती हैं परन्तु सत्यका विरोध तो उन्होंने भी नहीं माना परन्तु आपकी लीला अपार है॥

८—स्वामी शङ्कराचार्य्यको विष दिया जानेका वृत्तान्त शङ्करदिग्विजयमें नहीं लिखा इत्यादि॥

उत्तर—सत्यार्थप्रकाशमें भी तो यह नहीं लिखा कि शङ्करदिग्विजयमें ऐसा लिखा है। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि शङ्करदिग्विजयमें सब ही बातें हों तथा शङ्करदिग्विजय भी कई हैं। इनके अतिरिक्त कोई अन्य भी शङ्करदिग्विजय हो जो अनुपलब्ध हो। अस्तु यह कोई ऐसा विषय नहीं जो किसी के मत पर दोष लगानेको स्वामीजी मिथ्या लिखते। एक यह भी बात है कि विष देनेवाले का प्रमाण न्यायालय योग्य उस समय न मिल सकने आदि कारणोंसे जानबूझकर भी यह बात शङ्करदिग्विजयमें न लिखी गई हो। स्वयं स्वामी दयानन्दसरस्वतीजीके विष दिया गया उसका भी न्यायालय योग्य

प्रमाण न मिलने आदि कारणोंसे और स्वयं स्वामीजीने निषेध किया इससे अभियोगादिका कार्य्य कुछ न हुवा। किसी धर्मप्रचारकका अस्त्र शस्त्र विषादिसे मारा जाना उसके धर्म पर आक्षेप नहीं किन्तु बड़ा भारी सौभाग्य माना जाता है दृष्टान्तके लिये ईसा, गुरु गोविन्दसिंहके पुत्र, हकीकतराय, पं० लेखराम आर्य्यपथिक आदिकी मृत्यु उनके अटल यश और धर्मार्थ बलिदानका डंका बजाती हैं॥

९—छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः।

इसके पतेके लिये देखो "ग्रहलाघव" अधि० ५ श्लो० ४

१०—पृष्ठ ७४ में केवल मातङ्गऋषिका ही वर्णव्यत्यय नहीं लिखा है किन्तु इस प्रकार लिखा है कि "छान्दोग्य उपनिषद्में जाबाल ऋषि अज्ञात कुल, महाभारतमें विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातङ्गऋषि चाण्डालकुलसे ब्राह्मण होगये थे" महाभारत बहुत बड़ा पुस्तक है खोजनेको ४।६ मास चाहियें खोजनेसे मिल भी जाय परन्तु केवल मातङ्ग ऋषि पर ही आप शङ्का करते हैं कि महाभारतमें नहीं लिखा सो विश्वामित्र और जाबालका वर्णव्यत्ययसे ब्राह्मण होजाना तो आपको भी स्वीकृत ही है यदि स्वी-

कृत है तो बहुत विवादकी आवश्यकता नहीं यदि स्वीकृत नहीं तो प्रथम आप जाबाल और विश्वामित्रका उत्तर दीजिये तब हम भी इतने महाभारतसे खोज देंगे ॥

११, १२, १३, १४, १५ प्रश्नोंका तात्पर्य्य संक्षेपसे यह है कि जब स्वामी दयानन्दसरस्वती और आर्य्यसमाज, वेदोंकी चार संहिता छोड़ अन्य ग्रन्थोंको मानते ही नहीं तब संस्कारविधि और पञ्चमहायज्ञविधिमें लिखी सब बातें चार संहिताओंमें दिखलानी चाहियें और प्रत्यक्षादि ८ प्रमाण भी वेदसंहिताओंमें दिखलाने चाहियें ॥

११–१२–१३–१४–१५ प्रश्नोंका उत्तर यह है कि स्वामीजीने यह कहीं नहीं लिखा कि हम ऋषि मुनि कृत ग्रन्थोंको नहीं मानते और केवल चार संहिताओंको ही मानते हैं किन्तु वेदसंहिताओंके विरुद्ध को नहीं मानना लिखा है। सो प्रत्यक्षादि ८ प्रमाण, षोडशसंस्कारोंके विधि, पञ्चमहायज्ञके समस्त विधानादिमें जो कुछ लिखा है, क्या वह वेद विरुद्ध है? यदि विरुद्ध है तो बताइये कौन विधि किस मन्त्रसे विरुद्ध है। यदि आप विरोध नहीं दिखा सके तो वेदानुकूलता नीचे लिखे मीमांसा सूत्रसे सिद्ध ही है। यथा–

विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम् ।

मी० अ० १ पा०३ सूत्र०३.

अर्थात् विरोध हो तो त्याज्य है और विरोध नहीं मिले तो अनुकूलताका अनुमान करना चाहिये। तदनुसार जब विरोध नहीं है तो जिन २ ग्रन्थोंसे जो २ विषय स्वामीजीने लिया वह अनुकूल माननीय ही हुवा ॥

अन्तमें निवेदन यह है कि यदि इन अन्तके चार प्रश्नों पर विशेष देखना हो तो "वेदप्रकाश„ के १ वर्ष ३ मासके अङ्कको देखिये। तथा सब ही प्रश्नों पर विस्तार पूर्वक "दयानन्द तिमिरभास्करकी समीक्षा„ छपेगी उसमें देखियेगा ॥ महाशय पं० रामचन्द्रजी और सनातन धर्मके सब मुख्य पण्डितोंसे हमारी प्रार्थना है कि यदि आपको समझमें सत्यार्थप्रकाशके कोई लेख असत्य प्रतीत हों तो दुराग्रह छोड़ प्रीतिपूर्वक विचार कर लीजिये। हम आप दो नहीं हैं किन्तु एक वेदके धर्मको माननेवाले हैं। स्वामी दयानन्दसरस्वतीजीका भी यही प्रयोजन था कि वैदिक धर्मावलम्बी सारे एक होजायं, पुराणोंके भिन्न २ उपदेशों से जो फूट फैली है वह दूर होजाय तो हमको यह सामर्थ्य प्राप्त होजाय कि जिससे समस्त संसारके मनुष्योंको धर्म-

सम्बन्धिनी भ्रान्तिको दूर करके एक सत्य सनातन वैदिक धर्मामृतपान द्वारा समस्त भूमण्डलको धर्म अर्थ काम मोक्षका भागी बना सकें जिससे हम और आप सब अटल पुण्यके भागी हों॥ यदि महर्षि स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी वा किसी अन्य ऋषि महर्षिका कोई वाक्य वेदविरुद्ध हो तो उसके छोड़नेमें हमको तो कोई आग्रह है ही नहीं परन्तु आपको भी नहीं होना चाहिये। इससे हमारा यह प्रयोजन है कि यद्यपि अभी तक हमको कोई बात सत्यार्थप्रकाशादिमें लिखी असत्य वा वेदविरुद्ध नहीं प्रतीत हुई परन्तु हमारा यह हठ नहीं है कि किसी ऋषिकृत पुस्तकमें भूल हो ही नहीं सकती। परन्तु "भूल होनी सम्भव है" का यह तात्पर्य्य भी नहीं है कि भूल अवश्य है। किन्तु भूल सिद्ध होने पर मान लेनी चाहिये॥

सारा संसार अशान्तिमें पड़ा हुवा भारतकी ऋषिसन्तानोंसे धार्मिक भिक्षा मांग रहा है तब आप और हमको उसे शान्ति देनी चाहिये वा आपसकी लड़ाई? नहीं२ आप भी संसारकी दशापर करुणा करके आपसका विरोध छोड़ संसारकी धार्मिक अभिलाषाको पूर्ण करनेमें हमारा हाथ बंटाइये॥

तुलसीरामस्वामी सम्पादक "वेदप्रकाश" मेरठ

ओ३म्

पतित उद्धारण

आर्य्य (हिन्दु) लोग क्यों मुसलमान हुए?

वेदों का श्रेष्ठ धर्म व शास्त्रों की पवित्र मर्यादा जिन के निमित्त अद्यावधि भी विरोधी व अनुयायी लोग उन के पवित्रता को गीतें गा रहे हैं, यदि आज तक संसार में विद्यमान रहते वा उस के अनुसार लोग आचार व्यवहार करते रहते तो निश्चय कोई और मत मुंह न दिखलाता और नकोई नया दीन उत्पन्न होता। वैदिक समय के लाखों घटनाओं में से एक "श्रीरामचन्द्र महाराजजी" का वृत्तांत है, जिन के बात२ से सद्धर्म का प्रकाश चमकता है, और पग२ पर सत्यता की झलक आती है। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के परस्पर सच्चे प्रेम से कौन अभिज्ञ नहीं है? बांधविक प्रेम क सामने वे राज्यको तुच्छ व व्यर्थ जानतेथे रामचन्द्र जी की खड़ाऊंओं को भरत का राज्य सिंहासन पर रख कर रामचन्द्र जी के दास कहला कर १४ वर्ष राज्य

करना क्या संसार में अनुपम दृष्टान्त नहीं है ? और इसी प्रकार रामचन्द्र जी का वनवास से लौटने पर पहिले कैकई के गृह में नमस्कार के निमित्त जाना क्या संसार में कोई दृष्टांत रखता है ? वही आर्यधर्म वा वैदिक धर्म का समय था और उस के पीछे भी बहुत काल पर्यन्त रहा, अनन्तर कौरव पाण्डव का समय आया, पाण्डु के स्वल्प कालिक प्रदत्त राज्य पर दुर्योधन का अधिकार (कबज़ा) हुआ, घोर युद्ध तक की नौबत पहुंची तब श्रीकृष्णचन्द्र स्वयम् ही समझाने के लिये गये और केवल यह कहा कि सम्पूर्ण आर्य्यावर्त के राज्य में से पंभाइयों को देहली (इन्द्रप्रस्थ) के निकट पांच गांव (१) पानिपत, (२) सोनपत, (३) बागपत (४) दलपत, (५) करनाल दे देवें कि जिस से झगड़े बखेड़े की नौबत न पहुंचे, तब दुर्योधन ने कहा कि :—

"सूचि अग्रं न दास्यामि विनायुद्धेन केशव"

(अर्थ) हे कृष्ण तुमतो पांच गांव मांगते हो, मैं उनको सुई के अगले नोक के बराबर भी पृथ्वी विनायुद्ध किये न दूंगा।

समय के इस परिवर्तन शीलत्व को देख कर कौन है जिसे शंका होगी कि धर्म की व्यवस्था वैसी की वैसी ही

स्थिर रहे गी, इतना बड़ाभारी परिवर्तन व अन्धेर बहुत आशाओं के मूल पर बिजली गिराती है ॥

भारत के युद्ध के पश्चात् आर्य्यावर्त की अवस्था दिन प्रतिदिन अधःपात होने लगी व्यभिचार के फैलने के कारण राजाओं व राज धर्म की व्यवस्था बहुत ही खराब हो गई और "यथा राजा तथा प्रजा" का होना आवश्यक हुआ यही कारण था कि उन के बुरे आचरणों का प्रभाव राजाओं ही मात्र तक परिमित न रहा। राजगुरु अर्थात् पुरोहित लोगों ने इस में सब से पहिला भाग लिया और तन्त्र शास्त्र की रचना हुई, तथा वाममार्ग का मत बढ़ा गया यथा :—

کفر گیرد کاملے شود "कुफ्र् गीरद कामिले शवद"

(अर्थ) यदि पूरा उस्ताद हो तो कुटिलता करे, सारे ब्राह्मण राजपुरोहित के आधीन होते हैं, यही बड़ा भारी कारण था कि वे परवश होने से स्वेच्छा विरुद्ध होते भी चुप रहे या उनके साथी बनगये, और जो लोग चुप होरहे उन्होंने वाममार्ग की प्रवृत्तिमार्ग से विरुद्ध निवृत्तिमार्ग नाम रख सनातनधर्म को पतित होने से बचाया और व्यभिचार के गड्ढे में न गिरने दिया ॥

वाममार्ग के अत्याचार ने बौद्ध धर्म उत्पन्न किया जिस ने वैदिक धर्म को अत्यंत हानि पहुंचाया और संस्कृत विद्या का तिरस्कार हो कर प्राकृतभाषा रची गई, नास्तिक मत का प्रचार और वैदिक मत का संहार होने लगा कि इसी बीच दो सिंह पुरुष पूर्ण विद्वान् धर्म के क्षेत्र (मैदान) में निकल पड़े और शास्त्रार्थ का झगड़ा खड़ा किया पहिले का नाम कुमारिल भट्ट वा भट्टाचार्य्य था जिसने वाममार्ग का नाश किया और दूसरे का श्रेष्ठ नाम श्री स्वामी शङ्कराचार्य्य था, जिसने नास्तिकता के वृक्ष पर परशरामी कुठार रक्खा; तथा उसे आर्यावर्त्त के पवित्र भूमि अर्थात् महर्षियों के देश से जड़ पेड़ सहित काट कर समुद्र में गिरा दिया; फिर वैदिक धर्म का प्रचार व शास्त्रोक्त संस्कार होने लगे लाखों पतित लोग जो नास्तिक थे फिर गङ्गा व गोदावरी किनारे यज्ञोपवीत पहिना कर शुद्ध किये गये और नये सिरसे उन में वर्ण व्यवस्था गुण कर्मानुसार स्थापित हुई उस समय शुद्धि का नियम केवल यह था कि हस्तामलक आदि शिष्य स्वामी के आज्ञानुसार एक दो दिन में प्रायश्चित्त करा, गायत्री सिखला, यज्ञोपवीत पहिना कर सभा में ला के शुद्ध कर देते थे, इस से अधिक कोई प्रायश्चित न था,

श्री शङ्कराचार्य्य जी के कई शताब्दियों पश्चात् रामानुज आचार्य हुये, यह वही समय था जब कि मुहम्मदी मत का अरब देश में प्रादुर्भाव हुआ और कुछ दिनों के पश्चात् लूट मार के नियत से जेहाद (धार्मिक उमंग) का दावा (प्रतिज्ञा) करते हुये अर्य्यावर्त्त पर आक्रमण करना आरम्भ हुआ अर्थात् ६३६ ई० में अबुल आसिन यमन निवासी ने बम्बई के निकट थाना नगर पर आक्रमण किया, फिर सन् ६६४ ईसवी में महाब अरब का अमीर काबुल के मार्ग से मुलतान तक आया, फिर सन् ७१२ ईसवी में मुहम्मदबिन कासिम आमिलेहजाज ने सिन्ध पर आक्रमण किया और फिर सन् ईसवी से १०२६ तक महमूद गज़नवी के १७ सत्रह आक्रमण (हमले) हुये, और इसी प्रकार मुहम्मद गोरि, शम्सुद्दीन अलतमश, अलाउद्दीन खिलजी, कुतुबुद्दीन, सुलतान मुहम्मद तुगलक, व फिरोजशाह और सन् १३९८ ई० में तैमूरशाह के आक्रमण से सन् १७५० ईसवीं पर्यन्त जब कि नादिरशाह दुर्रानी का अन्तिम आक्रमण हुआ बराबर हमले होते रहे ॥

जिस घोर अत्याचार व निष्ठुरता से उन आततायी लुटेरों ने पीड़ित हिन्दुओं के साथ बर्ताव किया व जैसी

निर्दयता व छल से इन बिचारे दुःखियारों के गर्दनों पर तलवारें चलाईं और अपमान किया उसका समाचार पढ़ने से हृदय कम्पायमान होता है, व कलेजा थरथराता है ॥ (पूरा पूरा हाल देखो रिसाला जहाद) ऐसी अवस्था में सहस्रों में से एक मनुष्य भी कठिनता से मिलेगा जो अत्यन्त असह्य अपमान व मार डाले जाने को भी सहन करले, परंतु दीन मुहम्मदी न स्वीकार करे और सद्धर्म पर दृढ़ रहे और आपत्ति पर आपत्ति पड़ने पर भी जो न डिगे जब तलवार के धनी राजपूतों ने राज्य व सम्पत्ति के रहने पर भी साहस हीन हो कलङ्क का टीका लगवा लड़कियां देना स्वीकार कर लिया, जब राना बापा जैसे पुरुष मुसलमानियों के पीछे मुसलमान हो गये और इसी प्रकार सहस्रों राजपूतों ने किसी किसी अभिप्राय से तलवार या अपमान के भय से मुसलमान होना स्वीकार किया ; और कौला देवी व देवल देवी व जोधबाई, जैसी स्त्रियां बलात्कार शाही रणवास में प्रविष्ट की गईं, जब जेबा व जलिया जैसी स्त्रियां बगदाद में ऊंटों के पांवों से बन्धवा कर मार डाली गईं तो सर्व साधारण की क्या कथा है ? प्रत्येक राजपूत में राना प्रताप व राना सङ्गा व महाराज

सेवाजी के जैसा साहसी हृदय नहीं है, और न प्रत्येक खत्री में हकीकतराय का सा धैर्य है, और जब कि प्रत्येक ब्राह्मण में उन तीन ब्राह्मणों जैसा ब्रह्मतेज नहीं है जिन्हें फ़िरोज़ शाहने, सिकन्दर लोदी और औरङ्गजेब ने निज मुहम्मदी मत होने से द्वेष के कारण शाही दरबार के सामने जीवित ही आगमें जलायाथा, और न वैष्णवी बनियों जैसी सब वैश्यों में हिम्मत है फिर तलवार, अपमान, व इसलामी मत के सामने (मुकाबिले) ठहर सकना कितना कठिन काम है ॥

ज़रा एक मिनट के लिये चित्त एकाग्र कर के सोचिये कि आप में कितने ऐसे बहादुर हैं, जो यदि उनके सिर पर तलवार और हाथ में कुरान रक्खा जावे तो तलवार को अङ्गीकार करें और कुरान से इनकार ?

भाइयो ! ऐसी आपत्तियों के पड़ने से जो बराबर (सन् ६२६ से १७, ५७ ई० तक) ११३१ वर्षों पर्यन्त एक के पीछे एक पड़ती रहीं और जिन का सामना सर्व साधारण के लिये कठिन बरंन् असम्भव था, लाखों ब्राह्मण, क्षत्रिय राजपूत, वैश्य, शूद्र सारे हिन्दुस्तान के प्रत्येक भाग में बलात्कार स्वेच्छा रहित भी तलवार के बल से मुसलमान बनाये गए ॥

मुख का साधन न होने से वैदिक शिक्षा सर्वथा लोप हो गई थी, संस्कृत का प्रचार छूट गया था, फिर बतलाइये कि कौन पवित्र वेदों को पढ़ता, पवित्र उपनिषदों का पाठ करता और कौन उन्हें पढ़ कर मुसलमानों के सिद्धान्तों से मिलान करता ऐसे अस्वास्थ अवस्था में अर्थात् सिकन्दर लोधी के समय में हिन्दुओं ने फारसी पढ़ना आरम्भ किया, हिंदुधर्म से अनभिज्ञता शिक्षा की न्यूनता इत्यादि से और "यदि कोई समझाने वाला होता तो वह मारा जाता" इत्यादि कारणों पर ध्यान देने से स्पष्ट ज्ञात होगा, कि फ़ारसी की धार्मिक शिक्षा अपना क्या रङ्ग लावे गी; तद्यथा इस कारण से भी अति कठिन आपत्ति में पड़ कर "न राह मुर्दन न राह बुर्दन" नमौत आवे न पीछा छूटे। के अनुसार कष्ट में पड़कर बहुत से हिन्दू मुसलमान हो गये जिन का कुछ भी दोष नहीं था। और जो प्रत्यक्षतः मुसलमान हुये वे मन ही मन में मुहम्मदी मत के कायल (मानने वाले) और रूपवती स्त्रियों पर मोहित ही रहे और अनन्तर वे कुछ पीढ़ियों के पश्चात् खुल्लमखुल्ल मुसलमान हो गये यह दूसरा कारण है॥

इधर अज्ञानी व निरपराधी बिचारी हिन्दुओं की

लड़कियां बलात्कार पकड़ी जाती थीं, उधर वेश्याओं के समूह हिन्दु युवा जनों को फंसाने के निमित्त पृथक् ही जाल फैलाये हुए थे, जिन के पेंचदार बन्धन में, जो परिणाम में नर्कप्रद था। भानु, हृाद और जगन्नाथ जैसे विद्वान् पण्डित भी फंस गए, तो फिर साधारण अनपढ़ शूद्रों वा मूर्खों का क्या कहना, वह तो पूर्व से ही अभागी हैं, उनके मुसलमान होने में क्या देर थी॥

"मुर्गे दिल क्यों न फंसे दाना भी हो दाम भी हो"
(एक कंचन एक कुचन पर को न पसारे हाथ)

और जब कि वे सुशिक्षिता, कुरान पढ़ी हुई, निमाज़ें जानने वाली और रमज़ान के ३० रोज़े रखने वाली, ईमानदार (धन में अत्यन्त शुद्ध) रहने वाली, सारी कमाई का रुपैया मस्जिदों में व्यय करने वाली, मुहर्रम में शर्बत की छबीलें लगाने वाली, विदुषियें और कवित्व शक्ति युक्ता हों तो उन्हें हिन्दुओं को आकर्षण करने में क्या देर लग सकती है? इसी कारण से दो क्रोड़ से अधिक हिन्दुओं को मुसलमानी वेश्या रूपी काली नागिनियों ने डस लिये और वे इस प्रकार कामातुर हो कर पतित हो गए। यह

तीसरा कारण है कि जिस से हिन्दु लोग मुसलमान होगए ॥

मुसलमानी पाठशालाओं (मकतबों) के प्रचरित होने से सहस्रों हिन्दु विद्यार्थी मौलवियों की धूर्तता (शरारत) व बहकावट में आकर फिसल गए । यह तो सब पर प्रगट ही है कि गुरु का शिष्य पर कितना अधिकार होता व प्रभाव पड़ता है ; यह चतुर्थ कारण है ॥

विधवा हो जाने की अवस्था में हिन्दु स्त्रियों के लिये पुराणों ने दो ही मार्ग दर्शाए हैं, एक तो पति की चिता के साथमें भस्म हो जाना, दूसरा सारी आयु शोक जनित वस्त्र पहिनती हुई दुःख भोगना । ऐसी शिक्षा के अनुसार लाखों जल कर दग्ध हो गईं । (देखो टाड राजस्थान) परन्तु क्रोड़ों जो कि इस कुकर्म्म से बच गईं उन की अवस्था पर ध्यान दीजिये;निर्वंश होनेकी अवस्था में विधवात्व का समय कठिन है, और कैसा अगम्य पहाड़ लांघना पड़ता है। "जवानी मस्तानी और जवानी दीवानी" की अवस्था मस्त हस्ती के तुल्य है, उस का वेग रोकना सर्वथा कठिन है; सहस्रों शुद्ध चारित्रा सत्वन्तियों के सिवाय, और लाखों स्त्रियोंसे यह कठिनता न सहीगई(क्योंकि उसका सहारना वस्ततः अति कठिन है) वे लाचार मसलमान कुटनियों की

बहकावट से व स्वयं ही मुसलमान हो गईं ; जिस में उन का कुछ भी अपराध नहीं था, यदि दोष था तो बाल्यविवाह कराने वालों का, या टेवा देखने वालों का या काशीनाथ कायस्थ शीघ्रबोध बनाने वाले और उस के अनुयायों का या पुनर्विवाह बन्द कराने वालों का, क्योंकि पराशर जी महाराज ने जिन्हें सारे हिन्दु मानते हैं अपनी स्मृतिमें इस प्रकार लिखा है :—

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥

अर्थ—पति खो जाय, मरजाय, साधु होजाय, नपुंसक हो जाय, मुसलमान या किसी और धर्म्म में जा कर किसी और प्रकार से पतित हो जाय, ऐसी अवस्था मे स्त्री को चाहिये कि दूसरा पति कर लेवे ॥

और नारद जी का भी यही कथन है । यदि इस के अनुसार वर्ताव होता रहता तो अभी तक मुसलमानों की इतनी उन्नति न होती व प्रायः दोक्रोड़ से अधिक न बढ़ते और ऐसा ही हुआ है, कि जवान हिन्दु जो किसी विधवा से (नमिलने, कुँवारा रहने या सारी आयु रण्डुआ रहने

के कारण) विवाह करना चाहता है और हिन्दू उसे बिरादरी से वाह्य करना चाहते हैं तो वह उस विधवा सहित मुसलमान होजाता है कि जिस से ताना आदि व्यङ्ग वचनों को सुनने से बचे रहें; यह पांचवां कारण है ॥

जिस प्रकार बौद्ध मत के फैलने से बुद्ध के नास्तिक व वेद निन्दक होने पर भी पुराणों के निर्माण कर्त्ताओं ने बुद्ध को अवतार मान लिया, इसी प्रकार हिन्दुओं को हनन करने व उनकी मानहानि करने पर भी क्रोड़ों मूर्ख हिन्दू स्त्री पुरुषों ने मुसलमान पीर फकीरों (साधु सन्तों) के खानगाहों (समाधियों) से अन्धाधुन्ध अभीष्ट कामनायें मांगना आरम्भ किया और बाल विवाह व ब्रह्मचर्य्य बिगाड़ने के कारण प्रायः नपुंसकताने मुंह दिखलाया अतः कबरोंसे पुत्र मांगने लगे और यह प्रगट है कि कबरों के दिये हुए या निर्दयी मुसलमानों के प्रदत्त बेटे हिन्दु नहीं रह सकते एक दो पीढ़ीके पश्चात् अवश्य मुसलमान होजाते हैं ॥

मूर्ति पूजा का यह फल होना भी था। क्योंकि कबर पूजा या मृतकोपासना यह मूर्ति पूजा की दूसरी बहिन है। मूर्ति पूजा से निराश हिन्दुओं नें जब देखा कि क़बरोपासक मुसलनान हम से बलिष्ट हैं तो मूर्खता

वश उन का अनुकरण करते हुए क़बरों से अभीष्ट सिद्धि, के प्रार्थी हुए। आर्य्यावर्त के प्रत्येक दिशाओं में कबरोंपसना आरम्भ हुई, बाबा नानक जैसे सत्य प्रेमी के मरने पश्चात् भी उन के अनुयायों में मूर्ति पूजा व कबरोपासना के बराबरी में रूड़े साहिब, टाली साहिब, बेरी साहिब टेहरा साहिब, दुःख भञ्जन साहिब, कोरा साहिब, बाट साहिब, हाट साहिब, तोल साहिब, पञ्जा साहिब बाबे की बेर, चूहा साहिब, नियत हुए; जिस से उनके अनुयायी भी उसी प्रकार मूर्त्ति पूजा में गिर पड़े, जिस प्रकार अन्य साधारण कबरोंपासक व मूर्त्तिपूजक हैं ॥

अतः क्रोड़ों राजपूत, ब्राह्मण, मरहटा, सिक्ख, क्षत्री, अरोड़े, बनियें और शूद्र, लोग ख्वाजा मुइनुद्दीन पीर साहिब, लखान का दाता, निगाहेवाला, सरवर, औलिया, यूसुफ शाह पीराने कलेर, पाकपट्टन, इमामबख्श, शमसुद्दीन बहादुलहक, सादेशहीद, दीनेंपनाह, ग़ाज़ी मुसलमान, इत्यादि की प्रेतगृहों (कबरों) में मारे २ फिरने व शिर रगड़ने लगे जिस से प्रतिदिन लाखों मुसलमान होते और सद्धर्म से पतित हो जाते हैं; यह छठवां कारण मुसलमान होने का है ॥

बहुत से गरीब हिन्दु विवाह न होने के कारण और सारी आयु कुवारेपन को सहन करने की अत्यन्त कठिनता से घबरा कर विवाह के लालच से मुसलमान हो जाते हैं जिनकी संख्या भी किसी अवस्था में एक क्रोड़ से न्यून न होगी और प्रत्येक नगर और ग्रामादि में इस के बहुत से दृष्टान्त विद्यमान हैं; यह सातवां कारण है ॥

जितनी लागत मूर्त्तियों के मन्दिरों पर लगी है उस से कई गुणा बढ़ कर मुसलमानों ने कबरों पर लगाई है और बड़े २ कबरों के गृह प्रेतोपासना निमित्त बना दिये हूं व प्रायः आर्य्यावर्त्त के ५ क्रोड़ मुसलमानों में से ४ क्रोड़ मूर्त्तिपूजक अर्थात् कबरों पासक हैं, और जिस प्रकार यहां ऐसे २ मठ बनाये इसी प्रकार अरब में भी हैं तद्यथा श्रीमान् मुहम्मद साहिब की कबर पर तीन क्रोड़ रुपये के हीरे और लाल जड़े हुए हैं। इसका नाम मूर्त्तिपूजा नहीं बरन प्रेतगृह (कबर) उपासना है। (अखबार दानापुर से उद्धृत)

उपरोक्त कठिनता, आपत्तियें, दुःख व कष्ट हैं जिन के कारण से सन् ६२६ ई० से १८८० ई० की मानुषी संख्या (मर्दुमशुमारी) पर्य्यन्त ८०३२५४३२ हिन्दु लोग मुसलमान हो गए व उन की सन्तान आर्य्यावर्त्त में विद्यमान हैं ॥

एक उपाख्यान ॥

डेरा इस्माईलखां नगर में एक शेख यूसुफ की खानकाह है जिस से सैकड़ों हिन्दु स्त्री पुरुष इष्ट के प्रार्थी होते हैं, वहां के मुजावर (पुरोहित) प्रथम मुंह पर थूकते फिर जूते लगाते हैं। एक बार डेरा में कुछ हिन्दू मुझ से पूंछने लगे कि वे थूकते तो हैं परन्तु जूते क्यों लगाते हैं। मैंने कहा कि थूकते इस निमित्त हैं कि तुम परमात्मा पारब्रह्मको छोड़ कर कबर पर सिर रगड़ने आये और यतः थूक जल्दी सूख जाती है इस लिये जूते भी लगाते हैं जिस से तुम जल्दी न भूल जाओ ॥

फा०:-"अलहिज़र अयकौम नादां अलहिज़र"

अर्थ—सावधान हो! हे मूर्ख जाति सावधान हो!!

यद्यपि मुसलमान हुए १३०० तेरह सौ वर्ष हो भी चुके तथापि अभी तक भी हिंदुओं से मुसलमान हुए लोगों में हिन्दुओं की सहस्रों रीतियें (दस्तूरें) पाई जाती हैं ॥

लाखों मुसलमान ब्राह्मणोंसे फेरे फिरवाते और विवाह पढ़वाते और उनको परोहित मानते हैं, कल्ला बान्धते हैं, और हिन्दु मुसलमान दो नाम पृथक रखते हैं और यही अवस्था स्त्रियों की है और प्रायः एक क्रोड़ ऐसे होंगे जो

सर्वथा गोमांस नहीं खाते, लाखों मुसलमान ऐसे हैं जिनको इसलाम मत से सिवाय मट्टी के प्यालों के और कुछ लाभ नहीं हुआ सारे रांघड़ों का यही हाल है॥ (देखो सैय्यद अहमद खां साहिब का व्याख्यान)

लाखों मुसलमान ऐसे हैं जो सिवाय मृतक शव को गाड़ने के और इसलाम के नियमों आदि से सर्वथा न तो अभिज्ञ हैं और न उनके मन्तव्य ही स्वीकार करते हैं। लाखों मुसलमान हिन्दुओं के ज्योतिष पर विश्वास रखते और पण्डितों के शिष्य हैं और जब मिलते हैं उन्हें पालागन या नमस्कार करते हैं॥

लाखों अब तक विवाह शादी में गोत्र बचाते हैं और निकट विवाह कदापि नहीं करते और हिंदुओंसे मुसलमान हुए लोगोंकी बिरादरी से बाहर विवाहादि नहीं करते हैं।

लाखों ऐसे हैं जो चोटी रखते और नागरी पढ़ते हैं, जैसे मुम्बई के बोहरे और खोजे हैं, जिनके नाम काहनजी, रामजी, श्यामजी हुआ करते हैं॥

लाखों सच्चे मन से वापस आने को उद्यत हैं, यदि आर्य जाति का कुछ भी इशारा उनको मिले या उन की कोई सहायता करने वाला हो॥

इसलिये हे भाइयो! ऐसे आफत के मारों व पीड़ितोंकी शोचनीय दशा पर दयाकरो। उत्साह युक्त उदार चित्त से शास्त्रों पर विचार करो और उन पर कृपा करके परोपकार निमत्त उनको फिर वापस लेने के लिये प्रयत्न करो॥

धर्मशास्त्र के अनुसार आपत्काल का विधान और पतित पुरुषों के लिये प्रायश्चित्त॥

जिस प्रकार वैद्यक शास्त्र आयुर्वेद में सारे शारीरक रोगोंकी औषधि है, उसी प्रकार धर्मशास्त्र में सारे आत्मिक रोगों की औषधि है। सब धर्मशास्त्रों व वैद्यक शास्त्रों का मूल वेद है व यही कारण है, कि वेदों में शरीरिक रोग निवृत्ति के निमित्त ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ, बानप्रस्थ व संन्यस्थ की विधि है और इसी कारण युक्त आहार, विहार का वर्णन किया है कि जिस का अनुवर्तन करने से मनुष्य शारीरिक रोगों से बच सकता है। इसी प्रकार आत्मिक रोगों के निवृत्त करने के लिये वेद ने विद्या, उपासना प्रार्थना, ध्यान, धारना, समाधि योग का विधान किया है, कि जिस से शारीरिक व आत्मिक दोनों प्रकारके आनन्द भोग कर जीव मोक्ष धाम को प्राप्त हो॥

वेदों के पश्चात् राजनैतिक धर्मशास्त्रकार मनु हुए हैं जिनकी स्मृति विद्यमान है। यद्यपि स्मृतियें तो अठारह हैं परन्तु सब में मनुस्मृति ही प्रधान है अर्थात् उसी को श्रेष्ट माना गया है। बृहस्पतिस्मृति में स्पष्ट ही लिखा है, कि:—

वेदार्थोपनिबन्धृत्वात् प्राधान्यं मनोःस्मृतम्।
मन्वर्थ विपरीतातु या स्मृतिः सानशस्यते॥

अर्थ—वेदार्थ के अनुकूल मनुस्मृति सब स्मृतियों की शिरो धार्य है। जो स्मृति मनु के विरुद्ध है वह प्रतिष्ठा योग्य नहीं है॥

जिन बातों को मनु ने प्रायश्चित्त के योग्य लिखा है, यदि (उन बातों का) उनके लेखानुसार प्रायश्चित्त कराया जावे तो प्रायः एक हिन्दू भी आर्यावर्त में ऐसा न निकलेंगा जो प्रायश्चित्ती न हो। मनुस्मृति अध्याय। ११। श्लोक ५४ में लिखा है कि:—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्ग नागमाः।
महान्ति पातकान्याहुःसंसर्गश्चापितैःसह॥

अर्थ—ब्रह्महत्या करने वाला, मदिरापान करने वाला, गुरुकी स्त्री से प्रगंक करने वाला यह तीनों महा पातकी हैं

व इन (तीनों) की सङ्गति में रहने वाला भी ऐसा ही है॥ प्रथम व अन्तिम बातों को छोड़ कर, मदिरापान करनेवाले इस समय प्रत्येक वर्ण व प्रत्येक कुलीन घरानेमें न्यूनाधिक विद्यमान हैं। और हमारे इस पाञ्चाल देश में तो कई स्थान पर ब्राह्मण मदिरा के ठेकेदार हैं बरन मदिरा के दुकानों पर फुटकर बिक्री भी करते हैं। शूद्र तो फिर भला किस गिनती में हैं। और वाममार्ग के अनुयायियों को तो चाहे किसी ही जात में हों, अवश्य ही मदिरा पान करनी पड़ती है। मांस खाने वाले भी जिसे धर्म्मशास्त्र में अति-निन्दनीय कर्म लिखा है, आर्यावर्त के प्रत्येक भाग में विशेषतः पञ्जाब, काश्मीर, बंगाल, मैथिल व मध्य देश में लाखों हैं। यदि कोई धार्मिक राजा मनु अ०११ श्लोक ९१। के अनुसार दण्ड देनेलगे तो कदाचित् इस देश की मानुषी संख्या आधी हो जावे। परन्तु साथ ही शास्त्र यहभी कहता है कि जब राजा आर्य्य धर्म्मानुकूल न हो तो वह आपत् काल है, आपत्काल के लिये यह भी विधि है॥

"आपत्काले मर्यादा नास्ति"

अर्थात् आपत्काल में कोई मर्यादा नहीं जो होसके वो जिस प्रकार हो सके अपने धर्म को स्थिर रक्खे और यह

अवस्था काबुल, गांधार, ग़ज़नी, हिरात, बिलोचस्तान, खिलात, तिब्बत, कश्मीर, बुखारा, जनोवा, बूशहर, बग्रा, सिकन्द्रिया, निटाल, अदन, जावा और बाटी, जापान, मालटा, हाङ्काङ्, व जङ्गबार के हिंदुओं का है। कि वे अपने आप को हिन्दु कहते ही हैं, परन्तु धर्म्म की कोई भी साक्षी उन के पास नहीं। अतः क्या हम उन को धर्म से च्युत समझें ? नहीं कदापी नहीं ! क्योंकि धैर्य्य व साहस में हम से बढ़ कर हैं, और उनकी श्रद्धा भी हम से अधिक हैं, और हिन्दु धर्म्म से जितना उन का प्रेम हैं इस की कोई गणना नहीं हो सकती परन्तु वे आपत्काल में हैं, इस कारण से बेवश व लाचार हैं॥

हमारे ऋषि मुनि इस बात से अनभिज्ञ नहीं थे, वे दूर दर्शी थे व अपनी दूरदर्शी विज्ञान शक्ति से इस बात को जानते थे अतएव उन्हों ने इस विषय पर विचार भी कियाहै (देखो मनुस्मृति अ० १० श्लोक ८१ से ९३० पर्यन्त)

तद्यथा; श्लोक १०५ में लिखा है कि धर्म्म व अधर्म्म के जानने वाले "वामदेव" ने क्षुधा से पीड़ित हो कर कुत्ते का मांस खा लिया परन्तु वह पतित न हुआ॥

(श्लोक १०७) भूख से लाचार "भरद्वाज" ऋषि महा

तपस्वी ने एक घने जङ्गल में अपने लड़के सहित एक नीच से दान लिया॥

(श्लोक १०८) भूखसे अत्यन्त क्षुधातुर धर्म्म अधर्म्म के तत्व को जानने वाले ऋषि "विश्वामित्र" ने एक चाण्डाल से कुत्ते की टांगे खाने के लिये लीं॥

प्रेमसे ग्रस्त रामचन्द्रजी ने भीलनी शूद्रा वरन् अतिशूद्रा के जूठे बेर खाए और प्रेम से ग्रस्त कृष्ण महाराज ने कुब्जा मालिन के घर का भोजन पाया॥

रामानुज के उपदेश से कबीर व कमाल आदि मुसलमान वैदिक धर्मानुयायी हो गए, और लाखों हिन्दु अब इन मुसलमान साधुओं को अपना परम पूज्य वा अगुआ मानते हैं॥

चैतन्य स्वामी बङ्गाल वाले के उपदेशसे भी कई जन्म के मुसलमान वैदिक धर्म के अनुयायी हुए व बराबर बङ्गालियों में उन का बर्ताव होता रहा॥

मनुष्य वा मुरदा खाने वाले अघोरी साधुओं के भी कई हिन्दु चेले हैं जिनके साथ सारे हिन्दु बर्ताव करते हैं।

मनुजी ने एक स्थानपर लिखाहै (अ० १० श्लो० १०४) जो मनुष्य प्राणों की रक्षा के लिये किसी नीच जाती का

अन्न खालेता है वह अन्तरिक्ष के सदृश पाप लिप्त नहीं होता ॥

मनुस्मृति में लिखा है, कि यदि गोहत्या आदि करे तो तीन मास में शुद्ध होताहै। देखो अ० १० श्लो० ६० व ११६

और मनुस्मृति अ० १० श्लो० ४६ में लिखा है, कि बिना इच्छा अर्थात् बलात्कार किया हुआ पाप वेद के अभ्यास से दूर होजाता है, परन्तु जो इच्छा से पाप किया जावे तो धर्म से उस का प्रायश्चित्त है ॥

बड़े से बड़ा ऐसा कोई भी पाप नहीं है जिस का धर्म शास्त्र में प्रायश्चित्त न कहा हो, अथवा प्राचीन काल में न होता रहा हो और जब कि उन के लिये प्रायश्चित्त है तो जो लोग आपत्काल के मारे तीक्ष्ण शस्त्र (तलवार) के भय से मुसलमान हो गये या अपनी मान बड़ाई के लिये मुसलमान हो गये कि जिस से उन की स्त्रियों का पतिव्रत धर्म नष्ट न हो, तो वे केवल गायत्री के जप से ही शुद्ध हो जाते हैं ॥

जन्म के मुसलमानों, ईसायों, यहूदियों, जैनियों, या बौद्धों के लिये शास्त्र ने स्पष्ट बतलाया है कि वे बिना

कामना के प्रवेश करते हैं इस लिये वे केवल गायत्री मंत्र से या अग्नि होत्र से शुद्ध हो कर आर्य धर्म में प्रवेश कर सकते हैं जैसा कि स्वामी शङ्कराचार्य ने सहस्रों बौद्धों को केवल गायत्री का जप कराकर शुद्ध कर लिया था, उसी प्रकार होना चाहिये ॥

अब रहे स्वयं मुसलमान या ईसाई आदि होकर शुद्धि की अभिलाषा रखने वाले; सो उन के लिये शास्त्र कहता है कि देश काल पात्र देख कर प्रायश्चित्त करा कर शुद्ध कर के आर्य जाति में मिलाओ ॥

शास्त्रों में लिखा है कि सावित्री के जाप करने से ब्रह्म हत्या व गो हत्या का पाप छूट जाता है ॥

गायत्री मन्त्र सब से पवित्र है इसी लिये इस विषय में सब की एक मती है कि इस से नाना प्रकार के पाप छूट जाते हैं। तो क्या मुहम्मदी, ईसाई या बौद्ध शुद्ध नहीं हो सकते ? अवश्य होसकते हैं ॥

प्रायश्चित करा कर शुद्ध करने की विधि ॥

आज तक आर्य समाजों में लग भग एक सहस्र मुहम्मदी व ईसाई आदि पतित लोग शुद्ध किये गये परन्तु किसी विशेष व्यवस्था के विद्यमान न होने से प्रत्येक स्थान

पर कठिनता पड़ती है। अमृतसर, रावलपिण्डी, लाहौर पेशावर, गुजरांवाला, लुधियाना की समाजें जितना अधिक उत्साह व धर्मभाव से इस कार्य में तत्पर रहीं, उतना ही अधिक वे धन्य बाद के योग्य हैं। आर्य समाजों ने जितनाही अधिक यह धार्म्मिक सेवा की, उतना ही अधिक वैदिक धर्म्म के गौरव को सत्कार करने वाले होते गये॥

किसी पतित को शुद्ध करने के लिये सब से प्रथम यह आवश्यक है कि उस के हृदय के मन्तव्य शुद्ध किये जावें और उसे सद्धर्म की श्रेष्ठता जहां तक वह समझ सकता हो बतलाई जावे। अन्यथा किसी विशेष प्रकार के स्नान भोज्य वस्तु अथवा किसी अङ्ग के कटवाने, दासत्व को चिन्ह लगाने या दासत्व का विशेष वस्त्र पहिनने से कोई भी शुद्ध नहीं हो सकता॥

पौराणिक लोग गोबर, खिला, गङ्गा जी भेज वा और वहांके भङ्गियों से जूते लगवा कर और ब्रह्मभोज करवा करके हिन्दु धर्म्म से पतित लोगों को शुद्ध करते हैं॥

स्वर्ग वासी महाराजा रणबीर सिंह जम्बू व कश्मीराधिपति ने इस कठिन दण्ड को बहुत धन व्यय कर के सरल कर दिया था तथा यह व्यवस्था प्रचरित की थी कि

संख्या १ व ३ आवश्यक नहीं व सं० २ व ४ ही मात्र शुद्धि के लिये पर्य्याप्त हैं, तदनुसार कई हिन्दु पवित्र किये गये। सिक्ख लोग यद्यपि साधारणतः शुद्धि के विरोधी हैं परन्तु उन में से कुछ महाशय मिश्री या बताशे का सर्बत घोल कर उस में लोहा रगड़ कर पिलाते हैं और ऊपर से शूकर का मांस खिलाते और कुछ सर्बत को उस के शिर में डालते व कुछ मुंह व आंखों पर डाल कर शुद्ध करते हैं, और बहुत से जूते भी उसे झाड़ने पड़ते हैं। परन्तु यह पक्षपात युक्त कार्यवाही कैसे २ कट्टर मुल्लाओं के उन कार्य वाहियों से कदापि अधिक नहीं हो सकती, जो वे हिन्दुओं के साथ या सिक्खों के साथ जब कि उन को मुसलमान बनाते हैं किया करते हैं; जिस से मन दुःखित करने के सिवाय और कोई पवित्रता प्रगट नहीं होती। परन्तु क्या गोबर या शूकर का मांस, भङ्गियों के जूते अथवा साधारणतः सब के जूते, पीड़ित दीन गाय का मांस, *खतना, व ईसायों का चिल्लू भर पानी इत्यादि मस्तिष्क या अन्तःकरण की राई

* जो मुसलमानों का एक के संस्कारों में से है, विशेष करके लिङ्ग इन्द्रिय की खलड़ी कटवाना है॥

के बराबर भी शुद्ध कर सकते हैं ? भक्त कबीर जी ने सच कहा है:—

ओह जावें मक्के, ते ओह जावें काशी ।
कहे कबीर दुहां गल फासी ॥
ओह पूजें मढ़ियां, ते ओह पूजें गोरां ।
कहे कबीर दोये लुट लिये चोरां ॥

फिर दूसरी जगह कबीर जी कहते हैं :—

इन झटका उन बिस्मिल कीनी ।
दया दुहां थी भागी ॥
कहे कबीर सुनो भाई साधो ।
आग दुहां घर लागी ॥

और यही कारण है कि पन्जाब में साधारण हिन्दुओं की अपेक्षा सिक्ख लोग यद्यपि मनुष्य गणना के अनुसार वे बहुत थोड़े भी हैं, तो भी अधिकता से मुसलमान हुए व हो रहे हैं और इसी प्रकार पहाड़ी डोगरे राजपूत और सूअर का मांस खानेवाले भी यही लोग हैं । हमारे हिन्दु भाईओं को कदाचित् ज्ञात नहीं है कि मुहम्मदी दीन में

(१) सूअर का मांस खाने (२) जूआ खेलने, (३) मदिरा पीने, (४) व्यभिचार करने से अधिक पाप अन्य कोई पाप नहीं माना गया, यद्यपि हिन्दुस्तान, रूम, अरब, अफ़गानिस्तान, ईरान आदि में क्रोड़ों मुसलमान संख्या दो से चार तक के पाप कर्मों में लिप्त हैं । और फिर यह भी नहीं ज्ञात होता कि मुरगा, सूअर व भेड़ जैसे घृणास्पद तामसिक पशुओं के खाने से क्या आत्मिक पवित्रता प्राप्त हो सकती है ? ॥

बाबा नानक जी जो कि सिक्ख मत के आदि कर्त्ता हैं वे सब प्रकार के मांसों व विशेषत: सूअर के मांस को हराम (अभक्ष्य) मानते थे, और मदिरा को भी ऐसा ही जानते थे तथा एक निर्पक्ष पुस्तक कर्त्ता, जिस के रचित पुस्तक को सब लोग प्रतिष्ठा करते हैं, और जिसकी सिक्खों के पांचवें गुरु श्री गुरु अर्जुनदेव जी से अत्यन्त मित्रता थी लिखता है ।

"नانک قایل بتوحید باری بود و تناسخ نیز ایمان داشت و خمر د
گوشت وخوک را حرام شمرده ترک حیوانی کرده با جتناب آزار
حیوان امر میفرمود و گوشت خوردن بعد از و در مریدانش شهرت

یافت وارجن مل کہ از خلفائے باواسطہ اوست چوں تمج آں را دریافت
ازاکل حیوانی مانع آمد و گفت ایں عمل مرضی نانک نیست "

फारसी—नानक क़ायल व तौहीद बारी बूद व तनासुख़ नीज ईमां दास्त व ख़मरो गोस्त व ख़ोकराहराम समर्दा तर्क हैवानी कर्दा व बइस्तना ब आज़ार हैवां अम्र मीफरमूद व गोस्त ख़ुरदन बाद अज़ व दर मुरीदानश शोहरत याफ़्त व अर्जुनमल कि अज़ ख़ुलफ़ाय बवास्ता ओस्त चूं क़बह आरां दरियाफ्त अज़ अक्ले हैवाने मानः आमद व गुफ्त ईं अमल मरज़ीं नानकनेस्त"

(दबिस्तान मज़ाहब तालीम दोयम सफा २२३)

अर्थ—नानक ईश्वर को अद्वितीय मानता था, और आवागमन के सिद्धान्त का विश्वासी था व मांस तथा सूअर को अभक्ष्य समझ कर पशुओं को छोड़, कर पशुओं को दुःख देने से बचने की आज्ञा देता था। और मांस खाने का प्रचार उनके शिष्यों में पीछे से पड़ा। और अर्जुनदेव ने जिस के

साथ खलीफों का कुछ सम्बन्ध है जब इस बुराई का अन्वेषण किया तो स्वार्थपरायण बुद्धि इस की रुकावट हुई। तथा कहा कि यह व्यवहार नानक के अभिलाषा के अनुसार नहीं है (देखो दबिस्ताने मज़ाहब तालीम दोयम पृष्ट २२३)

शुद्धि का ठीक २ नियम वही है जिस नियम से बाबा नानक ने मरदाने को शुद्ध किया अर्थात् परमेश्वर की भक्ति वैदिक रीति अनुसार सिखलाकर, न कि सुअर आदिका मांस खिला कर। और सबसे अधिक भूलकर हमारे भाईयोंकी यह है कि वे ईसाईयों को भी इसी भ्रम युक्त रीति से शुद्ध करते हैं अर्थात् सुअर का मांस खिला कर। शायद उन्हें ज्ञात नहीं है, कि ईसाई मत सुअर को अभक्ष नहीं मानते वरन् वे लोग अच्छी प्रकार इसको खाते हैं। व सुअर ही मात्र क्या! इन के मत में तो सारे पशु भक्ष हैं॥

अतः ठीक व यथार्थ पतित पावन या पतितउद्धारन की रीति वही है जो सच्छास्त्रों में लिखी है जिस के अनुसार सनातन-धर्म (पवित्र वेद) अनुयायीयों का कर्तव्य है, कि वह सारे अन्य मतों में पतित मनुष्यों को शुद्ध कर के सत्य सनातन आर्य्य धर्म के अनुयायी बनावें॥

शुद्धि व्यवस्था ॥

१–जन्म से पतितों के लिये प्रायश्चित ।

उनको प्रथम अच्छी प्रकार कई दिनों तक सद्धर्म का तत्व बतला कर अन्य धर्मों का रङ्ग उन के हृदय रूपी दर्पण पर से पृथक् कर देना चाहिये, जब अच्छी प्रकार उस के चित्त में निश्चय हो जावे तो उसे सन्ध्या गायत्री अर्थ सहित सिखला कर व वैदिक रीति से उसका नाम करण संस्कार कराके यदि वह यज्ञोपवीत संस्कार के योग्य भी हो तो यज्ञोपवीत करा के सब रीतियें समझाने के पश्चात् सभा में शुद्ध कर देना चाहिये अर्थात् गुण कर्म्मानुसार किसी वर्ण में मिला देना चाहिये ॥

२–बलात्कार व(जबरदस्ती) लाचारीसे भ्रष्ट हुए लोगों का प्रायश्चित ॥

जब अच्छे प्रकार निश्चय हो जाय कि वह परवश में पड़ बलात्कार व किसी अनुचित दवाव से अन्य मत (मज़हब) में प्रवेश हो गया था तो उसे बिना रोक टोक अति हर्ष पूर्वक सत्कार पूर्वक मिला लेना चाहिये। उस के

निमित्त केवल उसका आ जाना ही पुष्कल है। किसी और प्रायश्चित या दण्ड की आवश्यकता नहीं ॥

३-अपनी प्रसन्नतासे धन स्त्री के प्रेम य पुस्तकों के अवलोकन से पतित होनेवाले का प्रायश्चित

जितने वर्षों तक अन्य मत में रहा हो उतने सप्ताह व जितने महीने रहा हो उतने दिन व जितने दिन रहा हो उतने घण्टे इसकी परीक्षा करके जब अच्छी प्रकार निश्चय हो जावे कि वह फिर पतित नहीं होगा व उसकी श्रद्धा भी अधिक ज्ञात हो व सम्बन्ध भी टूट गया हो या पतित करने वाली स्त्री भी उस के साथ ही वापस आना चाहती हो, तो एक सप्ताह साधारण व्रत रखवा कर शिखा रखवाने व नाम बदलवाने के पश्चात् सब उपस्थित सज्जनों की विनय व प्रार्थना कराने के पश्चात् उस मत के दोष व सद्धर्म का गौरव अच्छी प्रकार समझा कर हवन कराके उसे मिला लेना चाहिये व उसकी सहचारिणी को भी यदि वह किसी वेश्या के प्रेम में पतित हुआ हो तो उस से यथाशक्ति कुछ दण्ड लेना चाहिये नहीं तो किसी धार्मिक सोसायटी (सभा) अर्थात् आर्यसमाज आदि में उससे योग्य सेवा लेनी चाहिये

और यदि कोई मनुष्य एक वार प्रायश्चित् कराने पर फिर भी दैवयोग से किसी कुसंग में पड़ कर पतित हो जावे तो दोबारा उस से दुगुना दण्ड लिया जाय और दुगनी सावधानि की आवश्यकता है ॥

नोट—शुद्धिपत्र से पूर्व उस से पतित होने के विषयमें विस्तार पूर्वक समाचारों सहित प्रार्थनापत्र लिया जावे और फिर शुद्ध करके उसको एक शुद्धिपत्रिका निम्न प्रकार की दी जावे जिसकी एक नकल समाजमें स्मर्णार्थ रक्खी रहे ॥

॥ ओ३म् ॥

शुद्धिपत्रिका ।

आज तिथि…मास…शुदि या वदि…संवत् विक्रमी या ता०…मास…सन्…ई० को सब वृतान्त अच्छी प्रकार जांच लेने के पश्चात् नाम………पिता का नाम……… जाति…निवास स्थान…………आयु…वाले को धर्मशास्त्र मनु व मिताक्षरा अध्याय………श्लोक………के अनुसार शुद्ध कर के आर्य धर्म में संमिलित किया गया है, इसे अब इस से घृणा (परहेज़) नहीं रही, यह सब प्रकार से इस में संमिलित है इस से कोई घृणा न करे, इसते सब के सामने

………मत से घृणा प्रगट कर के उस से पश्चाताप किया इस कारण सारे उपस्थित निम्न लिखित महाशयों के सामने शुद्ध किया गया है।

ह०मन्त्री……………………ह० प्रधान……………

बाहर की विक्रियार्थ आई पुस्तकें ।

भास्कर प्रताश अर्थात् दयानन्द तिमरभाष्कर का उत्तर प्रथम भाग ।≠) द्वितीय भाग ॥) चतुर्थ भागा ॥) बिदुरनीती भाषा टीका ।≈) श्वेताश्वतरोपनिद ।≶) चित्रविद्या अर्थात् फोटोग्राफी १) उर्दू में दो भाग १) पांचसौव्यापार १) उर्दू में १) चिकित्सासिन्धु २) विश्वकर्मा प्रकाश म् १।) हारमोनियमगाईड १भाग ।≠) दूसराभाग ।≠) उर्दूमें ॥) वीरेन्द्र वीर अथवा कटोरा भर खून ॥≠) जया ॥) खेतीविद्या के मुख्य सिद्धान्त ॥≠) श्रीछत्रपतिशिवजी महाराज का जीवन चरित्र ।) स्वधर्मरक्षा ।) आर्यसमाज परिचय ।) वदांतप्रदीप ॥) स्त्री धर्मनीति १) बुद्धिमती ।≠) भामनी भूषण ।) आर्यसंगीत-पुष्पावली जिल्द वाली ॥) उर्दू ॥) सभाप्रश्न ।) उर्दू ≶)॥ बहारेनरंग १ भाग ≶) तीसिय भाग ।) सत्यहरिश्चन्द्र नाटक ।≠) नीलदेवी नाटक ≶)

ईसा ॥≠) मीला ॥≠) फलित ज्योतिष परीक्षा ⁄) बाईबल की पोल ⁄) ब्रह्मकीर्तन)॥ कर्म वर्णन)॥ धर्मसंप्रचार)॥ शिक्षावली)॥ शिक्षाध्याय)॥। संस्कृत प्रथम श्रेणी: ⁄) आर्यभाषा की प्रथम पुस्तक ≠)' द्वितीय ≠)॥ तृतीय ।) ग्राग्निसरोवर ⁄)। ब्रह्मयज्ञ ॥) नारीभूषण ।≶) संस्कृतभाषा की प्रथम पुस्तक)॥ द्वितीय ⁄)। तृतीय ≠)॥ चतुर्थ ॥) वैदिक देव पूजा ⁄) ईश्वर और उसकी प्राप्ति ⁄) मुक्ति और पुर्नजन्म ⁄)॥ सत्यार्थप्रकाश संग्रह ≶) चाणक्यनीति संग्रह ⁄)। सांख्यदर्शन भाषा टीका ॥।) वैशेषिकदर्शन भाषा टीका १।) नारायणीशिक्षा दोनों भाग १।) वीर्यरक्षा ≠)॥ गर्भाधान विधि ≠)॥ सत्यनारायण की प्राचीन कथा ≠) ओ३म् पीतल के ≠) गिलट ≶) गायत्री मन्त्र अर्थ सहित)॥

हमारे पास श्री स्वामी दयानन्द महाराज जी कृत, पं० लेखराम जी कृत, पं० भीमसेन जी कृत, पं० तुलसीराम जी कृत, आदि महाशयों की भी पुस्तकें हैं ॥

ब्रह्मानन्द सरस्वती-प्रबन्ध कर्त्ता वैदिक पुस्तक प्रचारक हाल लाहौर गुमटी बाजार ॥

समीक्षक—मनुष्य के घूँसे से हाथी का मरना असम्भव है छोटे २ जीव न मरें, इस लिये तो मुँह बांधते हैं, और हाथी जैसे बड़े जीव के मारने में मानो कुछ पातक ही नहीं ॥

प्रज्वलित अग्नि कुण्ड से मनुष्य निकल पड़ा।

(जै० क० र० को० भा० ७ पृ० २४२)

समीक्षक—प्रज्वलित अग्नि से यदि मनुष्योत्पत्ति जैनग्रन्थों से सिद्ध है तो जोड़े का उत्पन्न होना, तथा मरना, एवं ४९ ॥ दिन की पालनादि क्रियायें ये सब उड़ गईं, क्योंकि प्रज्वलिताग्नि कुण्ड से पले पलाये मनुष्य उत्पन्न होने लिखे हैं ॥

जैन मर कर भी बातें करते थे। (र० को० पृ० २४३)

समीक्षक—जिस प्रकार जड़ रूप बांसुरी होने पर भी छिद्रों के द्वारा बोलती है, तदनुसार जैनमृतकों से वार्तालापादि होने के लिये किसी प्रकार का उद्यम क्रिया जाता होगा ॥

महावीर ने उत्पन्न होते ही मेरु पर्वत को [illegible]तों [illegible]ती, दबाया, तो समुद्र उछलने लगा, पृथिवी नाच[illegible] आप पहाड़ गिरने लगे, (जै: यो[illegible]शास्त्र, हेमचन्द्राचा[illegible]

समीक्षक—जब महावीर के शरीर से ए[illegible] नें माच के द्वारा मेरु को दबाने से समुद्र उछलने आदि [illegible] तो जिस समय महावीर उत्पन्न होकर पृथिवी [illegible] समान हुए होंगे, उस समय न जानें उस भार [illegible]त् रथ

समीचक—मनुष्य के घूँसे से हाथी का मरना असम्भव है छोटे २ जीव न मरें, इस लिये तो मुंह बांधते हैं, और हाथी जैसे बड़े जीव के मारने में मानो कुछ पातक ही नहीं ॥

प्रज्वलित अग्नि कुण्ड से मनुष्य निकल पड़ा।
(जै० क० र० को० भा० ७ पृ० २४२)

समीचक—प्रज्वलित अग्नि से यदि मनुष्योत्पत्ति जैनग्रन्थों से सिद्ध है तो जोड़े का उत्पन्न होना, तथा मरना, एवं ४८ ॥ दिन की पालने की क्रियायें ये सब उड़ गईं, क्योंकि प्रज्वलिताग्नि कुण्ड से पले पलाये मनुष्य उत्पन्न होने लिखे हैं ॥

जैन मर कर भी बातें करते थे। (र० को० पृ० २४३)

समीचक—जिस प्रकार जड़ रूप बांसुरी होने पर भी छिद्रों के द्वारा बोलती है, तदनुसार जैनमृतकों से वार्तालापादि होने के लिये किसी प्रकार का उद्यम किया जाता होगा ॥

महावीर ने उत्पन्न होते ही मेरु पर्वत को [illegible] दबाया, तो समुद्र उछलने लगा, पृथिवी नाच [illegible] आप पहाड़ गिरने लगे, (जै: योग शास्त्र, हेम चन्द्राचार्य...)

समीचक—जब महावीर के शरीर से ए[illegible] करने मात्र के द्वारा मेरु को दबाने से समुद्र उछलने आदि [illegible]ठ-तो जिस समय महावीर उत्पन्न होकर पृथिवी [illegible] समान हुए होंगे, उस समय न जानें उस भार [illegible]वत् रथ

पृथिव्यादि वस्तुओं की क्या दशा हुई होगी, और जब वे दौड़ते होंगे उस समय के वृत्त की वार्ता का करना मानो सारे ब्रह्माण्ड का हल चलं करना है ॥

महावीर के शरीर में रुधिर के स्थान में दुग्ध निकला।

समीक्षक—यह बात भी सृष्टिक्रम वा न्याय से विरुद्ध है, यदि इस के शरीर में रुधिर नहीं था, तो मांसादि से युक्त शरीर कैसे बनकर उन्नत हुआ ॥

प्रथम आरे (काल) में गङ्गा और सिन्धु की चौड़ाई ६२०००० (छः लाख बीस हजार) मील थी तथा उस नदी के तट पर काशी और हस्तिनापुरादि नगर भी थे, और भरत खण्ड को हिमालय के दक्षिण में तिखुटा अर्थात् तीन कोनों वाला समुद्र से घिरा हुआ भी माना है, और विजयार्ध अर्थात् विन्ध्याचल बीच में पड़ा हुआ है, जिस से भरत खण्ड के दो भाग हो गये हैं, सो यह सारे ...वभि विद्यमान हैं, और सिन्धु को पश्चिम समुद्र में ... और गङ्गा को पूर्व समुद्र में गिरना माना है, ...तीर्थङ्कर हुए हैं, सो सब गङ्गा और सिन्धु के मध्य ...हुए, परन्तु गङ्गा की इतनी चौड़ाई और सिन्धु ...ना पाट साल कर शेष समस्त भूगोल में से क्या ...जिस पर कि नगर वा बन थे, प्रथम आदिनाथ ...ध्या से चल कर छः मास में हस्तिनापुर गङ्गा को ... आया, वह पृथिवी जिस पर कि आदिनाथ छः ...या, वहां गई, और छः लाख बीस हजार

मील वाली गङ्गा से किस प्रकार पार हुआ, सिन्धु और गङ्गाका अन्तर न्यूनसे न्यून पचीस करोड़ (२५००००००) मील होना चाहिये, क्योंकि जब छः २ सात २ लाख मील की पाट वाली नदियां हैं, तो उनके बीच में बसने के लिये नगरादि देश के देश की आवश्यक्ता है, पुनः सिन्धु और गङ्गा घटते २ चार अङ्गुल चौड़ी रह जावेंगी, अर्थात् गाड़ी के चक्र (पहिये) की रेखा के सदृश ।

(देखो प्रकरण संग्रह पृष्ट १४४)

समीक्षक—इस उपरोक्त लेख के प्रमाण पूछने पर जैनी जन कदाचित् यही उत्तर देंगे, कि वर्तमान समय (सन् १९०३ ई०वा सम्वत् विक्रमीय १९५९) के लिये यह बात नहीं नियत की गई है, कि सिन्धु गङ्गादि की धारें ४ अङ्गुल की ही रह जावेंगी, किन्तु इसका वृत्त तो सृष्टि के अन्त में देखना चाहिये, कि लेख सत्य है या असत्य॥

क्या पृथिवी एक रबड़ का गोल विस्तर है। जो इस को कदाचित् जैन तीर्थङ्कर ही खींच कर बड़ा कर लेते होंगे, क्योंकि रबड़ भी बिना दूसरे के खींचे नहीं बढ़ती, भला ऐसी २ बातों के सत्य मानने वाले भी अपने आप को मनुष्य ठहराते होंगे ॥

सूर्य चन्द्रमा महावीर जैनी के यहां मुजरा करने को आते थे, और सूर्य में तेज नहीं है, किन्तु उसके बैठने की सवारी रत्नों से जड़ी हुई है, इस लिये प्रकाशमान है, और चन्द्रमा भी स्वतः रत्नों के द्वारा जो सूर्यवत् रथ

-नों लगे हैं प्रकाशित है और खेताम्बरी रथ सहित आंना मानते हैं ।

समीक्षक—अब मैं जैनियों से पूछता हूँ, कि यदि सूर्य में उष्णता नहीं है, किन्तु रत्नों की गर्मी है, तो बिचारे जौहरियों को अति कठिनता बीतती होगी, क्योंकि उनके घर में रत्न अधिक रहते हैं रत्नों की उष्णता उनको क्यों नहीं व्यापती, क्योंकि उष्णकाल में उस सूर्य की सवारी के उतनी दूर के रत्न बेचैन कर देते है, तो इन्हें अति निकट के रत्न क्यों चैन लेने देते होंगे, क्यों जैन तीर्थङ्कर जी ! रत्न तो पत्रों (कागज़ों) की पुड़ियों में बंधे पड़े रहते हैं तो वह पत्र क्यों नहीं उष्णता से भस्म हो जाता, मुझे तो इतने ही में सन्तोष हो जाता, कि रत्नों की पुड़िया का कागज़ ही किञ्चित् उष्ण होजाता, परन्तु क्या हो, जब जैनियों ने असत्य बोलने आदि व्यवहारों का ही पक्ष पकड़ लिया, तो झूठ की वृद्धि में अब क्यों कृपणता करें ॥

मेरु पर्वत जम्बू द्वीप के मध्य में एक लक्ष योजन है, और जैनी चार हज़ार क्रोश का एक योजन मानते हैं, इसका पूर्ण वृत्त (तफ़सील) इस प्रकार से लिखते हैं, कि प्रथम २५० योजन पृथिवी, पुनः २५० योजन पाषाण, फिर २५० योजन सार लोह और २५० योजन हीरे यह सब पृथिवी में हैं। अब ऊपर का वृत्त सुनिये कि (१५॥।) पौने सोलह सहस्र योजन काला जवाहिरात, (१५॥।) हज़ार

योजन स्वेत रत्न, (१५॥।) हज़ार योजन स्वर्ण, पौने सोलह हज़ार योजन चांदी, और बत्तीस हज़ार योजन केवल (ख़ालिस) रक्त वर्ण स्वर्ण है। दो सूर्य तथा दो चन्द्रमा तेली के बैल के सदृश रात्रि दिन मेरु के चारों ओर भ्रमण करते रहते हैं; परन्तु जैनाचार्यों में इतनी भी बुद्धि नहीं हुई, कि हम रत्नजड़ित सूर्य चन्द्रादि के विमान को स्वतः प्रकाश मानते हैं, और मेरु को समस्त रत्नों का ढेर मानकर भी अन्धेरी रात्रि होने पर विद्वज्जन हमें महामूढ़ जानेंगे इत्यादि और लोहे के ऊपर वह हीरे का पर्वत, तथा समस्त (काला वा स्वेत) जवाहर तथा स्वर्ण और चांदी आदि को किसने किस प्रकार बनाया, क्योंकि चांदी सोने के परमाणु पृथिवी द्वारा मिले हुए होते हैं, और हीरा तथा जवाहर बड़े २ पहाड़ नहीं हो सक्ते, इतने पर भी यदि बुद्धिमान पढ़े लिखे हठवश से जैनमत को न छोड़ें, तो उनको सिवाय पाजियों (ज़िद्दियों) के और क्या कहा जावे ॥

महावीर आदि तीर्थङ्कर पृथिवी से सदा चार अङ्गुल ऊंचे अर्थात् अधर रहते लिखे हैं, सो न जाने वे किस वस्तु के आधार पर रहते थे, और चार अङ्गुल को ही नियम क्यों नियत किया गया, क्योंकि जो विशेष विषयी था, वही विशेष ऊंचे पद का भागी होता था तो पुनः प्रतिष्ठानुकूल न्यूनाधिक अंगुलों का भी प्रमाण क्यों न हुआ। पुनः यदि कोई अब यह कहे, कि उनके शरीर ही ऐसे

अभार रूप थे, कि जैसे पतङ्ग वायु द्वारा अधर रहता है, तो भ्राताओ ! जिस ओर को अधिक वायु होती है, पतङ्ग भी उसी ओर को उड़ती चली जाती है, और कभी२ वृक्षों में उलझ जाने से उसका शरीर भङ्ग हो जाता है, और किसी समय में अल्प वायु होने पर किसी दूसरे की डोर से डोर कट जाने पर पृथिवी में गिर जाता है, तो क्या तीर्थङ्करों की भी पतङ्ग के तुल्य दुर्दशा रहती थी और पतङ्ग तो चौकोर होने से झोंका कम खाती है, परन्तु महावीर आदि तीर्थङ्कर सात हाथ से २००० हाथ लम्बे क्योंकर रह सक्ते होंगे, क्योंकि उनका निराधार तो क्या किन्तु लाठी के सहारे से भी रहना कठिन है॥

तीर्थङ्कर खाते तो थे, परन्तु मल नहीं त्यागते थे, ऐसा जैनी जन मानते हैं, और केवल ज्ञान उत्पन्न होने पर तो बिचारों का अन्न भी छूट जाता था, अर्थात् जैनियों का केवलज्ञानी वह है, कि जिसका खाना भी बन्द, और पाखाना भी बन्द ॥

भला जिस वस्तु का तीर्थङ्कर भोजन करते थे, तो उस खाये हुए पदार्थ के सर्वांश को किस प्रकार से कोई खा-जाता था, अथवा क्या पेट के द्वारा सुरङ्गवत् कहीं दूसरे स्थान में एकत्रित कर दिया जाता था, कि जो केवल ज्ञान होने के पश्चात् जब भोजन न मिलता हो, तो उस समय उस एकत्रित पदार्थ से सहायता ली जाती हो, या क्या यदि ऐसा नहीं तो बिना भोजन के जीवन किस प्रकार रह सक्ता है॥

तीर्थङ्करों के ओष्ट और ताल्वादि स्थानों से बिना जिह्वादि सङ्केतों के सर्वाक्षर (प्रत्येक शब्द) निकलते थे, कि जो अति मधुर और सुरीले श्रेष्ट ध्वनि युक्त थे, सो क्या इनका शरीर कोई चाबीदार, या फनरदार वाद्य था, जो कि वह प्रतिसमय सबको सुष्ठु २ शब्द सुनाया करता था॥

तीर्थङ्करों के केश और नख नहीं बढ़ते थे, सो क्या कोई इनके रक्त विकार था, यदि था तो क्या रक्त का गमनागमन (दौरा) इनके बन्द था, यदि बन्द था, तो इनका सहस्रों वा लाखों वर्ष जीवन किस प्रकार माना जावे, क्योंकि बिना रुधिर के मनुष्य जीवित नहीं रह-सक्ता, यदि कोई ऐसा कहे, कि जिस प्रकार प्राणायाम या समाधि काल में महात्मा रहते हैं, इसी प्रकार से ये भी रहते होंगे, सो ऐसा कहना भी नहीं बनसक्ता, क्योंकि प्राणों के रोकने आदि के लिये भी शरीर की नीरोगता चाहिये, जब शरीर अरुज होगा, उसी अवस्था में नेत्रादि बन्द कर स्वस्थचित्त हो, समाधि आदि कर, रह सक्ता है, और समाधि में नेत्र बन्द आदि साधनों की आवश्यक्ता है, सो जैन तीर्थङ्करों के नेत्र का पलक जैन ग्रन्थानुसार दूसरे पलक से लगता ही न था, सो यह भी कहना उनका नहीं बनता । दूसरे प्राणों के निरोध में शरीर जड़वत् हो जाता है, तीर्थङ्कर तो स्थान २ फिरते रहे हैं, क्योंकि

जैन ग्रन्थों में लिखा है, कि जब तीर्थङ्कर चलते थे, तो देवता पग २ पर पचीस २ कमल के फूल रखते थे, ऐसा करना भी देवताओं की अज्ञानता का कारण था, क्योंकि तीर्थङ्कर तो फूलों से भी चार अङ्गुल ऊचे हो जाते थे। तीसरे समाधि अवस्था में श्वास का भी शब्द नहीं रहता, परन्तु तीर्थङ्करों के मस्तक के अन्तर भाग (मगज़) से अति-बृहत् नाद निकलता रहता था, ऐसा लिखा है ॥

एक जलविन्दु में अनन्त जीव हैं, अर्थात् यदि एक विन्दु के जीव राई के दाने तुल्य शरीर धारण करें, तो दश अरब मील चौड़े और दश अरब मील लम्बे स्थान में भी नहीं समा सक्ते।

समीक्षक—प्रथम तो जब एक विन्दु ही अनन्त नहीं तो उस में जीव अनन्त क्योंकर हो सक्ते हैं, दूसरे एक विन्दु के इतने परमाणु भी नहीं हो सक्ते, यदि किसी को गप्पनिधि देखना हो तो जैन पुस्तकों को देख लेवे ॥

जैनी अग्नि में भी जीव मानते हैं, सो यह प्रत्यक्ष असम्भव है, क्योंकि अग्नि में जीव हो ही नहीं सक्ता, अग्नि तो घृत जैसे स्निग्ध पदार्थों के परमाणुओं को पृथक् २ कर देता है, तो पुनः शरीराकृति के परमाणु जो कि रूक्ष हैं, अग्नि में कैसे स्थित रह सक्ते हैं ॥

जैनी चन्द्रमा को सूर्य से बृहत् आकार वाला और ऊंचा मानते हैं, इन्हों ने सूर्य को लघु आकार वाला माना है, और इन के विमानों को कई सहस्र देवता

खींचते थे लिखे हैं, सो प्रथम तो चन्द्रग्रहण विशेष होते हैं, यदि चन्द्रमा बृहत् होता, तो चन्द्रग्रहण विशेष कदापि न होते, दूसरे इस बात में समस्त संसार के बड़े बड़े साइंस के जानने वाले एकमत हैं, कि चन्द्रमा छोटा और सूर्य बड़ा है, तथा च सूर्य ऊपर और चन्द्रमा परतः प्रकाशमान है। तीसरे यदि इन के विमानों को देवता घसीटते हैं, तो देवता अतीव पापभागी हैं, कि जो डाक के घोड़ों से भी अधिक काम करते, और एक क्षण मात्र भी आराम नहीं भोग सक्ते, और सूर्य चन्द्र भी अत्यन्त अपराधी हैं, कि जो चक्कर काटते ही रहते हैं, महाशयो ! जैनाचार्यों को इतना भी नहीं सूझा, कि वायुमान (विमान) का नाम तो वायु के आधार चलने वाली यान (सवारी) का है, इसमें बैलों के स्थान में देवताओं को क्यों कष्ट दिया, वा देते हैं, पुनः वे देवता किस वस्तु के आधार पर चलते हैं, यान को तो केवल इस कारण बनाया है, कि जो सवारी करे, वह निज इच्छानुकूल अधिक चले ॥

जैन ग्रन्थों में लिखा है, कि एक चुटकी बजाने में जितना समय लगता है, उतने समय में देवता जम्बू द्वीप की तीन परिक्रमा कर आते हैं, सूर्य और चन्द्र वे दो दो हैं, और जम्बु द्वीप के चारों ओर घूमते हैं, इन में एक २ का नम्बर चालीस २ घण्टे बाद आता है, और चुटकी एक सिकण्ड में एक बजती है, और वे एक

सिकण्ड में तीन बार घूम सक्ते हैं, तो मानो अपनी रफ्तार की अपेक्षा सवारी में चार लाख बत्तीस हज़ार चक्कर कम लगाये, यह कितनी बड़ी मूर्खता की बात है, कि जैसे कोई पुरुष जो आराम से २५ मील पैदल चल सक्ता है, उसको ऐसी सवारी में बैठा दे, कि वह सारे दिन में एक इञ्च से विशेष न जा सके, तो क्या उस को ऐसी सवारी में बैठना उचित है ? और उसे आराम ही क्या मिल सक्ता है, या इसी का नाम सवारी है ॥

मनुष्यों की उत्पत्ति, मूत्र, विष्टा, थूक, सिनक, रुधिर, स्वेद, मांस, आंख के मल, आदि जो २ वस्तु शरीर से निकलती हैं, उन उपरोक्तादि सबों में से बड़ी २ डाढी मुच्छों के मनुष्य निकल २ कर भागने लगते हैं, इनको इकसेणिये और क्रमोक्रम कहते हैं, यह फ़िलासफ़ी जैन तीर्थङ्करों की है, कि जिसको जैनमतानुरागी जन ही सत्य मानते होंगे, क्योंकि यह उपरोक्त बातें मद्यपियों जैसी निर्लुडिपन को विख्यात करती हैं, जिस प्रकार कोई पागल मनुष्य सन्निपात (त्रिदोष) की दशा में बकता है, तदनुसार ही इन्हों ने भी यही वृत्त किया है, क्योंकि अब यहां पर जैनी जन अपनी २ माताओं के दुग्ध पीने से अनन्तानन्त जीव भक्षण कर जाते होंगे, क्योंकि जब शरीर से निकले हुए अन्यपदार्थों से डाढ़ी मूछ के मनुष्य निकलते थे, तो क्या दुग्ध शरीर से नहीं बनता। और जैन साधु दन्त धावन (दातून) भी तो

नहीं करते, इस लिये दन्त से उत्पन्न हुए मल से भी मनुष्य निकलते रहते होंगे, कि जिनको वह प्रत्येक समय भक्षण करते रहते होंगे, क्योंकि मुंह पर पट्टी बांधने से थूक के परमाणु जो वाष्प (भाफ) द्वारा निकलते रहते हैं, वे पट्टी में प्रवेश करके पुनः पट्टी में से मनुष्य निकल २ उलटे उनके मुंह में जाते होंगे, यह शिक्षा मांस के प्रचार करने की है, अर्थात् कोई पुरुष बिना मांसभक्षण किये नहीं रह सक्ता, तो पुनः अहिंसा धर्म जैन मत से किस प्रकार सिद्ध हो सक्ता है ॥

प्रथम तो जैन जन यह कह चुके हैं, कि(४९) उनचास दिन में जोड़ा पल कर युवावस्था को प्राप्त होता, अब थूक आदि से ही डाढ़ी मुच्छ वाले नव युवा जैन निकलने लगे, इत्यादि बातों को पढ़ कर अब जैन जन भी अवश्य मन में समझ गये होंगे, कि हमारे तीर्थङ्कर बड़े गप्पी और मिथ्यावादी हो गये हैं, कि जो असम्भव बातों के ही घोड़े उड़ाये हैं, यही कारण है कि जैन जन अपने असत्य से भरे पुस्तकों को किसी को दिखाते भी नहीं, क्योंकि जैनी यह जानते हैं, कि इन पुस्तकों को देख कर लोग सारी कलई खोल देंगे । प्रायः जैनी अपनी पुस्तकें छिप २ कर लिखते वा लिखवाते हैं, छपवाने का उद्यम नहीं करते हैं, यदि पुस्तक सत्य हैं तो सब के समक्ष क्यों नहीं धरते । और यदि छपवाते हैं तो पहली पुस्तकें जिन में सरासर असंभव बाते हैं उनको छोड़ कर

जैनी पृथिवी को स्थिर पुरुषाकार अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य अपनी कटि पर दोनों हाथ लगा कर खड़ा हो, ऐसा मानते हैं, ऐसी २ मोटी २ बातों पर क्या समीक्षा की जावे, चतुर जन स्वयं बिचारलें ॥

उच्छिष्ट भोजन करने की शैली भी इन जैनियों ही से चली है, मैंने अपनी दृष्टि से स्वयं देखा है, कि अनेक जैन साधु एक ही पात्र में जीमते वा पानी पीते हैं, दिगाम्बरीयों ने इस सिद्धान्त को बदला दिया जिसका हाल आगे देंगे ॥

जैनी जन पृथिवी के मध्य में वर्फ की तह अनादि से लगी हुई मानते हैं, इस बात को तो एक बच्चा भी स्वीकार नहीं कर सक्ता, क्योंकि वर्फ पानी के पीछे बनती है, अतः वर्फ का अनादि होना कैसे सम्भव हो सक्ता है।

जैनी पृथिवीको वायुके आधार मानतेहैं,यदि पृथिवी वायु के आधार होती, तो जिस प्रकार तृण उड़ता फिरता है, अर्थात् कभी उलटा कभी सीधा और कभी विशेष वायु होने से शीघ्रगन्ता एवं कभी वायु न्यून होने से शिथिलता को प्राप्त होता है, दूसरे यह कि प्रथम वायु के आधार मानना, पुनः स्थिर भी मानना यह कितनी अज्ञानता है, वायु के आधार पृथिवी कदापि नहीं हो सक्ती, क्योंकि जब वायु के आधार अति अल्प भार वाला तृण वा पतङ्ग ही नहीं रह सक्ता, तो अतुल भार वाली पृथिवी कैसे वायु के आधार रह सक्ती है, और जब वायु

ही स्वयं स्थिर नहीं है, तो उसके आधेय कैसे स्थिर रह सक्ते हैं ॥

शान्ति विजय विद्या सागर न्याय रत्न नामक जैनी अपनी पोथी में लिखते हैं, कि पृथिवी में आकर्षणता नहीं है, यह उनका लिखना नितान्त असत्य है, क्योंकि यदि पृथिवी में आकर्षणता न होती, तो वृक्ष के फल पृथिवी पर कदापि न गिरते, किन्तु वायु के द्वारा अन्तरिक्ष में चले जाते, और पहाड़ वा समुद्र तथा मनुष्यादिकों का स्थिर होना भी तो पृथिवी पर असम्भव हो जाता, सो ऐसा देखा नहीं जाता विशेष क्या लिखें, "हाथ कङ्कन को आरसी क्या" दूसरे जब एक बैलून या पतंग आकाश में उड़ता है तो वो यदि पृथवी में आकर्षणता न होती पृथवी पर आकर न गिरता और वृष्टी की जलधारा भी पृथवी पर न गिरनी चाहिये थी इस कार्य से कहना जैन तीर्थङ्करों की केवलज्ञानता का प्रत्यक्ष प्रमाण है महावीर से (१०००) एक हजार वर्ष पश्चात् तक अर्थात् १४५० वर्ष तक पूर्व के धारक जैनी उत्पन्न होते रहे, और आत्माराम ने अपने अज्ञान तिमिरमें पूर्वधारकोंकी उपमा इस प्रकार लिखी है, कि तेरह हज़ार तीन सौ तिरासी (१३३८३) हाथी जितनी स्याही उठा सकें, उतनी स्याही से जितने ग्रन्थ लिखे जावें उतने २ ग्रन्थ एक २ पूर्वधारक के कण्ठाग्र रहते थे, इस कारण सभी लेख लिखने में नहीं आ सके।

समीचक—क्यों नहीं जब असत्य हो, तो क्या इतने से भी कम हो, ऐसी ही ऐसी बातों से ज्ञात होता है, कि असत्य और असम्भव बातों का ठेका जैनियों ही के भाग में आया है ॥

महावीर के समय में सारी सृष्टि बसती थी, चीन, यूनान, जापान, ब्रह्मा, सीलोन, रूस रूम और खासकर जैनमत के विरोधी ब्रह्मणादि, परन्तु पूर्व धरियों का उत्पन्न होना जैनियों के ही यहां पाया जाता था, औरों के यहां वे भी उत्पन्न नहीं हुए ॥

जैनी आत्माराम अपनी पोथी जैन तत्वादर्श में लिखते हैं कि जैनी हेमचन्द्राचार्य ने (जोकि शहाबुद्दीन गौरी के समय उत्पन्न हुआ है, उसने) तीन करोड़ पचास लाख ग्रन्थ रचे, सो इस बात को भी बुद्धिमान् जन बिचार कर लेंगे, कि यह कहांतक सत्य है क्योंकि साढ़े तीन करोड़ ग्रन्थ पचास वर्ष के अनुमान में किस प्रकार बनाये, इतने श्लोक भी कोई किसी प्रकार नहीं बना सक्ता, क्योंकि प्रति दिन में (२०००) दो हज़ार श्लोक नवीन बनाने का हिसाब बैठता है सो यदि श्लोक ही माने जायें तो भी यदि ५० वर्ष लगातार बनाता ही चला जावे, नाग़ा एक दिन का भी न करे, तब बन सक्ते हैं। ऐसे प्रत्यक्ष झूठों के धर्मग्रन्थ किस प्रकार प्रमाणिक हो सक्ते हैं ?

विक्रम के समय में महादेव के लिङ्ग में से पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर की प्रतिमा निकल पड़ी, भला पत्थर के लिङ्ग में

से प्रतिमा क्योंकर निकल सक्ती है, हां ! यह तो होसक्ता है कि राजा विक्रम के बाद अविद्यामय देश था, उस समय से जिन (जैनियों) की उत्पत्ति हुई हो, इसी हेतु से जैन पुस्तक अविद्यामय देख पड़ते हैं। और इस को दिगम्बर और श्वेतांम्बर दोनों मानते हैं ॥

आत्माराम जैनी लिखते हैं कि जब पार्श्वनाथ उत्पन्न हुए जिसको (२६५०) दो हज़ार छःसौ पचास वर्ष के अनुमान हुए उस समय सारी सृष्टि के देवता प्रथम सिक्कों को ला ला कर पार्श्वनाथ के घर में दबा गये, इसी लिये प्राचीन काल के सिक्के नहीं मिलते ।

(देखो अज्ञान तिमिर पुस्तक दूसरा खं० पृ० ३४) ।

समीचक—सत्य और ज्ञानप्रद शिक्षायें, जैन मत में तभी तो नहीं मिलतीं, क्योंकि ज्ञान को तो इन्हों ने अपवित्र माना है इस हेतु से ये ज्ञान के स्पर्श होने से भी डरते हैं ॥

मनुष्यों के दन्त और डाढ़ों को एक जैन चक्रवर्त खा गया, तो यह अस्थि भक्षी (हाड़ों के चबाने वाला) भला मांस को कब छोड़ता होगा, जिनको कि आत्माराम जैन तत्वादर्श पृ० ५३४ में लिखते हैं, कि खीर बन गई, यदि खीर बनी भी मानें, तब भी अस्थि भाव तो कहीं नहीं जा सक्ता। वाममार्गी वा अघोरी जन भी मृतक मनुष्य को करामात से पदार्थ बनना बतलाते हैं। इसी

प्रकार मद्य पीने के विषय में निज अनुयायियों को उपदेश जैन तत्वादर्श पृष्ट ४६३ में दिया है, कि उत्तम श्रावक को चाहिये, कि दिन में कभी न शयन करे, परन्तु मद्य पीकर, तथा स्त्री से विषय कर श्रम उतारने के हेतु, वा क्रोध,शोक में शयन करे तो कुछ दोष नहीं।

समीक्षक—सत्य है, उत्तम श्रावक तो तभी हो सकता है, कि जब मद्य पीकर शयन किया करे, वाह रे जैनमत, यदि कोई मद्य न पीता हो, तब भी अदोष दिखाकर मनुष्य के पीछे बलात्कार से धर्म का द्वार बतलाकर मद्यपा बना देता है॥

जब महावीर तीर्थङ्कर उत्पन्न होने के लिये अपनी माता के पेट में आया उस समय (गर्भ में आने) से छः मास प्रथम से इस के पिता के घर में इन्द्रादि देव १०½ करोड़ रत्न प्रति दिन वर्षाते रहे, जब तक कि ये उत्पन्न नहीं हुए थे, तो पन्द्रः (१५) मास का वह वर्षा हुआ,धन कहां चला गया, और महावीर के उत्पन्न होने वा गर्भ में आने के प्रथम इन्द्रादिकों को यह कैसे बोध हो गया, कि महावीर अमुक गृह में उत्पन्न होंगे, और महावीर के प्रसन्न करने में उनको क्या लाभ हुआ, उन्हें इसकी चाटुप्रियता (खुशामद) से क्या प्रयोजन था, यदि कोई कहे कि इन्द्रादिकों ने निज ज्ञान बुद्धि से महावीर के उत्पन्न होने का वृत्त जान लिया था, सो जैनी जन यह

प्रथम सिद्ध कर चुके हैं, कि ज्ञान अशुद्ध अर्थात् अज्ञान है तो यह बात तो भी असिद्ध हुई,और जैनियोंमें तो वह इन्द्र होता है कि जो विशेष विषयी हो, तो उस विषयी के इतना धन कहां से आता है, कि जो अन्यों के घर में बर्षाता फिरे, वर्षने का काम बादलों का है, कि जिस की उत्पत्ति धूम, अग्नि, जल और वायु के सन्निपात अर्थात् मेल से होती है, कि जिनको जैनी अपवित्र मानते हैं, तो भला इन अपवित्र वस्तुओं के योग बादलों के वेष में आकर रत्न बर्षाने हेतु कहीं सन्नद्ध हुए इस से तो यह सिद्ध हुआ, कि जैनियों के इन्द्रादि देवता भी अपवित्रात्मा होते हैं॥

महावीर जब उत्पन्न हुए थे, तो उस समय उनको एक करोड़ साठ लाख घटों (कलशों) से स्नान कराया गया था, और जिन कलशों से स्नान कराया था, वे ऐसे २ थे, कि दश हजार मील चौड़े तो मुख और चालीस हजार मील चौड़े पेट और अस्सी हजारमील लम्बे थे॥

समीक्षक—तत्काल उत्पन्न हुए बालक पर यदि एक कलश जल का एकदम डाल दिया जाय, तो उसका जीवन कठिन होजाता है और इतना जल तो हिमालय आदि पर्वतों पर डाला जाय, तो वह भी जल धार से घिस २ कर लघु २ परमाणुओं द्वारा बह जावेगा क्या महावीर जन्म समय में इतने मलीन थे कि इतने जल से शुद्ध किये गये॥

महाबीर के लिये एक ऐसा अद्भुत आश्चर्यप्रद (अजायब) घर बना बताते हैं, कि जो पृथिवी से छः मील ऊचा था, पुनः उस उचान के ऊपर चबूतरे बनाये गये थे, और वह १२० मील लम्बा और उससे कुछ न्यून चौड़ा था और मिट्टी तथा चूना के स्थान में जवाहरात की भस्म से चिना गया था, उसमें बीस हज़ार सीढ़ी थीं परन्तु आश्चर्य यह है कि बालक और गर्भवती स्त्रियां तथा वृद्ध जन एक घण्टे में हो२ कर अपने २ घर आजाते थे यह बात सिद्ध होचुकी है कि छः मील के ऊपर वायु नहीं है अतः वहां कोई जाकर किस प्रकार जीवित रहसक्ता है और इतने ऊचे स्थान को कैसे शीघ्र चढ़ उतर सक्ते थे, पुनः सब से बढ़कर नई बात यह है कि एक २ हाथ ऊची सीढ़ी वाले जीने पर कोई भी मनुष्य एक मील ऊपर कदापि नहीं चढ़ सक्ता, तो छः मील कौनचढ़ेगा इसपर भी यह एक कैसी अद्भुत बात है कि राजा अशोक के समय के छोटे २ स्तूप दिल्ली प्रयाग गिरनार पेशावर आदि में हैं सो यह सम्पूर्ण नगर अद्यावधि विद्यमान हैं, तो भला क्या उन २ ही गृह को दीमक चाट गई। इन गृहों के वृत्तान्तों को किसी ने कुछ भी नहीं लिखा कि जिन घरों में सूर्य और चन्द्रमा आते थे, यदि यह सत्य तो सारे संसार के विद्वान् वा ब्राह्मणादि इस विषय में अवश्य कुछ न कुछ लिखते ॥

रावण ने पृथिवी में घुस कर कैलाश पहाड़ को जड़ से उखाड़ डाला, और उसे ऊचा उठा २ कर फिराने लगा, जब सम्पूर्ण पहाड़ गिरने लगे, तब बालि ने कि जो उसी पहाड़ पर था अपने पैर के बांए अंगूठे को दबा दिया कि जिससे रावण दब गया। बालि पहाड़ पर तप करता था, उसके समेत जब कि रावण ने पहाड़ को उठा लिया था, अंगूठे मात्र के दबाने से रावण कैसे दब सक्ता है, क्यों कि अंगूठा दबानेके प्रथम भी तो अपने सारे शरीर के भार समेत उसी पहाड़ पर स्थित था। और रावण पृथिवी में कैसे घुसा था, जो कहो कि चीर कर, सो यह भी असम्भव है। पुनः पहाड़ कि जिस की जड़ पृथिवी है, उस का उठाना क्या सहज ही है॥

सीता को बलात्कार से भड़कती हुई अग्नि में डाल दिया, तो वह अग्नि जलरूप होकर सम्पूर्ण नगर को डुबोने लगी, और सीता एक कमल के फूल पर जा बैठी, यह कथा जैन पद्म पुराणादिकों में लिखी है।

समीक्षक—भला अग्नि अपनी प्रकृति को कैसे त्याग सक्ता है, कि जो जल हो जाता, पुनः जल की भी इतनी वृद्धि हुई कि सारा नगर ही डूब जाता, और उस समय ऐसी शीघ्रता से कमल भी उत्पन्न होगया, कमल में कीटादि तो स्थित हो सक्ता है, पुरुष स्त्री नहीं॥

अयोध्या में रामचन्द्र जी की निम्नलेखानुसार सेना थी, जैसे कि बयालीस लाख हाथी, नव करोड़ घोड़े

बयालीस करोड़ सिपाही, पचास लाख बैल, और एक करोड़ गायथीं और प्रजा पृथकथी। (पद्मपुराण पृ० ८८८)

और साथही जैन ग्रन्थो मे यह भी लिखा है कि रामचन्द्र से विमुख मथुरा वा वङ्गालेमें भी राजा थे, कि जो रामचन्द्रसे किञ्चित भी न्यून नथे, मथुराका मधु राजा अति प्रतापी था, उस समय में वर्तमान कालसे वीस (२०) गुणा अधिक उन्नत पुरुष जैनी बतलाते हैं, अब बिचार करने की बात है, कि ४२ करोड़ सिपाहियों के होने से उन की उतनी ही स्त्रियां तथा बाल बच्चे होने से एक अर्ब से अधिक हुए, तथा प्रजा आदि सब मिल कर पद्मों की सङ्ख्या होगी, भला कोई बुद्धिमान इन की ऐसी असम्भव बातें मान सक्ता है ? कदापि नहीं ॥

जैनी जन द्वारिका ४० क्रोश में वसती बतलाते हैं, और उसमें एक अर्बबत्तीस करोड़ घरथे, उस समय मनुष्य अब से दश गुणा विशेष उन्नत थे, और गाय, भैंस घोड़े हाथी, बाल, बगीचे आदि पृथक् रहे, उस समय से अब मनुष्य अङ्गों में क्या सब के सब दशांस रह गये, किसी न किसी को तो पूर्ववत् रहना था, अथवा आधे ही अंश में रहते ॥

पद्मावती देवी के बत्तीस (३२ भुजा बताते हैं, और उस के शिर पर पार्श्वनाथ की मूर्ति रहती हैं, तो वह पार्श्वनाथ के समय में उत्पन्न हुई थी, इस से आभ्यन्तरिक आशय यह है, कि वह देवी कि जिस पर पार्श्वनाथ

प्रति समय सवार रहते थे, वह कामकला में सोलह आने भर थी, क्योंकि उसके ३२ भुजा थे ॥

मेंढक भी महावीर की पूजा करते थे, (र० क० श्र०)

समीक्षक—क्यों न पूजते, क्योंकि उन्हें जल सञ्चयार्थ कूप तड़ागादि अधिक बनने बनवाने की आज्ञा इन से लेनी थी, क्योंकि ये जलोत्पादकादि कार्यों के बाधक थे, परन्तु उन विचारों की पूजा निष्फल गई, क्योंकि ये पाषाण हृदय दयादि भावों की ओर नहीं पिघलते ॥

गङ्गा नदी मगरमच्छ के मुख से निकली है, उस मगर जन्तु की जिह्वा पांच हज़ार (५०००) मील चौडी, और साठ हज़ार (६००००) मील लम्बी है और गङ्गा जहां से निकली है, वहां से समुद्र में गिरने पर्यन्त उस में १४ हज़ार नदी मिली हैं। भला जिस मगर वा मत्स्य की इतनी बृहत् जिह्वा थी, तो उस का शरीर पद्मों मील का होगा, क्योंकि गङ्गा तो मानो उस के मुंह की राल थी, परन्तु उस का आहार कितना और क्या होगा ॥

जैन पद्म पुराण में लिखा है, कि हनूमान जब उत्पन्न हुआ, तो उस के दो चार दिन पश्चात् उस को उस का नाना विमान के द्वारा लिये जाता था, हनूमान अपनी माता की गोद से उछल कर पहाड़ पर गिर पड़ा, तो उस पहाड़ का चूरा २ होगया। परन्तु हनूमान के शरीर में चोट का किञ्चित् भी चिन्ह नहीं हुआ।

समीक्षक—धन्य हो, जो चाहो सो लिखो, लेखनी

तुम्हारे हाथ में थी, और अब भी है ॥

बीस(२०)हाथियों के दांतों पर करोड़ों मील मुरब्बा जैन मन्दिर बने हुए हैं, और वह अनादि हैं। र.क. भा.

समीक्षक—भला इन दांतों को कोई कभी स्वीकार कर सक्ता है? अर्थात् कभी नहीं, क्योंकि जिन हाथियों के दांतों पर कोटियों मील मुरब्बा के जैन मन्दिर बने हैं, तो वे हाथी कितने २ बड़े वा लम्बे चौड़े होंगे। जब कि हाथी प्रथम विद्यमान थे कि जिन पर मन्दिर बने, तो मन्दिर कैसे अनादि होगये, हां अलबत्ता इन मन्दिरों से वे हाथी ही अनादि (प्रथम उत्पन्न हुए) ठहरेंगे ॥

केवल ज्ञान होने पर तीर्थङ्करों के चार मुंह हो जाते हैं, सो यह क्योंकर हो सक्ता है, तीन मुख शरीर के कौन भाग से फूट कर निकले, और यदि कोई कहे, कि चार मुख होते नहीं, परन्तु समोसर्ण के द्वारा दीखते हैं, तो समोसर्ण से तो सब के ही चार मुख दीखने चाहियें, वा दीखते होंगे ॥

जैनियों की प्रकरणसङ्ग्रह पुस्तक पृष्ट ११८ में हजार २ योजन के रत्न लिखे हैं।

समीक्षक—इन रत्नों को कौन पुरुष काम में लाता था ॥

एक जैनो पांच सौ अशर्फियां नित्य प्रति उगलता था, और पांच सौ ही अशर्फियां नित्य उसकी गुदड़ी में से झड़ती थीं ॥ (रत्न कोश प्रथम भाग सिन्दूर प्रकरण)॥

समीक्षक—उस अशर्फी उगलने वाले जैनी का ज्ञात होता है, कि अब वंशनाश होगया, क्योंकि यदि उस के परिवार में अब कोई उस के वीर्य वाला होता, तो अब भी अशर्फियां उगलता, यदि उतनी नहीं, तो चतुर्थांश वा दशांश ही सही या उतसर्पण अवसर्पणिक क्रम से है सही ॥

एक जैनी स्नान कर रहा था, तो उस समय उस के सम्मुख से पानी के पात्र वा पटड़ा (स्नानकरने की चौकी) वह आकाश मार्ग में उड़ गये, जब वह रोटी खाने लगा, तो उस के सम्मुख जो थाली, लोटा, तथा बत्तीस (३२)कटोरियां यह सब उड़गई, यद्यपि उस जैनी ने निज बाहु से उन उड़ती हुई वस्तुओं के पकड़ने का अत्यन्त उद्यम किया, तथापि वे सर्व वस्तुएं उड़ ही गई, और इस का परिश्रम व्यर्थ ही गया (रत्न कोश भा० १, पृष्ठ २६०)

समीक्षक—यदि जैनियों ने इस उपरोक्त भयसे स्नान त्याग किया हो, तो भोजन भी त्याग देना योग्य है ॥

एक समय जैनीराजा को महावीर के समयमें बहता हुआ सन्दूक मिला, कि जिस में बड़े २ ताले जड़े थे, वह केवल इतने कहने मात्र से खुलगये, कि यदि जैन-मत सत्य है, तो खुल जाओ, (रत्न कोश भा० ५ पृष्ठ ११)

समीक्षक—उस समय वा इस समय जैनियों को तालों के लिये तालियों की आवश्यकता न थी, और न अब है, क्योंकि यदि जैन मत सत्य है, तो इतने कहने ही से ताले

खुल जांयगे, यह बात जैनमत की परीक्षा के लिये अत्यन्त उपैयोगी है, परन्तु यह नहीं लिखा, कि जैनी ही इस को कहे तभी ताले खुल जांयगे, वा चोर आदि कह कर अपना काम निकाल सक्ता है ॥

सिद्ध सेन जैनी मुनि आचार्य ने एक राजा को जब कि वह एक अपने शत्रु से लड़ता था, उस के सहायार्थ एक २ राई के दाने से पैंतालीस २ शस्त्र सहित घोड़ों पर चढ़े हुए सिपाही बनादिये, और बहुत पलटन वा फ़ौज तय्यार कर दी, परन्तु उस राजा से यह ठहरा रक्खा था, कि पश्चात् में तुम्हें जैनमत स्वीकार करना होगा, तदनुकूल उस राजा को जैनी बनाया (तत्वादर्श पृष्ठ ५६२) यह विक्रमादित्य के पीछे का हाल है ।

समीक्षक—भला यह तो हो सक्ता है, कि विपत्ति काल में सहायता करने से राजा कदाचित् जैनी होगया हो, परन्तु यह दोनों बातें तो तभी प्रमाण में आने के योग्य हैं, कि जैनी यह बात सिद्ध कर देवें, कि इस प्रकार से राई के दानों से फौजें तय्यार करदीं, यह भी लोगों को निज महत्व दर्शाने के लिये झूठी गप्प मारी है ॥

जैन तत्वादर्श में जैनी आत्माराम जी लिखते हैं, कि पृथ्वीराज के पुत्र जांजन ने एक सौ बीस (१२०) मील ऊंची ध्वजा स्वर्ण की जैन मन्दिर में चढ़ाई, कि जिस में दूसरा जोड़ न था ।

समीक्षक—अब बुद्धिमान इस बात को सोचें कि पृथ्वीराज को अधिक समय नहीं हुआ है, वह इतनी बृहत् और विशेष मूल्य की ध्वजा अब कहां गई, इन ऐसे २ लेखों से ही जैनशास्त्रों की असत्यता साक्षात् टपकती है, अतः मैं जैनी भाइयों से विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूं, कि हठ धर्म त्याग कर जैनमत के शास्त्रों और वैदिकधर्म का साक्षात्कार (मुकाबला) करके सत्यासत्य की विवेचना करो ॥

एक जैन स्त्री ने अपने छोटे २ बालकों को जो बोलना तक भी नहीं सीखे थे, एक समय उन रोते हुओं को संस्कृत में उपदेश कर के वैरागवान् बनाया, और इसी प्रकार से अपने सात पुत्रों को छः २ सात २ महीने की आयु में वैरागी कर दिया ।

समीक्षक—प्रथम तो संस्कृत बिना पढ़े वह बालक क्योंकर समझे, दूसरे वह स्त्री स्वयं विषय करा २ कर बालक उत्पन्न करती रही, अपने आप को जब विषयकामनाओं से वैराग उत्पन्न नहीं हुआ, तो निज छोटे २ अबोध बालकों को कैसे वैरागी बनाया ॥

घोड़े, हाथी, सिंह, ऊंट, सर्प, गधे, मसाले रूप औषधियों से बना कर जीवित कर देते थे, वर्तमान काल से सात सौ वर्ष पूर्व तक ऐसे जैनी होते रहे, पुनः अब न जाने वे कहां चले गये, और शिष्य प्रशिष्यों को भी उक्त विद्याविषयक शिक्षा दे गये, या नहीं । (जैन तत्वादर्श) ।

और जैन तत्वादर्श में आत्माराम लिखते हैं कि

६० वर्ष के अनुमान हुये तो हेमचंद्राचारी जैनी ने राजा कुमारपाल को एक मकान के अंदर २४ तीर्थङ्कर जीवत बैठे दिखाकर जैनी बनाया॰ (देखो तत्वादर्श ३०९)

समीचक—भला जिन श्रीआदिनाथादि को जैनी असंख्य वर्ष हुये बताते हैं और कहते हैं कि मुक्तिशिला पर जा बैठे उनको शिला छोड़कर फिरगर्भ धारण करना पड़ा होगा क्यों कि शरीर बिना गर्भ के उतपन्न नही हो सक्ता मालूम होता है कि उन तीर्थङ्करों ने गर्भ के दुख सहन करने से एक राजा को जैनी बनाने का सुख अधिक समझा, जिस तरह अविवेकी माता पिता निज संतान पैदा करने के लिये आज कल बोहत पाप कर बैठते हैं, और बड़े कड़े घोर कष्ट सहन करते हैं ॥

और जैन तत्वादर्श पृष्ठ ३६० से आत्माराम इन चौदह (१४) व्यापारों की बावत कहता है कि जो श्रावक की जीविका न चले तब करले:—

(१) कोपले बना कर या भाड़ से चने भूनकर इत्यादि। (२) वनकर्म। याने हरे वृक्ष काटना ॥ (३) साडी कर्म। याने सवारी चलाना ॥ (४) भाडी कर्म। याने दलाली (या भाड़खाना) या भाड़ा करना ॥ (५) फोड़ी कर्म। याने पृथिवी या पर्वतादि फोड़ना। (६) दांत या पक्षीपशू के हाड़ कलेजी गाय के अंगोपांग चर्मादि ॥ (७) लाख का बचना। (८) मद्य मांस आदि का बचना (जैनयों ने मद्य मांसादि को रस माना है याने घृत,तेल आदि के बराबर) ॥ (९) स्त्री या बालक पशूपक्षी आदि। (१०) तेल निकालना ॥ (११) बैल घोड़ा खस्सी करना या पुलिस की नोकरी आदि (मालूम होता है कि यह रवाज भी जैनीयों से चला है) (१२) विष याने ज़हर ॥ (१३) अग्नी लगाना ॥ (१४) खेत मे पाणि देना या वृक्षोंमेंपाणि देना। (१५) असतीपोषण, याने जीवों की पालना करना इत्यादि

इससे साफ़ प्रकट है किपहले जैनी मद्य मांस बेचते अर खाते थे क्योंकि जो जैनियों की अजीवका न हो तो अब भी कर सकते हैं और मांस मद्य घी और खांड़ तथा लूण के बराबर है तो फिर इनसे क्या परेहेज़ है जैसा कसाई की दुकान करना वैसा गुड़ शक्कर घी खाड़ तेल बेचना तथा खाना तथा मद्य पीना मद्य मांस का प्रचार पहले जैनियों होने चलाया है क्योंकि संख हाड है उस को जैनचक्रवर्त लाज़मी बताता है जब हड्डी मूंह मे लेकर चसोड़ते हूं तो मांस से क्योंकर बच सकते है इत्यादि अब जैन का जिस जिस तरह रंग वदलता गया वह आगे द्वितीय भाग मे लिखेंगे ॥

और जैनतत्वादर्श पृष्ठ ३१० मे लिखा है कि राजा कुमार पाल के मृतक माता, पिता आकर कुमार पाल से कहने लगे की तू जैनमत मत छोड़ना जिस दिन से तू जैनी हुवा है हम भी नर्क से स्वर्ग हुवा जो तूजैन धर्म त्यागेगा तो फिर हम नर्क को चलेजावेंगे।

समीचक—भला ये तो अच्छी युक्ती है की इस लेख

को देख बौहत से मूर्ख जैनी बनजावेंगे कि जैन धर्म में शामिल होने से दूसरे मरे हुवों के कुकर्म भी नष्ट होजाते हैं तो फिर जिन्दा जैनो तो चाहे जितने दुष्ट कर्म करो जैन मत के प्रभाव से उसे स्वर्ग ही मिलेगा क्योंकि राजा कुमारपाल हिंसा भी करता था हज़ारों मनुष्यों को उसने अपने हाथ से क़तल किया विषयी भी था तो उस के जैनी होने से माता पिता भी स्वर्ग को नर्ककुंड छोड कर चले गये तो उस को तो पाप ही क्योंकर दुख दे सकता है यदि यहां कोइ शंका करे कि हेमचन्द्राचारी ने यह मंत्रादि बल से झूठी रचना रची तो तीर्थङ्करों को सच्चा क्यों मानते हो वो तो हेमचन्द्र से भी कइ दर्जे झूठे थे याने जिन के आचारी और पूर्वधारी जैन धर्म रूप छप्पर की टेवकी का यह हाल था तो न जाने उन के तीर्थङ्करों की जो जैनधर्म के शहतीर रहें उन की क्या दशा होगी और हमारी राय में तो तीर्थङ्कर हेमचन्द्राचार्य के अनुचर थे जो उस के हुक्म से डरते कांपते मुक्तशिला के बंधन को तुड़ा आ मोजूद हुये।

सिद्ध शिला में बड़ी तेज सुगंध है और कोमल है और वो शिला बीच मे से आठ योजन अर्थात ३२ हज़ार कोश या ८० हजार मील मोटी है और फिर कम होते मक्खी के पांख से भी पतली है उस के उपर सिद्धलोक है और प्रत्येक सिद्ध के शरीर की उच्चाई ३३३ धनुष ३२ अंगुल है अर्थात् ६६६ गज (जैन तत्वा दर्श पृष्ट २८०)

समीक्षक ! भला पत्थर में भी सुगंधताइ या कोमलताइ हो सकति है ये बात सपष्ट बता रही है कि केवलज्ञानी बिलकुल अज्ञानी हुये हैं जिन्हे इतनी भी खबर नहीं की पत्थर में गंध नहीं हो सकती और वो सिद्धशिला क्या सिद्धसूली है जो मक्खी के पर से भी बारीक गावदुम सूली के सदृष होती चली गइ और जब सिद्धों का शरीर सात २ सौ गज़ है तो वो उस शिला से कट कट कर गिरते होंगे या ससीम शिला सिद्ध लोक में अनन्त सिद्ध क्योंकर समा सकते हैं ये सब गप्पाष्टक किसी विक्षिप्त बुद्धी ने या मदोनमत ने पेली हैं॥

अब यहां उत्तम जैनियों के दिन रात का नियम याने १ दिन तथा रात्री मे यमानक्रम क्या करनी चाहिये इसमें गाथा प्रमाण है और १४ नियम है॥

॥ चौदह नियम का विवर्ण॥

जैन तत्वादर्श पृष्ट ३५७:—

(गाथा)। सचित्त दव्वविगइ, वाणेह तंबोल वच्छ कुसमेसु
वाहण सयण विलेवण बंभ दिसि न्हाण भत्तेसु॥ १४॥

(१) सचित परिमाण (२) द्रव्य नियम याने इतनी वार भोजन करना (३) विगय नियम याने विगयमें मद्य मांसादि १० दस है इन के खाने की तादाद के कितनी ... दिवस मे तथा रात्री में खावे या वारी वाले से ... या खड़ाव आदि गिणती की (५)तंबोल ... क दिवस में खाना या रात्री में

(६) वस्त्र नियम याने इतने वस्त्र दिन तथा रात्री में पहनना (७) फूलों के गहने या माला दिन रात्री का नियम फूलों की शय्या तथा फूलों के इतने तकये फूलों के पखे फूलों का चदोवा फूलों का बंगला फूलोंकी जाली (८) वाहन याने सवारि दिनादि मे कितनि वार करे (९) शयन याने खाट पलग चौंकी छपरखट आदि (१०) विलेपन भोग के या कामदेव चेतन्न करने को जो वस्तु शरीर मे मालिश कीजाय (११) ब्रह्मचर्य का नियम करे कि दिन में इतनी वार स्त्री से विषय करना और रात्री में इतनी वार विषय करना (ये शब्द यातातथ्य जैन-तत्वा दर्श में हैं) (१२) चलने का नियम रात दिन मे इतना चलना (१३) स्नान का नियम इतनी वार न्हाना (१४) खाने का और पाणी का परमाण।

समीक्षक—इन लेखों से सपष्ट ज्ञात होता है कि पहले जैनी इन बातों को अंधाधुंद करते होंगे जब अंधाधुन्द बेतादाद मांसादि भक्षण से अजीर्ण से मृत्यु को प्राप्त होने लगे या रोगग्रसित हुये जैसे अत्यंत विषय करने से इन्द्रीद्वारा रुधिर आने लगता है ज्यादा फूलों के सूंघने से नजले का विकार होजाता है और सवारी वस्त्रादि में विशेष व्यय करने से दिवाला निकल जाता है इस लिये किसी ने पीछे से तादाद मुकर्र करने के लिये यह सम्मती लिखी है किन्तु इस गाथा (देखो धनुष ३२ अत्यन्त विषद्द मालूम होता है देखो दर्श पृष्ट २९०)

में स्त्री से जितनी वार और १ रात्रों में जितनी वार गोया रात दिन में चार२ तथा न्यूनाधिक एक २ वार से विशेष आज्ञा देता है यह तो जैनियों का ब्रह्मचर्य्य है शायद भोगभूमी की न्यूनता की अपेक्षा में इसे ही ब्रह्मचर्य्य मरना है जैनी भाइयो ! आप विचारो कि ऐसे कल्पित विषय प्रचारक ग्रन्थ तथा कल्पित तीर्थङ्कर किसी उलटे मार्ग पर चलाने वाले ने स्वकपोल कल्पना से लिख मारे हैं इस कारण आप सत्यासत्य विचार शीघ्र इलाज करो जिस से आप और आप की सन्तात सुख की अधिकारी हो मेरे इन लेखों से अपने चित्त पक्षपात से मत बिगाड़ना किन्तु मुझ को अपना हितैशी जानना और यदी कोई अक्षर जैन ग्रंथोंसे न्यूनाधिकलिखा गया हो अथवा प्रमाण लिखते समय भूल से किसी अन्य ग्रन्थ का नाम लिखा गया हो तो पत्र द्वारा मुझ को सूचना देना मैं पुनरावृत्ती में ठीक कर दूंगा प्रिय गणो ! कोइ शब्द यदि आप साहबों को कठोर मालूम पड़े तो भी सूचना देना ताकि मैं उसपर विचार करूं ॥

और यह भी आप साहबों को ज्ञात रहे कि दिगाम्बर और सिताम्बर दोनों जैनशाखा के शास्त्रानकूल न्यास सहित हैं अपने को पैछान लेना अगले भागों में जो
वार १ ।८
तो पृथक भी कुछ विचारनीय बातें लिखूंगा॥
(४) उपानह जूता
याने पान इतनी वार ९

शम्भुदत्त शर्मा,
आर्य्योपदेशक।

॥ विज्ञापन ॥

॥ छपने को तय्यार हैं ॥

(लाला रामकृष्ण कृत)

(१) कठोपनिषद् का प्रसिद्ध रथरूपक अर्थात् ब्रह्मप्राप्ति का सच्चा उपाय, इसमें आर्य्यावर्त के अन्य मत मतान्तरों के मुक्तिसाधनों की सम्यक् समीक्षा और अन्त में उपरोक्त रथ-रूपक द्वारा मोक्ष का सच्चा वैदिक उपाय दर्शाया गया है॥

(२) प्राचीन समय में पञ्च महा यज्ञों का अतीव प्रचार और वर्तमान समय में उनका सर्वतः अभाव ॥

(३) ब्रह्मयज्ञ, इसमें अनेक विषयों का उत्तम रीति से विवरण किया गया है ॥

(४) मेला फल्गु अर्थात् सितम्बर १८०३ में इस मेले के अवसर पर वैदिक धर्म का प्रचार और पौराणिक पण्डितों के साथ कई शास्त्रार्थ और उनका परिणाम ॥

(५) आर्य्यसमाज पूँडरी के तृतीय वार्षिकोत्सव का विस्तृत वृत्तान्त और वक्ताओं के उपदेश व व्याख्यान ॥

(६) पं० शम्भुदत्त कृत कोटि २ ट्रेक्ट जिन में पुराणों की गप्पों (असम्भव बातों) का खण्डन एक अपूर्वरीति से कियागया है॥

रामकृष्ण अग्रवालाश्रम लाहौर ॥

…पुस्तकालय, क्रमांक 242 आर्य समाज, बम्बई.